प्यार के भूखे

●

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

किताब महल, इलाहाबाद

विषय सूची

साबुन

सुखदेव ने ज़ोर से चिल्लाकर पूछा—'मेरा साबुन कहाँ है ?'

श्यामा दूसरे कमरे में थी। साबुनदानी हाथ में लिये लपकी आई और देवर के पास खड़ी होकर हौले से बोली—'यह लो।'

सुखदेव ने एक बार अँगुली से साबुन को छूकर देखा और भवें चढ़ा कर पूछा—'तुम ने लगाया था, क्यों ?'

श्यामा हौले से बोली—'ज़रा मुँह पर लगाया था।'

'क्यों तुम ने मेरा साबुन लिया ? तुम से हज़ार बार मना कर चुका हूँ। लेकिन तुम तो बेहया हो न !'

'गाली मत दो ! समझे ?'

श्यामा ने डिब्बी वहीं ज़मीन पर पटक दी और तेज़ क़दमों से बाहर जाती-जाती बोली—'ज़रा साबुन छू लिया मैंने तो मानो गज़ब हो गया !' फिर दूसरे कमरे की चौखट पर मुड़ कर बोली—'मैं क्या चमार हूँ ?'

सुखदेव ने वहीं से चिल्ला कर कहा—'हो चमार ! तुम चमार हो ! ख़बरदार, जो अब कभी मेरा साबुन छुआ !'

अँगीठी पर तरकारी पक रही थी। श्यामा भुन-भुन करती ढक्कन हटा कर करछुल से लौट-पौट करने लगी तो देखा कि तरकारी आधी से ज़्यादा जल गई है। उस ने कढ़ाई उठा कर नीचे ज़मीन पर पटक दी।

'ख़ाक हो गई नासपीटी !' तरकारी को निहारती, तरकारी से नाराज़ होकर बोली।

तभी उधर ठन्न-से लोटा गिरने की आवाज़ हुई। श्यामा ने चौंक कर देखा, बड़ा लड़का बाल्टी खींच कर बाहर लिये जा रहा था। चिल्ला कर कहा—'कहाँ लिये जा रहा है, अभागे ?'

'नहायेंगे', लड़का शान्तभाव से ज़मीन पर बाल्टी घसीटता बोला—'चाचाजी ने कहा है।'

'चाचाजी के बच्चे ! [illegible] में डाल दी बाल्टी !'

उस ने लड़के के हाथ से बाल्टी छीन ली और पैरों से धमधम करती गुसलखाने के आगे तक आई।

सुखदेव छोटे भतीजे को सामने बिठा कर उस के सिर पर साबुन मल रहा था। भाभी को देख कर बोला—'काला कर दिया साबुन ! चेहरे का रंग लग गया इस में काली माई के।'

श्यामा ने चिल्ला कर पूछा—'मैं काली हूँ ?'

सुखदेव न बोला। बच्चे के सिर पर साबुन मलता रहा।

श्यामा ने बाल्टी वहीं पटक दी और चढ़े स्वर में पूछा—'मैं काली हूँ ? मैं काली माई हूँ ?'

सुखदेव ने घबरा कर कहा—'धीरे बोलो ! भाई साहब आ गये !'

श्यामा ने चौंक कर उधर देखा। कमरे के दरवाज़े पर पति के जूते चमक रहे थे।...

ऊपर जो किरायेदार रहते थे, उन के यहाँ बड़ी क्लॉक-घड़ी थी। टन् करके आधा घंटा बजा तो उस ने जल्दी-जल्दी हाथ चलाये। फिर थाली परोस कर पति को आवाज़ दी—'आओ !'

व्रजलाल ने आसन पर बैठ कर भोजन पर एक नज़र डाली और पूछा—'आज तरकारी नहीं बनी ?'

'नहीं।'

'यह प्याली में क्या है ?'

'कदुआ है। लल्ला के लिए रख दिया है। दाल से खाओ।'

पति ने आज्ञा मान कर, एक ग्रास मुख में दिया और शान्तभाव से बोले—'नमक लाओ।'

'क्या कम है?'—श्यामा ने नमक की बुकनी थाली में छोड़ते हुए पूछा।

'बिलकुल नहीं है।'

'क्यों झूठ बोलते हो? मैंने नमक डाला था। शर्त्त लगाती हूँ!'

पति ने हँस कर कहा—'यही सही। लेकिन अपनी कुशल चाहो तो पतीली में नमक पीस कर डाल दो। सुखदेव अभी खाने बैठेगा, तो फिर आफ़त आ जायेगी तुम्हारी।'

श्यामा ने स्वर को चढ़ा कर कहा—'क्या आफ़त आयेगी? फाँसी दे देंगे मुझे? मैं दासी हूँ न सब की!'

व्रजलाल ने हँसकर कहा—'तुम राजरानी हो! लाओ, रोटी तो दो।'

...वे कपड़े पहिन कर आफ़िस जाने को तैयार हुए तो श्यामा ने चौखट पकड़े-पकड़े कहा—'मुझे साबुन चाहिये।'

'साबुन!'—पति ने अचरज से कहा—'कैसा साबुन? सुखदेव से कहो। छाता लाओ। वह फ़ाइल उठाना।'

तभी रसोई-घर से एक पुकार आई—'भाभी, खाना परोसो!'

फिर दो पतली आवाज़ें एक साथ आईं—'भाभी खाना परोसो!'...

बड़ा लड़का अलग थाली में खाता है। छोटा अपने चाचाजी के हाथ से खाता है। तीनों पास-पास नहाये-धोये, आसनों पर विराजे, भोजन कर रहे थे।

बड़े लड़के ने मुँह बिचका कर कहा—'दाल में इतना नमक है कि पूछो मत!'

श्यामा ने डरते-डरते देवर की ओर देखा। पर सुखदेव ने नमक के बारे में कुछ शिकायत न की, उलटे भतीजे को डाँट कर बोला—'खाओ चुपचाप!' फिर भाभी के आगे प्याली सरका कर बोला—'तरकारी और देना, भाभी!'

भाभी ने हँस कर कहा—'तरकारी अब नहीं है।'

'सब ख़तम ?'

'यह देखो', कढ़ाई आगे खींच कर हँस कर कहा—'जल गई सब। यही इतनी बची थीं, सो तुम्हारे लिए छाँट कर निकाल ली थी।'

'देखें, जली हुई का स्वाद देखें।'

श्यामा ने कढ़ाई पीछे को करके कहा—'यह तुम्हारे खाने के क़ाबिल नहीं है। लो, दाल और ले लो।'

बड़े लड़के ने कहा—'मैं भी दाल और लूँगा।'

श्यामा ने पतीली उस के आगे सरका कर कहा—'ले, दाल ले!'

लड़का पतीली में झाँक कर बोला—'कहाँ है इस में दाल ?'

'दाल नहीं है। अब तू मेरा सिर खा ले पेटू!'...

छोटे भतीजे के जूठे हाथ धोकर सुखदेव कॉलिज के कपड़े पहिनने लगा तो कमीज़ में एक ही बटन बचा पाया।

सुई-डोरा और बटन हाथ में लिये भाभी के आगे आ खड़ा हुआ। श्यामा थाली परोस कर खाना शुरू ही कर रही थी। सुखदेव ने कमीज़ उस की गोदी में रखकर कहा—'जल्दी, भाभी, जल्दी!'

भाभी जल्दी-जल्दी बटन टाँकने लगीं। और तब सुखदेव की नजर भाभी के परोसे हुये भोजन पर गई। तरकारी, जो जलकर काली हो गई थी, अकेली-अकेली थाली में सजी थी।

तभी भाभी ने कमीज़ ऊपर को करके कहा—'लो, थामो। अब मुझे भी पेट में कुछ डाल लेने दो।'...

बड़ा भतीजा बाहर दरवाज़े पर खड़ा था। उस के स्कूल की आज छुट्टी थी। कॉलेज जाने लगा तो सुखदेव उस का हाथ पकड़ कर खींचता हुआ ले गया जल्दी-जल्दी बड़ी दूर तक।

चार मिनिट बाद लड़के ने दही का कुल्हड़ माँ के आगे ला धरा।

श्यामा उसी जली तरकारी से रोटी खाये जा रही थी। दही देखकर अचरज से पूछा—'कहाँ से ले आया रे ?'

लड़का बाहर को भागता-भागता बोला—'चाचाजी ने दिया है।'

—२—

पड़ोस में रहने वाली पंजाबिन बच्चों के कपड़े बहुत सस्ते सीती थी। उसके आदमी को श्यामा ने पति से आग्रह कर-करके उन्हीं के आफ़िस में लगवा दिया था। सुखदेव अपने सब कपड़े जे० बी० दत्ता कम्पनी में सिलवाता था। बच्चों की कमीज़ें भी पिछली बार उस ने वहीं सिलवाईं। वे सब कमीज़ें पहिनने पर बच्चों को छोटी हुईं और सिलाई लगी इतनी। देवर-भाभी में एक द्वन्द्व-युद्ध हो गया। फलतः इस बार बच्चों की कमीज़ें पंजाबिन को दीं श्यामा ने। सिलाई ऐसी सुघड़ हुई कि देखकर दिल ख़ुश हो गया। ख़ुश होकर उस के आगे एक रुपया धरा और हँस कर बोली—'अबकी बार मुन्ना के बाबू की कमीज़ें भी तुम्हीं से सिलवाऊँगी बहिन!'

'ज़रूर-ज़रूर, बहिन जी! मुझी से सिलवाना बाबूजी की कमीज़ें। यह रुपया रख लो, बहिन जी, यह रुपया रख लो।'

श्यामा ने कहा—'नहीं बहिन, सिलाई तो तुम्हें लेनी ही होगी।'

पंजाबिन बोली—'मुझ पर ज़ुल्म न करो बहिन जी!' आँखों में आँसू भर कर बोली—'ज़ुल्म न करो मुझ पर! मुझे इतना जुदा न करो रानी जी! मुन्ना क्या मेरा बेटा नहीं है? तुम्हें मेरे सिर की कसम बहिन जी, यह रुपया उठा लो!'...

वही एक रुपया था श्यामा के पास और उसी रुपये को लिये-लिये सारे दिन घूमती रही कि 'आज साबुन मँगाकर छोड़ूँगी।' पर ऐसी तक़दीर फिरी कि कोई न मिला साबुन लाने वाला। तब खीझ कर बड़े लड़के को समझा-बुझाकर गली के मोड़ वाली दूकान पर भेजा साबुन लाने और सन्तोष की साँस ले कर बोली मन ही मन, 'सुबह अपनी नई टिकी से जब नहाऊँगी तो देखूँगी! रोज़ लगाऊँगी साबुन!'

पर लड़के की अक़्ल पर पत्थर पड़ गये। दो आने का कपड़े धोने का बदबूदार साबुन और चौदह आने पैसे माँ के सामने रखकर भाग गया।

श्यामा ने वह दो आने का साबुन उठा कर कोने में फेंक दिया और लड़के को कोसती रसोई बनाने लगी।...

आध घंटे बाद पति आ पहुँचे और उस के आध घंटा बाद देवर। खाना तैयार हो चुका था। पति के कोई मित्र आ गये थे और बातों की झड़ी लगाये थे। श्यामा दस बार उस कमरे के दरवाज़े पर झाँक कर लौट आई और दो बार लड़के को भी बाप के पास भेजा। ब्रजलाल ने कहा—'आते हैं।' पर वह बातूनी भला आदमी न उठा, न उठा।

हार कर श्यामा ने देवर से कहा—'लल्ला, तुम तो खाओ। वे तो आज बातों से ही पेट भरेंगे!'

सुखदेव ने हौले से कहा—'कहो तो मैं जाऊँ और उन से हाथ जोड़ कर कहूँ, 'अब तशरीफ़ ले जाइये, श्रीमान्!'

श्यामा ने हँसकर कहा—'गोली मारो श्रीमान् को! लो, मैंने थाली परोस दी।'

सुखदेव ने चारों ओर नज़र दौड़ाकर पूछा—'बच्चे कहाँ हैं?'

श्यामा हँसकर बोली—'चाचा की सुसराल गये हैं। प्रियंवदा का नौकर आया था। उन के यहाँ आज कथा है। तुम नहीं जाओगे?'

'बको मत!' सुखदेव ने जल्दी से कौर मुँह में देकर कहा—'पानी दो गिलास में।'

ऊपर पानी बन्द हो गया था। ऊपर वाली सेठानी यहाँ बाल्टी लगाये खड़ी थी। हँसकर बोली—'म्हाने भर लेने दो जी।'

श्यामा पानी लेकर लौटी तो सुखदेव खा चुका था। अचरज से बोली—'खा चुके? दो परावँठों से ही पेट भर गया!'

पर सुखदेव ने जल्दी-जल्दी पानी पिया और जल्दी-जल्दी कमीज़ पहिनकर पैरों में चप्पलें डाल कर खड़ा हो गया रसोई-घर के सामने।

श्यामा जूठी थाली लेकर बाहर निकली और उसे यों खड़ा देखा तो रुक गई।

सुखदेव ने हौले से कहा—'भाभी !'

भाभी हौले से बोलीं—'क्यों, क्या है ?'

'भाभी, आज बहुत अच्छी फ़िल्म लगी है ।'

'तुम जा रहे हो ?'

'पैसे नहीं हैं ।'

भाभी ने सोच कर कहा—'चौदह आने से काम चल जायेगा ? चौदह आने हैं मेरे पास ।'

'लाओ, लाओ !'

श्यामा ने थाली वहीं रख दी और दौड़ी जाकर बक्स में से चौदह आने निकाल लाई और देवर की जेब में वे चौदह आने डाल कर बोलीं हौले से—'वह उधर वाली कुंडी खटखटाना । मैं जागती रहूँगी ।'

सुखदेव ने हौले से कहा—'अच्छा । भाई साहब पूछेंगे तो क्या कहोगी ?'

श्यामा ने हौले से कहा—'कह दूँगी कि प्रोफ़ेसर शर्मा के यहाँ गये हैं !'

सुखदेव ने प्रसन्न होकर कहा—'बस-बस, यही कह देना ।' और दरवाज़े की ओर दबे-पाँव बढ़ा और चौखट के पार हो गया । फिर किवाड़ों पर मुँह रख कर हौले से पुकारा—'भाभी !'

भाभी लपक कर आगे आईं । हौले से बोलीं—'हाँ ।'

सुखदेव ने हौले से कहा—'नमस्ते !'

तभी ब्रजलाल ने पीछे से आवाज़ दी—'खाना परोसो ।'

—३—

प्रियवंदा से सुखदेव का परिचय था । दो साल पहिले वह एक लड़की को पढ़ाने जाता था । वहीं अपनी शिष्या की सहेली के रूप में प्रथम साक्षात्कार हुआ था । फिर वह परिचय प्रगाढ़ होकर जब रूप बदलने लगा—और स्नेह की वर्षा होने लगी दोनों ओर से तो भाग्यदेवता बहुत हँसे । किसी को कानों-कान ख़बर न हुई और स्नेह का रंग प्रणय में

परिणत हो गया। उस लड़की की पढ़ाई बन्द हो गई तो और उपाय न पाकर कागज़ के टुकड़ों पर मन के अन्तराल की बातें अङ्कित हो कर आने-जाने लगीं। भाग्य के देवता हँसते रहे।

श्यामा एक दिन धोबी को मैले कपड़े दे रही थी। जेबें खाली करके देवर का कोट डालने लगी धोबी के आगे तो उस में एक पत्र पाया, जिस में लिखा था—'प्राणों के स्वामी,...'

ख़ूब ख़ुश हुई वह और सुखदेव को ख़ूब डराया-धमकाया। तुच्छ-सा हो गया वह भाभी के आगे। सिर झुका लिया और बार-बार उस चिट्ठी को लौटाने की ज़िद करने लगा। श्यामा ने हँसी रोक कर कहा—'नहीं, वह चिट्ठी तुम्हें नहीं, तुम्हारे भैया को दूँगी! ज़रा आटे-दाल का भाव मालूम हो तुम्हें!'

सुखदेव से और कुछ बन न पड़ा, भाभी के पैरों पर अपना सिर रख कर रोने लगा। ऐसा कायर निकला प्रेमी!...

उसी दिन से भाभी 'नर्म-सचिव' हो गईं। उन्हीं की सलाह से सब काम होने लगा। एक दिन नुमाइश में दूर से प्रियंवदा के दर्शन भी करा दिये भाभी को। घर लौटने लगे तो राह में भाभी चलती-चलती बोलीं—'हे भगवान्, यही तुम्हारी प्रियंवदा है! रूप की जोत लिये सारी नुमाइश को चकाचौंध किये थी। हाय राम, मैं तो उस के पैरों की धोवन भी नहीं हूँ! कैसे उस की जिठानी बन पाऊँगी? मुझे 'जीजी' कहते भी वह घिनायेगी, मुझे देख कर हँसेगी।'

सुखदेव सुनकर हौले से बोला—'गला काट लूँगा!'

भाभी बोलीं—'किस का गला काट लोगे? मेरा?'

पर सुखदेव और कुछ न बोला।...

दूसरे दिन प्रियंवदा का नौकर श्यामा को एक छोटी-सी 'पाती' दे गया, जिस में 'जीजी' के चरण-कमलों में 'दासी' प्रियंवदा के प्रणाम की बात लिखी थी और लिखा था कि 'अभागिन से ऐसा क्या अपराध हो

गया जो इतने निकट आकर भी राजराजेश्वरी माता बिना दर्शन दिये चली गईं ? एक बार चरणों की रज अपने माथे पर लगा लेती। जीवन कृतार्थ कर लेती अपना...'

पर 'राजराजेश्वरी' का यहाँ यह हाल था कि तन पर कभी पूरे कपड़े भी नहीं हो पाते थे।...

ठंढ पड़ने लगी और सुबह तड़के-तड़के नहा कर रसोई चढ़ाते जब श्यामा को कँपकँपी लगने लगी तो उस ने याद करके देवर का बक्स खोल कर वह पुराना स्वेटर निकाल लिया, जिसे कीड़ों ने जगह-जगह काट कर तरह-तरह के वातायन और गवाक्ष बना दिये थे, हवा के आने-जाने के लिए।

उसी स्वेटर को रोज़ सुबह पहिन लेती और गरमी पाकर कहती कि 'चलो, अच्छा है। यह जाड़ा मज़े में काट देगा।'

...रात को सिनेमा देखा सुखदेव ने, सुबह सूरज चढ़े तक गहरी नींद ली। फिर भी देही का आलस्य न गया। एक जम्हाई लेकर छोटे भतीजे से बोला—'चलो बेटा, चाय पी आयें।'

लड़का कूद कर बोला—'चाचाजी, बिस्कुट भी खायेंगे न ?'

सहसा सुखदेव को याद आया कि चायवाले के नौकर को उस ने अपना स्वेटर देने का वायदा किया था। वह बक्स खोल कर पुराना स्वेटर खोजने लगा। पर स्वेटर न मिला। एक-एक करके सारे कपड़े बाहर निकाल कर फेंक दिये। पर स्वेटर के दर्शन न हुए। कहाँ गया ?

भाभी रसोई-घर में बैठी दाल बीन रही थीं। उन से आकर पूछा—'मेरा स्वेटर था एक पुराना ?'

भाभी ने बिना सिर उठाये कह दिया—'मैंने ले लिया है।'

'तुम ने कैसे ले लिया ?'—सुखदेव ने माथे पर बल डाल कर कहा—'तुम ने क्यों मेरा बक्स खोला ? क्यों ले लिया मेरा स्वेटर ?'

भाभी ने शान्त स्वर में कहा—'बेकार पड़ा था, इसलिए निकाल लिया।'

सुखदेव ने स्वर को तीव्र करके कहा—'मुझ से बिना पूछे तुम ने कैसे ले लिया ? तुम मेरी चीज क्यों छूती हो ?'

भाभी सुन कर चुप रहीं।

सुखदेव ने उसी स्वर में कहा—'कहाँ है स्वेटर ? लाओ, दो !'

भाभी ने शान्त स्वर में कहा—'चलो अपने कमरे में। लाये देती हूँ स्वेटर।'

'यहीं लाकर दो अभी, फ़ौरन !'

भाभी ने इधर को पीठ करके स्वेटर उतारा फिर उधर को मुँह करके शान्त स्वर से कहा—'यह लो !' और नतमुख किये हौले से कहा—'बाक़ी कपड़े भी उतरवा लो तन के !'

सुखदेव क्षण भर भौंचक्का-सा खड़ा रहा। स्वेटर वह सामने पड़ा था और भाभी सिर झुकाये, फिर दाल बीनने लगी थीं। सुखदेव वह स्वेटर उठाने लगा, तो एक बार भाभी के झुके मुख की ओर देखा। आँखों से आँसू टपक रहे थे भाभी के···।

× × ×

वही कल वाला बातूनी आदमी सुबह होते ही फिर आ धमका था। ब्रजलाल को अपने साथ ले गया सड़क तक बातें करते-करते। साढ़े नौ बजे उधर से लौटे तो हँस रहे थे। खाने बैठे तब भी-हँस रहे थे। हँसते गये और खाते गये। और खाते-खाते ही बोले हँस कर—'तुम्हारी देवरानी को देख आये।'

श्यामा तब से गुम-सुम बैठी थी। वह सुन कर कुछ न बोली। पति ने हँस कर कहा—'लड़की ज़रा उठते क़द की है। सुखदेव के कन्धों तक समझो।'

श्यामा ने फिर भी कुछ न कहा। पति हँस कर बोले—'पैसा बहुत है

उस के पास। सुखदेव को विलायत भेजने को तैयार है। एक मकान दहेज में देने को कह रहा है।'

श्यामा फिर भी चुप रही।

ब्रजलाल ने खाना समाप्त करके पानी पिया और उठ गये। घड़ी की ओर देखते गये और कपड़े पहिनते गये। फ़ाइल सँभाली और शीशे में अपना मुँह देखा। बाहर को बढ़े कि श्यामा ने रास्ता रोक कर कहा—'मेरे लिए एक स्वेटर ला दो।'

'स्वेटर!'—पति ने झिड़की देकर कहा—'क्या कह रही हो? मुझे आफ़िस को देरी हो रही है और तुम स्वेटर की फ़रमाइश कर रही हो! सुखदेव से कहना।'

श्यामा ने सिर झुका कर कहा—'तो मुझे कुछ रुपये दो आज। मैं मँगवा लूँगी किसी से।'

'किसी से क्यों?'—ब्रजलाल ने जल्दी से एक दस रुपये का नोट नकाल कर कहा—'सुखदेव ले आयेगा। लो, थामो। है कहाँ सुखदेव?'

पर सुखदेव का पता न था। घंटे पर घंटा बीतता गया। सुखदेव जाने कहाँ जाकर बैठ गया था। खाना ठंडा होने लगा। श्यामा बार-बार दरवाज़े तक आ कर दूर तक नज़र दौड़ाने लगी। दोनों लड़के एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर, चायवाले की दूकान पर जाकर चाचाजी को खोज आये और उदास होकर भूखे-प्यासे लेट रहे चाचाजी के पलंग पर।

दूर गली के छोर पर एक सङ्गी लड़का रहता था। श्यामा ने घबरा कर बड़े मुन्ना से कहा—'जा तो, विद्याभूषण के यहाँ चला जा भैया! कहियो कि हमारे चाचाजी अभी तक घर नहीं लौटे। तुम को मिले थे? कहाँ गये हैं चाचाजी? कहियो कि हमारी माँ बहुत घबरा रही हैं।'

तभी खट्-से किसी के जूतों की आवाज़ हुई। श्यामा ने चौंक कर देखा तो सुखदेव सिर झुकाये फ़ीते खोल रहा था।

खाते समय बिलकुल सन्नाटा रहा। लड़के भी इशारे से एक-दूसरे से बातें करते रहे। सुखदेव ने तो एक बार भी थाली से सिर न उठाया।

तीनों जने खाकर कमरे में लौट गये और लड़कों की धूम-धड़ाक सुनाई देने लगी तो श्यामा ने एक सन्तोष की साँस ली।

सहसा बड़े लड़के ने हाँफते आकर माँ को एक कागज़ दिया और बोला—'ले, पढ़ ले। चाचाजी ने दिया है। ले, पेन्सिल ले यह। जवाब लिख।'

श्यामा ने हाथ का काम रोक कर अचरज से वह कागज़ पढ़ा। सुखदेव ने लिखा था—

'मुझ से प्रोफ़ेसर शर्मा की एक किताब खो गई है। आज उन्होंने अपनी किताब माँगी है। बाज़ार से ख़रीद कर ले जाऊँगा। साढ़े दस रुपये चाहिए। आप किसी से उधार दिलवा दीजिए। मैं सुबह से रुपयों की कोशिश करता रहा, पर कहीं नहीं मिले। आप कहीं से दिलवा दीजिए। भाई साहब से न कहियेगा, आप को मेरे सिर की कसम है। इति।'

श्यामा ने उसी कागज़ की पीठ पर लिखा—

'मेरे पास दस रुपये हैं। आप चाहें तो ले सकते हैं। आठ आने का इन्तज़ाम कर लीजिए। इति।'

ज़रा देर बाद लड़का फिर दूसरा कागज़ ले आया। सुखदेव ने लिखा था—

'दस रुपये ही सही। दे दीजिए। भाई साहब से न कहियेगा। मैं अगले महीने में आप को रुपये लौटा दूँगा। इति।'

श्यामा ने दूसरी ओर लिखा—

'मैं आप के भाई साहब से नहीं कहूँगी। आप ये रुपये मुझे अब लौटाइयेगा नहीं, आप को मेरे सिर की कसम है। इति।'...

—४—

शाम को सुखदेव कालेज से लौटा तो घर में कुहराम-सा मचा था। बड़ा लड़का मुन्ना बाहर आँगन में खड़ा रो रहा था। और भाभी वाले कमरे से छोटे की चीख़-पुकार सुनाई दे रही थी—'हाय चाचाजी! हाय चाचाजी!'

सुखदेव ने घबरा कर मुन्ना से पूछा—'क्या हुआ रे?'

मुन्ना रोता-रोता बोला—'अम्माँ ने उसे बहुत मारा है। अब रस्सी से बाँध रही हैं!'

सुखदेव ने जल्दी से किताबें आलमारी में फेंकी और जूते बिना उतारे फड़ाक्-से किवाड़ खोल कर भीतर जा खड़ा हुआ, जहाँ भाभी छोटे भतीजे के दोनों कोमल हाथ रस्सी से बाँध रही थीं और मुख से कहती जा रही थीं—'बुला चाचाजी को! देखूँ, कौन तुझे बचाता है? और चिल्ला, और पुकार चाचाजी को!...'

सुखदेव ने धक्का देकर श्यामा को पीछे ढकेल दिया और जल्दी-जल्दी बच्चे के हाथ खोल कर उसे कलेजे से लगा लिया। बच्चा चाचाजी से चिपट कर ख़ूब फूट-फूट कर रोने लगा।

आँखों में आँसू भरे सुखदेव ने भाभी की ओर निहार कर पूछा—'क्यों मारा तुम ने इसे?'

भाभी न बोलीं। हाथ पर हाथ धरे बैठी रहीं।

'क्यों मारा तुम ने इसे?'

भाभी ने हाथ उठा कर कहा—'ज़रा अपने कमरे में तो जाकर देखो! तुम्हारी भरी दावात उलट दी नासपीटे ने! एक रुपये का नुक़सान कर दिया!'

सुखदेव ने कहा—'इसीलिए तुम ने मारा, क्यों?'

भाभी चुप रहीं।

सुखदेव ने कहा—'आज माफ़ करता हूँ। आइन्दा जो तुम ने बच्चे पर हाथ चलाया तो मैं खाना छोड़ दूँगा। समझीं ?'

भाभी न बोलीं।

सुखदेव ने बाहर जाते-जाते कहा—'हत्यारिन ने ज़रा-सी दावात के पीछे अधमरा कर दिया मेरे लड़के को !'

और वह बच्चे को पुचकारता बाहर आँगन तक आया तो एक किनारे हाथों में ढँका थाल लिये प्रियंवदा के नौकर को खड़ा पाया। तब वह भाभी को एक आवाज़ देकर भतीजे को लिये-लिये अपने कमरे में आकर टहलने लगा···।

प्रियंवदा के यहाँ भोज हुआ था। बच्चों को बुलाया था, पुरुषों को बुलाया था, स्त्रियों को बुलाया था। बच्चे, पुरुष, स्त्री, कोई भी न गया यहाँ से। दुखी होकर प्रियंवदा ने स्वयं भोजन न किया। फिर उदास होकर नौकर के हाथ बच्चों के लिए मीठा भिजवाया अपनी माँ से कहकर।

नौकर थाल ख़ाली करके हाथ जोड़कर विनय के स्वर में श्यामा से बोला—'माँ जी, आप को बीबीजी ने बुलाया है। जब कहें, मैं आप को लिवा ले चलूँ। एक दिन चल कर हमारी झोपड़ी पवित्र कर आइए माँ जी !'

श्यामा को बहुत अच्छा लगा। प्रसन्न होकर बोली—'वह तो मेरा अपना ही घर है। तू ऐसी बातें मत कह।'

नौकर हाथ जोड़े बोला—'तो कब चलेंगी माँ जी ?'

श्यामा ने अधीर भाव से कहा—'कल इतवार है। इन लोगों की छुट्टी होगी। कल ही चलूँगी। तू दोपहर को आ जाना। खा-पीकर चलूँगी।'

नौकर सिर हिला कर बोला—'सो नहीं होगा माँ जी ! वहीं जीमियेंगा। रूखा-सूखा जो कुछ हम ग़रीबों के घर बने···।'

श्यामा ने हँस कर कहा—'अच्छा, यही सही।'

—५—

उस शाम को ब्रजलाल देर से घर लौटे। वह बातूनी फिर मिल गया क्या रास्ते में?

ख़ूब भुखा गये थे। आते ही बोले—'खाना लाओ। यहीं कमरे में ले आओ।'

श्यामा ने दृढ़ स्वर में कहा—'खाना नहीं है।'

पति ने अचरज से पूछा—'क्यों, अभी तक नहीं बना क्या?'

'बना है,' श्यामा ने दृढ़ स्वर में कहा—'लेकिन तुम्हारे लिए नहीं।'

ब्रजलाल ने खीझ कर कहा—'क्या बक रही हो? जाओ, थाली परोस कर लाओ।'

श्यामा पासवाली कुरसी पर धम्म-से बैठ गई और हाथ उठा कर बोली—'पहिले एक बात का फ़ैसला कर दो, तब खाना लाऊँगी!'

'बोलो, क्या है?'

श्यामा ने आगे को झुक कर कहा—'इस घर की मालकिन कौन है?'

ब्रजलाल ने हँस कर कहा—'तुम!'

श्यामा ने कहा—'उस बातूनी आदमी से तुम ने यह बात कही या नहीं?'

ब्रजलाल ने हँसकर पूछा—'अगर न कही हो तो?'

'तब वह मेरे देवर से अपनी लड़की ब्याहने वाला कौन होता है? और तुम्हीं क्या हक़ रखते हो इस तरह मुझ से बिना पूछे कोई बात कहने का?'

'मैं उस का बड़ा भाई हूँ।'— पति ने हँस कर कहा।

'और मैं कौन हूँ?' श्यामा ने आँखें सिकोड़ कर पूछा।

'तुम भाभी हो उस की।'

'सिर्फ़ भाभी?'

ब्रजलाल चुप रह गये।

श्यामा ने सिर तान कर कहा—'जनाब, मैं ही उस की माँ हूँ। मैं ही उस की बहिन हूँ। मैं ही सब-कुछ हूँ उस की। समझे ? मेरी आज्ञा के खिलाफ़ वह एक क़दम नहीं रख सकता। विश्वास न हो तो करके देख लो कुछ। तुम यह शादी ठहराओ, मैं कल ही उसे लेकर यहाँ से चली जाऊँगी। बहुतेरा कमा लेगा। तुम समझते क्या हो मुझे ?'

ब्रजलाल ने कहा—'तुम क्या कहलवाना चाहती हो मुझ से ? जल्दी से बतला दो। मैं कहने को तैयार हूँ। खाना ला दो फिर।'

श्यामा ने कहा—'अब आये ठिकाने पर ! अच्छा कहो, 'तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध—'

ब्रजलाल ने जल्दी से कहा—'तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध—'

श्यामा ने आगे कहलवाया—'कहो—कुछ न होगा।'

'कुछ न होगा।'—ब्रजलाल ने जल्दी से दोहरा कर कहा—'अब खाना ले आओ।'

पर श्यामा न उठी। बोली—'कहो, 'मुझ से आज ग़लती हुई है, यानी—'.और अचानक सुखदेव को सामने खड़ा देख कर चुप रह गई वह।

देवर ने शायद वह उतनी आधी बात सुन ली। ब्रजलाल ने सिर उठाया तो वे भी छोटे भाई को देख कर सकपका गये। श्यामा सिर पर अंचल खींच कर भागी···।

खाना प्रायः समाप्त हो चुका था। ब्रजलाल ने पानी पीकर एक डकार ली फिर पत्नी के शान्त, सौम्य मुख की ओर क्षण भर निहार कर बोले—'तो यहाँ अपने देवर की शादी न करोगी ?'

'हरगिज़ नहीं !'—श्यामा सिर हिला कर बोली।

पति ने हँस कर कहा—'वह मुझे सौ रुपये भेंट कर गया है।'

'लौटा दो।'—श्यामा ने फ़ौरन कहा।

पति बोले—'लौटा दूँगा। लेकिन परसों सुखदेव को अगली परीक्षा की फ़ीस दाख़िल करनी है। कल इतवार है। कहो तो कुल एक सप्ताह के लिये ये रुपये रख लूँ। पहिली तारीख़ की शाम को वेतन मिल जायेगा। उसी दिन दे आऊँगा।'

'जी नहीं।'

'तब उस की फ़ीस का क्या इन्तज़ाम करूँ?'

'मैं कर दूँगी इन्तज़ाम। ऊपर वाली मारवाड़िन लोगों के ज़ेवर गिरवी रखती है। मैं अपनी लाकेट गिरवी रखकर तुम्हें रुपये ला दूँगी। अभी ला दूँ? सन्तोष न हो तो ला दूँ अभी? तुम ने समझा क्या है?'

व्रजलाल ने दोनों हाथ जोड़कर सिर से लगाये और मुँह से कहा—'नमस्कार शत बार!'

श्यामा ने घबरा कर कहा—'अरे, लल्ला आ रहे हैं! हाथ नीचे करो, हाथ नीचे करो, हाथ नीचे करो!'

पर सुखदेव इधर न आया। वहीं आँगन से खड़ा-खड़ा बोला—'भाभी, भूख लगी है।'

—६—

रविवार को दोनों भाइयों का नियम-सा था कि सुबह नाश्ता करके निकल जाते यार-दोस्तों में और दोपहर को बारह-एक बजे तक लौटने का नाम न लेते। वही आज भी हुआ।

श्यामा को प्रियंवदा के घर जाना था। उस ने जल्दी-जल्दी रसोई बनाई, फिर सब सँभाल-सुधार कर वहाँ जाने की तैयारी करने लगी। शीशे के सामने जा खड़ी हुई। भौंहों के नीचे से गाल तक कालिख लगी दीखी। हथेली से रगड़कर उस कालिख को मिटाने लगी आँखें मींच कर। काफ़ी देर तक रगड़ा। फिर जो आँखें उघार कर शीशे में देखा तो सनाका

हो गया। सारा चेहरा काला हो गया था। सारे चेहरे पर वह कालिख फैल गई थी।

श्यामा ने घबरा कर चारों ओर नज़र दौड़ाई कि कोई देख तो नहीं रहा है। फिर जल्दी से साबुनदानी उठा कर गुसलख़ाने की ओर भागी गई।

मुख धोया साबुन से, हाथ धोये साबुन से। फिर पैरों की ओर नज़र गई तो पैर भी बहुत गन्दे दीखे। तब फिर पैरों पर भी साबुन मलने लगी।

सहसा बाईं ओर किसी की परछाईं देखकर श्यामा ने साबुन मलते-मलते उधर को मुँह किया तो हाथ जहाँ-के-तहाँ रुक गये और आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा।

सामने नंगे-बदन, कन्धे पर धोती-तौलिया डाले, सुखदेव खड़ा था निश्चल, निर्वाक्।

श्यामा से कुछ न बन रहा था। यों ही पैर पर साबुन लगाये बैठी रही।

आख़िर सुखदेव ने ही वह निस्तब्धता तोड़ी। मुसकरा कर मुँह खोलकर बोला—'बैठी क्या हो ? पैर धोकर हटो न !'

तब मानो श्यामा की चेतना लौटी। ओठों में तनिक मुसकराई और जल्दी-जल्दी पैर धोकर उठ आई वहाँ से। कमरे में आकर शीघ्रता से साबुन की टिक्की एक कपड़े पर दबा-दबा कर सुखाई फिर बड़े जतन से उसे साबुनदानी में रख कर ले आई।

सुखदेव पाइप खोलकर खड़ा था और जाने क्या सोचता पानी की धार को देख रहा था। खट् से भाभी ने पैरों के पास वह साबुनदानी रख दी और लौट चलीं लम्बे डग भरतीं।

सुखदेव क्षण भर साबुनदानी को निहारता रहा। फिर उस ने नीचे झुक कर साबुन की टिक्की उठा ली और फिर तड़ित्-वेग-से दूर जाती भाभी की ओर वह साबुन फेंक दिया ज़ोर से।

पर साबुन भाभी के न लगा। जाने कैसे उसी जगह ऊपर वाले मारवाड़ी सेठ सामने आ पहुँचे और जाने कैसे वह साबुन सेठ जी की तोंद पर फटाक् से लगा।

'अरे मार डाला, रे!' सेठ जी वहीं पेट पकड़ कर बैठ गये।

श्यामा ने पीछे घूम कर देखा और सुखदेव ने भी देखा। घबराकर, वह सेठ जी के पास दौड़ा आया, और दोनों हाथों से उन की वज़नी देह उठाता बोला—'अभी इधर एक बन्दर कूदा था। मैंने देखा था, उस के हाथ में यह साबुन था।'

सेठ जी ने एक हाथ की टेक ज़मीन पर लगाई और दूसरे हाथ में वह सामने पड़ा साबुन लेकर उठ बैठे किसी तरह। फिर उस साबुन को लौट-पौट कर निहारा और सुखदेव की ओर तिरछी नज़र से ताक कर बोले—'साबुण तो नयो है! कै आगे को माल दे गयो हनूमान्?'

सेठ जी साबुन लेकर चल दिये। सुखदेव और श्यामा देखते रह गये।...

आख़िर प्रियंवदा का नौकर आ गया बुलाने। श्यामा ने दोनों लड़कों को सजा-सुजू कर बाहर खड़ा किया। फिर डरती-डरती देवर के पास आकर बोली—'ज़रा अपना रूमाल दे दोगे?'

'क्यों तुम्हारा रूमाल क्या हुआ?'

'मेरे पास कब था रूमाल?'

'तो यों ही जाओ।'

श्यामा ने अनुनय करके कहा—'दे दो ज़रा देर के लिए!'

सुखदेव ने चिल्लाकर कहा—'नहीं दूँगा रूमाल! चलो जाओ सामने से!'

श्यामा ने मुँह पर हाथ रख कर कहा—'अरे, धीरे बोलो। बाहर नौकर खड़ा है!'

सुखदेव ने और चिल्लाकर कहा—'नौकर की ऐसी-तैसी!'

[illegible] घबरा कर बाहर निकल आई ।

—७—

...प्रियंवदा ने उसी विनम्र टोन में कहा—'मैं सच कह रही हूँ दीदी, न जाने कितनी बार उन के मुँह से यह बात सुन चुकी हूँ कि 'मेरी भाभी के सामने [illegible] [illegible] की सीता भी तुच्छ हैं !', कितनी ही बार तुम्हारी बड़ाई [illegible], तुम्हारी बातें सुनाते-सुनाते आँखों में आँसू भर लाये हैं और भरे गले से कहा है कि 'भाभी मेरी इस धरती माता की तरह हैं । ऐसी ही सहनशील, ऐसी ही विशाल, ऐसी ही महान् !' मुझ से कहते थे कि 'उन की सेविका बनकर जीवन सफल कर लेना अपना । तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जायेंगे ।'—कहते-कहते प्रियंवदा का स्वर करुण हो उठा और नयन गीले हो गये ।

श्यामा न बोली । बोल नहीं पा रही थी । उस के कंठ में जाने क्या आकर अटक गया था । फिर रुक-रुक कर भरे गले से बोली—'मैंने जाने कितने पुण्य किये थे उस जन्म में, जो ऐसे पति और देवर पाये । सच मानो बहिन, वे लोग देव-योनि के हैं । राह की धूल उड़कर राजमुकुट से जा लगी । पर मुकुट तो मुकुट ही है सखी, और धूल धूल !'

प्रियंवदा की आँखें सजल हो गई थीं । उन्हीं सजल आँखों से दीदी का सौम्य मुख निहार कर बोली—'दीदी, तुम देवता के कंठ की वरमाला हो । राह की धूल तो मैं हूँ, जो इन चरणों से लग कर पवित्र हो गई ।'—कहकर उस ने श्यामा के पैरों से अँगुलियाँ लगा कर माथे से छुआ लीं ।

तभी छोटा लड़का घर की पालतू बिल्ली को गोद में लिये आ खड़ा हुआ । प्रियंवदा ने दोनों हाथ बढ़ा कर उसे गोदी में खींच लिया, फिर दो बार उस के शुभ्र, सुन्दर कपोलों का चुम्बन करके बोली—'तुम्हारा क्या नाम है भैया ?'

लड़के ने ऊपर मुँह करके कहा—'पहिले तुम अपना नाम बतलाओ !'

प्रियंवदा हँसने लगी ।

श्यामा ने हौले से कहा—'ये तुम्हारी चाची जी हैं। समझे?' फिर प्रियंवदा की स्वच्छ साड़ी की ओर देखकर बोली—'बेशऊर, चमार कहीं का! सारी साड़ी गन्दी कर दी पैरों से। उतार दो बहिन इसे।'

लड़का प्रियंवदा के गले से लिपट कर बोला—'नहीं उतरूँगा! ऐं, चाचीजी?'

प्रियंवदा ने पुलकित होकर बच्चे को फिर चूम लिया और हौले-हौले कहने लगी—'मेरा राजा भैया विलायत जायेगा पढ़ने। बैरिस्टर बनेगा न?'

लड़के ने कहा—'मैं तो प्रेसीडेण्ट बनूँगा!'

श्यामा हँसने लगी। हँसती हँसती बोली—'यही सब रटा दिया है चाचाजी ने।'

प्रियंवदा पुलकित होकर बोली—'कहते हैं कि 'मेरे जीवन की सब से बड़ी साध यही है कि इन दोनों को बड़ा आदमी बना दूँ। भैया ने आधे पेट रह कर पसीना बहाकर मुझे आदमी बनाया है। मैं अपने तन का रक्त देकर इन बच्चों के व्यक्तित्व महान् कर सका तो जीवन सफल समझूँगा।' क्यों रे, विलायत जायेगा न?'

लड़के ने प्रियंवदा की गोदी में सिर छिपा कर कहा—'नहीं चाचीजी, मुझे तो चाचाजी अमेरिका भेजेंगे पढ़ने को। हवाई जहाज़ से जाऊँगा। तुम कभी बैठी हो चाचीजी, हवाई जहाज़ में?'

तभी सहसा प्रियंवदा की माँ ने आकर कहा—'बेटी चलो, खाना खाओ।'...

रामाशंकर प्रियंवदा का बड़ा भाई था। उस की चौक में बहुत बड़ी दूकान थी। पत्नी उस की मर गई थी। घर का कर्त्ता-धर्त्ता वही था।

रामाशंकर व्यस्त होकर श्यामा के लिए स्वयं थाली लगा रहा था कि वह आ पहुँची। अम्माँ जी भीतर जाने क्या लेने गईं कि चट्-से श्यामा

कढ़ाई के पास जा बैठी और एक पूरी बेलकर गरम घी में छोड़ दी और प्रसन्न मुद्रा से बोली—'आज भैया को मैं बनाकर खिलाऊँगी !'...

उसी सजी थाली में रामाशंकर भैया को खिला कर श्यामा चूल्हे के पास से उठ आई। फिर पास खड़ी प्रियंवदा का हाथ पकड़ कर खींचती हुई बोली—'आओ सखी ! मुझे तो बड़ी भूख लगी है।' और वही भैया का जूठा थाला आगे को खींच ली और पुकार कर कहा—'अम्माँ, हम लोगों को खाना परोस जाओ।'

× × ×

अम्माँ ने धड़कता कलेजा लिये पूछा—'तो फिर बेटी, मैं कल रामा को भेजूँ बड़े दामाद के पास ?'

श्यामा ने भौंहें सिकोड़ कर कहा—'बड़े दामाद कौन खेत की मूली हैं अम्माँ ! तुम बड़ी बेटी की इज्ज़त गिराओगी क्या ? तुम्हारी बड़ी बेटी ने जो कुछ कह दिया, उसे पत्थर की लकीर समझो।'

अम्माँ मुँह देखने लगीं बड़ी बेटी का।

बड़ी बेटी ने तब तनिक नाराज़-सी होकर कहा—'तुम्हें यक़ीन नहीं हुआ क्या अम्माँ ? अरे, मैं कहती हूँ, सुखदेव के साथ प्रियंवदा की शादी होगी, होगी, होगी ! बस !'

रामाशंकर भी पास आ खड़ा हुआ था। श्यामा ने उस की ओर देख कर पूछा—'भैया, अपनी दूकान पर साबुन भी बिकता है न ?'

'बहुतेरा साबुन है तुम्हारी दूकान में। साबुन की तो एजेन्सी तक है।'

'तब एक शर्त्त है', श्यामा ने अँगुली उठाकर कहा।

अम्माँ का दिल धड़कने लगा। रामाशंकर भी घबराया—भगवान्, क्या शर्त है इस की ?

श्यामा अँगुली उठाकर बोली—'भैया, तुम्हें हर महीना मुझे एक साबुन की टिक्की देनी होगी। बोलो, हामी भरते हो ?'

रामाशंकर ठहाका मार कर हँस पड़ा।

अम्माँ ने आँखों में आँसू भर कर कहा—'पगली कहीं की !'

पर श्यामा न हँसी । बल्कि स्वर में दुख भर कर बोली—'तुम्हें क्या मालूम अम्माँ, कि मैं सावुन के लिए कितनी परेशान रही हूँ !'

रामाशंकर ने गद्‌गद कण्ठ से कहा—'वहिन, आज ही तुम्हारे पास एक पेटी सावुन भिजवा दूँगा ।'

नौकर पीछे से बोला—'मैं दे आऊँगा शाम को ।'

जाने किधर से बड़े लड़के ने सब सुन लिया । वह रामाशंकर के आगे आकर बोला—'मामाजी, आज जीजी से और चाचाजी से सावुन के पीछे ख़ूब लड़ाई हुई थी ।'

श्यामा ने चिल्लाकर कहा—'चुप रह चुगलख़ोर !'

पर लड़का न माना । उसी दृढ़ स्वर में बोला—'सच मामाजी, इस ने चाचाजी का सावुन ले लिया था । सो चाचाजी ने...'

श्यामा ने लपक कर उस का मुँह बन्द कर दिया ।

सारा घर हँस रहा था ।

दृष्टि-दोष

पुरोहित गोपालराम डेरे के भीतर क़ालीन पर सो रहे थे। दुपहरिया उतर गई थी और पवन थक कर शिथिल हो गया था। सूरज का गोला बाग़ों के पिछवाड़े जा पहुँचा था कि एक मधुर स्वर-लहरी की झङ्कार ने पुरोहितजी की नींद खोल दी। धीरे-धीरे पलक उघारे। एक किनारे धीमर बैठा चिलम में तमाखू जमा रहा था। डेरा ख़ाली पड़ा था। गोपालराम ने संगीत का आनन्द लेते हुए उसी धीमर से पूछा—'यह कौन गा रहा है?'

'रंडी!'—धीमर चिलम नीचे रख कर बोला।

'रंडी!'—पुरोहितजी ने आँखें फाड़कर कहा—'रंडी कहाँ से आ गई?'

धीमर मुसकरा कर बोला—'चन्दनपुर से चम्पा आई है। बाहर निकल कर देखिये, कित्ता हुजूम है। सारा गाँव जमा हो गया है और बराती भी झूम रहे हैं। एक रात को आई है, पूरे डेढ़ सौ लिये हैं!'

गोपालराम के माथे पर बल पड़ गये। दृढ़ कण्ठ से पूछा—'सेठ कहाँ हैं?'

धीमर मुसकरा कर बोला—'वे भी मजमे में बैठे हैं।'

'जा, बुला कर ला सेठ को।'—गोपालराम ने कहा।

तभी बाहर शोर-गुल-सा मच गया।...

चम्पा एक भजन गा कर रुकी थी और उस के सुन्दर मुख पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं और चारों ओर से आवाज़ें आ रहीं थीं—'ग़ज़ल हो।' 'इस बार ग़ज़ल हो।' 'नाच के साथ ग़ज़ल हो!' चम्पा सिर नत किये लाल-मूँगा जैसे ओठों से मुसकुरा रही थी। और एक जवान नाई सारी ताक़त लगा कर उस के ऊपर ताड़ का विशाल पङ्खा झल रहा था और प्रसन्नता से बत्तीसी काढ़े था।

चम्पा ने एक बार अपने चारों ओर नज़र घुमा कर देखा। फिर अपने मीरासी से पूछने लगी—'रूमाल कहाँ गया मेरा ?'

तब मीरासी ने भी चारों ओर रूमाल खोजा। पर रूमाल न मिला।

'यह लीजिये रूमाल !'

'यह लीजिये !'

'इस से पसीना पोंछिये !'

'यह लीजिये !'

फर-फर करके चारों ओर से रूमालों की वर्षा हो गई चम्पा के आगे। रंगीन, फूलदार, रेशमी—सब तरह के रूमाल सामने आ गिरे, तो चम्पा ने हँस कर एक सादा-सा रूमाल उठा लिया।

फिर शोर मचा—'अरे वाह रे लखना !' 'लखना का भाग्य देखो !' 'वाह रे लखना की तक़दीर !'

वह सादा रूमाल लखना का था। लखना अपनी छोटी-छोटी मोछें उमेठ कर मुसकराता बोला—'अजी, हमारी तो पुरानी मुलाक़ात है। जलो मत यारो, जलो मत !'

पर चम्पा ने ध्यान न दिया। रूमाल से पसीना सुखाती रही।

भीड़ के बाहर, एक ओर गाँव के छोकरे जमा थे। उन्हें किसी ने भीतर जाने न दिया था। एक चुलबुला छोकरा साथियों के बीच कमर मटका कर गाने लगा—

'मारे डाले पतुरिया की ठनगन रे,
हाय ठनगन रे, हाय ठनगन रे !'...

चम्पा उठकर खड़ी हो गई और एक बार धीरे से पैरों के घुँघरू बजा कर देखे, 'छुन्-छुन्' हुई और भीड़ के बीच कोई मस्त छैला चिल्ला उठा—'बोल दे राजा रामचन्द्र की जय !'

'जय !'—सैकड़ों कंठों से एक साथ गूँज गया।

चम्पा को हँसी आ गई। मुँह पर हाथ रख कर खाँसने लगी। नीचे

सारंगी पर धीरे-धीरे गज़ फिरा, हौले-हौले तबला ठनका और फिर घुँघरुओं की रुनझुन के बीच चम्पा ने मधुर नशीली आवाज़ में गाया—

'रोज़ एक क़त्ल हुआ, ओठ की लाली न गई...'

तभी अचानक एक तीव्र कर्कश ध्वनि आई—'बन्द करो गाना!' और खट्-से गाना बन्द हो गया और सारी भीड़ ने एक साथ पीछे को सिर घुमा कर देखा तो सेठ बनवारी लाल डेरे के आगे खड़े थे। चेहरा तमतमाया हुआ, आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं, क्रोध से देही थर-थर काँप रही थी। सन्नाटा छा गया। सेठजी ने हाथ उठाकर उसी स्वर में कहा—'बस, ख़तम करो सब।'

× × ×

कच्ची राह में, गले की घंटियाँ बजाते पछाहीं बैल गाड़ी को तेज़ी से खींचे लिये जा रहे थे। सूरज कब का डूब गया था और शुक्ल पक्ष का धनुषाकार चन्द्रमा अपना क्षीण आलोक लिये गाड़ी के साथ-साथ दौड़ रहा था। धीमी पवन बह रही थी और आगे दूर तक राह सुनसान पड़ी थी।

चम्पा हौले से बोली—'अच्छा ही हुआ। जान बची; नहीं तो सारी रात जागती—सारी रात गाना-बजाना चलता।'

चारों सहचर बारात से चलती बेला भाँग का बर्फ़ पड़ा शरबत पीकर आये थे। सुरूर चढ़ रहा था। तबलची बोला—'जान बची और लाखों पाये। घर के बुद्धू घर को आये!'

'बुद्धू काहे को हुए?'—मीरासी ने गम्भीरता से कहा—'हम ने तो डेढ़ सौ पहिले ही गिनवा लिये थे।'

तीसरे ने सिर पर हाथ फिरा कर कहा—'अब घर चलकर माल सूँतो चाँदनी में! सेठ ने पाँच परोसा और ढाई सेर मिठाई बँधवा दी है। यह धरी है गठरी!'—उस ने भोजन की गठरी एक बार टटोल कर देख ली।

चम्पा ने उदास स्वर में पूछा—'पर गोपालराम पुरोहित को तो मैंने देखा तक नहीं भीड़ में। कौन कहता था, उन्हींने गाना रुकवाया था ?'

गाड़ीवान ने फ़ौरन जवाब दिया—'हाँ, उन्हींने रुकवाया था। सेट से बोले कि मैं अभी घर लौटा जा रहा हूँ। यहाँ महफ़िल होने लगी, मैं अब नहीं रुकूँगा, यहाँ अन्न ग्रहण न करूँगा। तो सेठ ने कहा कि यह नहीं हो सकता। गानेवाले भाड़ में जायँ, गानेवालों के पीछे मैं आप का यों निरादर न होने दूँगा। आप अन्न ग्रहण न करेंगे तो मैं भी ग्रास न उठाऊँगा यहाँ। आप के आगे लेट जाऊँगा, मेरी छाती पर चरण रख कर चले जाइये !'

घड़ी भर किसी ने कुछ न कहा। फिर केवल चम्पा बोली खिन्न स्वर में—'लेकिन मैंने उन का क्या बिगाड़ा था जो पुरोहित यों नाराज़ हो गये ?'

गाड़ीवान मुँहफट गँवार था। बैलों को आगे हाँकता बोला—'उन्होंने अपना नियम बना लिया है। जहाँ, जिस बारात में रंडी नाचने आती है, वे उस बारात में नहीं जाते। कहते हैं कि मैं माँ भगवती का अपमान अपनी आँखों से नहीं देख सकता।'

तबलची नशे में बोला—'वह देवता आदमी है, देवता ! क्या समझते हो, नज़र से नज़र नहीं मिला सकते उस से। ऐसा तेज है आँखों में। यह चौड़ा माथा, सफ़ेद विभूति लगी है—चेहरा दप-दप चमकता है ! बस, चरणों पर झुक जाओ। मैं कहता हूँ, कोई ताक़त नहीं तुम्हारी जो उसे देखकर चरणों पर न गिरो। चरणों की रज आँखों से लगा लो, देव पुरुष का आशीर्वाद लो, जीवन सफल लगता है, भीतर तक सब पवित्र हो गया शरीर !'

'गृहस्थ हैं न ? बाल-बच्चे तो हैं न उन के ?'—चम्पा ने पूछा।

मीरासी को नशा कम चढ़ता है। उस ने शान्त भाव से कहा—'दो साल हुए, उन की ब्राह्मणी का इन्तकाल हो गया। एक बालक है आठ-नौ बरस का। बस, और कोई नहीं है।'

गाड़ीवान ने भी दो कुल्हड़ चढ़ाये थे। झूमकर बोला—'उन्हें तो 'भगवती' सिद्ध हैं। मुँह से जो कह दें, वही हो जाय। मेरा छोटा भैया मौत के मुँह में था। अम्माँ उसे लेकर पुरोहित जी के चरणों में जा पड़ी। सिर पर हाथ फिराया बालक के, मुँह से कुछ मन्त्र पढ़ा और अम्माँ से बोले कि 'जाओ माँ, तुम्हारी गोद सूनी न होगी।' बस भैया, दो दिन पीछे चंगा हो गया वह।'

तबलची ने सिर डुला कर कहा—'ज़रूर यही कहा होगा। वे हर औरत से 'माँ' कहते हैं। डोम हो, चमार हो, चाण्डाल हो। बस, 'माँ' ही कह कर पुकारेंगे।'

तीसरा आदमी तब से चुप था। इतनी देर तक शायद नशे में आँखें मूँदे बैठा था। आँखें फाड़ कर उस ने चारों ओर देखा और चिन्ता के स्वर से बोला—'हम लोग रास्ता भूल गये हैं। अपना गाँव तो पीछे छूट गया। अब तो यह पूरब को चली जा रही है गाड़ी।'

तबलची ने एक ठहाका मारा और उस आदमी के सिर पर एक धौल मार कर बोला—'अबे, चढ़ गई क्या?' सब हँसने लगे। केवल चम्पा चुप थी। उस ने इधर को मुख फिरा लिया और दूर धुँधली चाँदनी में सोये एक बाग़ को देखने लगी।...

× × ×

पुरोहित गोपालराम के गाँव का नाम मोतिया था। दूसरे दिन सुबह होते-होते सारे मोतिया में यह ख़बर फैल गई कि सेठ बनवारी लाल की बारात में पुरोहितजी ने चम्पा रंडी का गाना रुकवा दिया। फिर इसी बात की चर्चा सारे दिन इधर-उधर होती रही और कहने वालों के मुँह से रंग बदलते-बदलते शाम को यह शकल हो गई इस बात की कि रात को बीच दड़े पर दस आदमियों की भीड़ में एक भक्त रैदास कहने लगा—'गोपालराम चच्चा ने डेरे के भीतर ही भगवती का ध्यान करके हुकुम दिया, गाना बन्द! और इधर महफ़िल में रंडी की ज़ुबान तालू से चिपक

गई। तब से बहुतेरे जतन हो रहे हैं, रंडी बोल ही नहीं पा रही है। गुमसुम है बिलकुल। सुना है, उस ने चच्चा से मज़ाक किया था, फल मिल गया हरामज़ादी को।'...

ठीक उसी समय पुरोहित जी अपने पुत्र को 'चाणक्य नीति' पढ़ा रहे थे। भगवती की पावन प्रतिमा के आगे, पीतल के दीपक में मोटी-सी बत्ती जल रही थी और उस के उज्ज्वल आलोक में सामने चटाई पर पिता-पुत्र बैठे थे।

आठ बरस का बालक सत्यकाम पोथी खोले था और पुरोहितजी नयन मूँदे बोल रहे थे—'मातृवत् परदारेषु......'

सत्यकाम ने पोथी में देखकर दुहराया—'मातृवत् परदारेषु...' फिर वह पिता के शान्त-सौम्य मुख की ओर देखकर पूछने लगा—'इस का क्या अर्थ है दादा?'

दादा ने नयन मूँदे ही कहा—'दुनिया की हर स्त्री माता के समान होती है, हर स्त्री को माता समझो।'

'क्या सब स्त्रियाँ भगवती का अवतार होती हैं?'—सत्यकाम सरल भाव से पूछने लगा।

'हाँ बेटा,' पिता ने नयन खोले और प्रतिमा की ओर निहार कर बोले—'जय माँ भगवती! पढ़ो सत्यकाम, याद करो, मातृवत्...'

...उस घटना से तीन-चार दिन तक चम्पा का मन उदास रहा। जाने कैसी एक घृणा उसे मन ही मन कुरेदती रही। स्वयं अपने ही निकट अपना अस्तित्व लांछित और कालुष्य भरा लग रहा था और हर आदमी से, हर चीज़ से विरक्ति लगती थी। पर सहालगों के दिन थे, बारातों की भीड़-भाड़ थी। दो-चार बारातों में वह न भी गई फिर बहिन के अनुरोध से उसे जाना ही पड़ा।...

यह बारात एक बहुत बड़े ज़मींदार की थी। शहर से भी बहुत-सी तवायफ़ें आई थीं। इन दोनों बहिनों ने मन की सारी शक्ति लगा कर

गाया। समाँ बँध गया। शहर की एक मशहूर तवायफ़ इन के बाद गाने को खड़ी हुई तो लोगों ने तालियाँ पीट दीं। बड़ी भद्द हुई उस की। रात को ठाकुर साहब इन के पास हँसते आये और बोले—'शाबाश चम्पा, आज तुम ने कमाल कर दिया। इज़्ज़त रख ली इस इलाके की। मैं तुम से बहुत ख़ुश हूँ।'

ठाकुर साहब चले गये तो वह शहरू तवायफ़ आई और स्नेह के स्वर में बोली—'बहिन, मुझे भी अपना शागिर्द बना लो!' दो गाने लिखवाये चम्पा से। चलने लगी तो चाँदी की डिब्बी खोल कर ख़ुशबूदार मगही पान के बीड़े खिलाये और सुरती खिलाई बनारसी, किमाम चखाया।

...दूसरे दिन चम्पा का गला बैठ गया। प्रतिद्वन्द्विनी ने ईर्ष्या से जल कर उसे पान में सिन्दूर खिला दिया था। घर आते-आते चम्पा को 'स्वर-भंग' हो गया। दो दिन में ही वह फटे बाँस की तरह बोलने लगी। अपनी उस भर्रायी हुई, भद्दी-मोटी आवाज़ को सुन कर चम्पा का चेहरा पीला पड़ गया, फिर बेसुध हो गई। फिर होश आया तो खटिया में मुँह देकर फूट-फूट कर रोई।...

उस ने कई दिन तक मुँह न खोला। फिर जब-जब ज़ुबान खोलती, अपनी बोली सुनकर उस के आँसू निकल आते। तरह-तरह की दवाइयाँ खिलाईं बहिन ने, तरह-तरह के उपचार हुए। पर वह आवाज़ ज्यों की त्यों रही—फिर कभी कोयल न चहकी। चिन्ता और क्लेश से चेहरे का गुलाबी रंग ज़र्द पड़ गया। भूख-प्यास जाती रही। रात में पहरों नींद न आती दुखियारी को।...

जेठ का 'दशहरा' आ पहुँचा। दो-ढाई मील पर गंगा बहती थी।

सारा गाँव उमड़ चला गंगा नहाने। बहिन भी तैयार हो गई। पर चम्पा न गई। बहुतेरी आरज़ू-मिन्नतें कीं बहिन ने; पर चम्पा राज़ी न हुई। वे लोग चले गये तो फिर वह अपने कमरे की किवाड़ें देकर ख़ूब रोई। फिर दुःख से कातर होकर एक बार ज़ोर से चिल्ला कर पुकारा—'गोविन्द!'

एक भद्दी प्रतिध्वनि कमरे में गूँज गई—'गोविन्द !' मानो कोई उपहास कर रहा हो। चम्पा ने जल्दी से अपने मुँह में अंचल ठूँस लिया और घायल पंछी की तरह ज़मीन पर लोटती रही।...

छकवारें हो गई थीं और लोग गंगा-स्नान करके, माथे पर सफ़ेद चन्दन की लकीर लगाये घरों को लौटने लगे थे, गीली धोतियाँ लिये। चम्पा की बहिन रामा भी अपनी सवारी पर लौटी आ रही थी। तबलची हीरालाल साथ था। बैलों की सुन्दर जोड़ी हलकी चाल से झूमती चली आ रही थी कि हीरालाल चौंक कर कह उठा—'अरे, पुरोहितजी जा रहे हैं !'

'कहाँ ? किधर ?'—रामा ने अचरज से पूछा।

'वह देखो !' और तब सब ने देखा, राह के एक किनारे भीड़ से अलग-अलग पुरोहित गोपालराम हाथ में डंडा और कन्धे पर झोला लिये शलिठ पैरों से लपकते चले जा रहे हैं, सिर नीचा किये। पीछे बालक सत्यकाम दौड़ता जा रहा है।

हीरालाल से और संवरण न हुआ। गाड़ी रुकवा कर नीचे कूद गया और तेज़ क़दमों से दौड़ता पुरोहित जी के पास जा पहुँचा। राह रोक कर चरण छुये और प्रार्थी के स्वर में बोला—'सवारी पर बैठ लीजिये महाराज !'

पुरोहितजी ने एक बार राह में हौले-हौले आती गाड़ी की ओर देखा और हँस कर बोले—'मैंने सवारी पर बैठना छोड़ दिया है। आनन्द से चल रहा हूँ।' और धीरे-धीरे आगे को पैर बढ़ाये। हीरालाल पीछे-पीछे हाथ जोड़े चलने लगा और स्वर में दुःख भर कर कहता गया—'महाराज, चम्पा का यह हाल हो गया है......' सब सुनाता गया और महाराज सब सुनते गये चलते-चलते यहाँ तक कि चन्दनपुर आ गया और दूर से चम्पा का घर दीखने लगा।...

गाँव के उत्तर में, बिलकुल छोर पर चम्पा की पक्की हवेली खड़ी थी,

जिस की दूसरी मंज़िल पर अटारी थी। वह अटारी चार-चार पाँच-पाँच कोस से दीखती थी। हवेली की बग़ल से राह थी और राह के उस ओर सौ शाखाओं वाला वटवृक्ष खड़ा था, जिस के नीचे धूप भूले-भटके ही पहुँचती होगी।

हवेली का द्वार आ गया आख़िर। अब तक पुरोहितजी ने सान्त्वना का एक शब्द न कहा था। हीरालाल को और साहस न हुआ। सिर डाले चला आ रहा था कि पुरोहितजी द्वार के सामने ठिठक कर खड़े हो गये और दस क़दम आगे जाते सत्यकाम को आवाज़ दी—'पीछे लौटो।'...

× × ×

सूनी-सूनी नज़र और उतरा चेहरा लिए चम्पा थमले के सहारे खड़ी थी। सामने काठ की चौकी पर पुरोहितजी पद्मासन से बैठे थे नत नयन किये। फिर एकाएक जैसे चौंके हों, दृष्टि उठा कर दुःखिनी चम्पा को ताका और स्नेह से बोले—'तुम्हें बहुत कष्ट है माँ?'

चम्पा ने कोई उत्तर न दिया। केवल फल-फल कर के आँखों से आँसू गिरने लगे। रामा हाथ जोड़ कर बोली—'महाराज, इस के दुःख की क्या पूछते हैं। लगता है, जान दे देगी। इसे किसी तरह बचाओ महाराज! हम पतितों पर भी दया हो जाय आप की, कलंकी लोग हैं। पाप की ज़िन्दगी है।'

पुरोहितजी ने शीघ्रता से हाथ हिलाकर कहा—'ऐसा मत सोचो। यह जीवन तो भगवान् का दिया है, बहुत पवित्र वस्तु है माँ! सब उसी एक की सन्तान हैं—सब एक हैं। दरवाज़ा बन्द कर दो और माँ, तुम इधर आओ। यहाँ बैठो मेरे सामने।'—पुरोहितजी ने चम्पा को आदेश दिया।

सत्यकाम चौकी के एक किनारे, पिता के पीछे बैठा था। अचानक हौले से कह उठा—'दादा, प्यास लगी है।'

रामा ने आगे बढ़ कर उसकी बाँह पकड़ ली और प्यार से बोली—'चलो, पानी पिलायें बेटा !'

सत्यकाम नीचे को सिर झुका गया और पानी पीने न उठा, तो पिता ने कहा—'जाओ, पी लो पानी।'

रामा उस देवमूर्त्ति बालक का हाथ पकड़े-पकड़े भीतर कमरे तक आई, फिर पुकार दी—'अन्नपूर्णा !'

'क्या है माँ !'—कहती हुई एक अति सलोनी बालिका पीछे से आ खड़ी हुई। रामा ने सत्यकाम का हाथ छोड़ कर कहा—"राजा भैया को पानी पिलाओ। बैठो बेटा, पलंग पर बैठ जाओ।...'

रामा बाहर आँगन में लौट कर आई, तो सन्नाटा-सा छाया था। सब स्तब्ध बैठे थे और चम्पा फटी-फटी आँखों से पुरोहितजी को निहार रही थी; पुरोहितजी ध्यानस्थ थे। हीरालाल और गाड़ीवान दोनों हाथ जोड़े बैठे थे, मीरासी शान्त था।

सहसा पुरोहितजी ने पलक उघारे। चम्पा की दृष्टि से दृष्टि मिलाई और गम्भीर मेघ-गर्जन जैसी वाणी से बोले—'पहिले तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी माँ ! तुम्हारा कण्ठ-स्वर यदि ठीक हो जाय तो तुम केवल भगवान् का गुण ही गा सकोगी। भगवान् के अतिरिक्त और किसी विषय का गीत तुम्हें ज़िन्दगी भर के लिए छोड़ना होगा। स्वीकार करती हो माँ ?'

रामा के कलेजे में धक्-से हुआ। मीरासी चौंक पड़ा। हीरालाल और गाड़ीवान एक दूसरे का मुँह देखने लगे। पर किसी की ज़ुबान से एक शब्द न निकला।

फिर वही मेघ-गर्जना हुई—'स्वीकार है माँ ?'

चम्पा ने सिर हिलाकर 'हामी' भरी। उसकी आँखों में पानी आ गया था।

२

मेघ-गर्जना हुई—'कहो माँ, आज से मैं केवल भगवान् का ही गुणानुवाद करूँगी।'

एक भद्दी प्रतिध्वनि हुई—'आज से मैं केवल—' चम्पा की आँखों से आँसू टपकने लगे।

'जय भगवती!'—पुरोहितजी ने स्नेह से कहा—'अच्छा माँ, अब तुम नयन मूँदो और भगवान् का ध्यान करो। भगवान् की जो मूर्त्ति तुम्हें सब से प्रिय हो, उसके श्रीचरणों का ध्यान करो। लो, यह पवित्र तुलसीदल है और ये चार दाने हैं। सावधानी से मुँह में डाल लो। और फिर ध्यान लगाओ।'...

...भीतर कमरे में अन्नपूर्णा लजाकर सत्यकाम से कहने लगी—'लड्डू क्यों नहीं खाया? लड्डू खाओ।'

सत्यकाम गिलास का पानी पी कर सिर झुकाये बैठा था और सामने कटोरे में लड्डू सजे धरे थे।

अन्नपूर्णा ने लजाते-लजाते कहा—'क्यों नहीं खाते लड्डू?'

सत्यकाम सिर झुकाये हौले से बोला—'मुझे भूख नहीं है।'

'तो एक ही खा लो।'

सत्यकाम ने हाथ न चलाया। अन्नपूर्णा वहाँ किवाड़ों के पास खड़ी थी। हौले-हौले पास चली आई और कटोरे से एक लड्डू उठा कर सत्यकाम को देती-देती प्यार से बोली—'लो, एक ही खा लो!' पर सत्यकाम निश्चल रहा।

अन्नपूर्णा क्षण भर लड्डू लिये सत्यकाम का लजीला मुख निहारती रही, फिर उस ने धीरे से सत्यकाम का हाथ पकड़ लिया और उसकी हथेली पर वह लड्डू रख कर स्नेह में डूब कर बोली—'तुम्हें हमारे सिर की कसम है, खा लो।'

सत्यकाम का शोभन मुख लाल हो उठा। आख़िर वह लड्डू खाने लागा। अन्नपूर्णा जूठा गिलास उठाती बोली—'और पानी ले आऊँ।'...

आँगन में इतनी देर निस्तब्धता छाई रही। फिर पुरोहितजी ने आगे को झुक कर ध्यान लगाये बैठी चम्पा के सिर पर अपना दाहिना हाथ रक्खा और गम्भीर स्वर से पुकारा—'जय भगवती—जय जननी !' और चम्पा से स्नेहभरी टोन में बोले—'अब पलक खोलो माँ !'

चम्पा ने अपने नयन उघारे। दृष्टि जैसे बहुत उज्ज्वल हो गई थी।

पुरोहितजी उसी स्निग्ध स्वर में बोले—'लो, कुछ गाओ तो माँ ! तुम्हें वह गीत याद है—मेरे तो गिरिधर गोपाल ?'

चम्पा ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

पुरोहितजी ने प्रसन्नता से कहा—'तो यही गाओ। मेरे साथ गाओ बोलो—मेरे तो गिरिधर गोपाल...'

क्षण भर चम्पा रुकी। फिर पुरोहितजी के स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगी—'मेरे तो गिरिधर गोपाल'—पहिले आवाज़ अस्पष्ट रही, फिर क्रमशः उसका स्वर चढ़ने लगा। सहसा पुरोहितजी गाते से रुक गये। पर चम्पा न रुकी, वह गाती रही—'मेरे तो गिरिधर गोपाल—' और तब सब ने सुना साफ़-साफ़, वही नन्दनवन की कोयल कूक रही है ! सब स्तब्ध और अवाक् थे।

चम्पा ने फिर नयन मूँद लिये और मधुर स्वर में वही एक लाइन गाती रही पागलों की तरह।

पुरोहितजी ने हौले से कहा—'अन्तरा गाओ माँ !'

और चम्पा ने अन्तरा गाया—'अँसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई...'

गाती गई और गाती गई। आँखों से आँसुओं की धार बँध गई—'अँसुअन जल सींचि-सींचि, अँसुअन जल सींचि-सींचि...'

क्रमशः चम्पा का स्वर क्षीण होता गया। गला रुँध गया आँसुओं से और गा न सकी, हिचकियाँ बँध गईं। उसने पुरोहितजी के चरणों के आगे सिर रख दिया और लोट गई वहीं ज़मीन पर आँसू बहाती।

सब रो रहे थे—सब रो रहे थे।...

× × ×

यह कहानी का पूर्वार्द्ध हुआ। दस साल निकल गये। समय बीतते कितनी देर लगती है। रामा का देहान्त हो चुका था और पुरोहितजी अपनी 'साधना' पूरी कर रहे थे। 'दक्षिणा' तो पहिले ही तज दी थी, अब उन्होंने गृहस्थों के यहाँ अन्न-ग्रहण करना भी छोड़ दिया और 'स्वयंपाकी' हो गये। खेत थे अपने, उन्हीं के ऊपर जीवन निर्भर कर लिया था। जौ की रोटी और मूँग की दाल खाते थे नित्य। सत्यकाम युवा हो गया था और अब तक बहुत से विषय और बहुत से ग्रन्थ पढ़ चुका था। कवियों में कालिदास उसे बहुत प्रिय थे और आजकल रघुवंश का अध्ययन चल रहा था।—

...सरयू के उस पार, राजरानी सीता को पहुँचा कर दृढ़व्रती लक्ष्मण ने आर्यपुत्र रामचन्द्र की कठोर आज्ञा उन्हें सुना दी।...

नदी के ऊँचे कगारे पर एक पेड़ खड़ा था, जहाँ से दूर तक फैली शुभ्र बालुका-राशि और सरयू की निर्मल धारा दीखती थी। सीता उसी पेड़ के नीचे बैठी थीं और पच्छिम का किनारा लाल करके भगवान् सूर्य-देव क्षितिज के नीचे चले गये थे। सारी प्रकृति पर मानो उदासी का आवरण छाया था और सामने महलों को लौटने के लिए उद्यत खड़े लक्ष्मण आर्या सीता से पूछ रहे थे कि कुछ कहना है, कुछ सन्देश देना है किसी को?...

...मैथिली ने उद्दीप्त मुख से कहा—'तुम मेरी ओर से अपने उस 'राजा' से कहना कि तुम्हारी आँखों के सामने जिसने अग्नि-परीक्षा दी, अग्नि में प्रविष्ट होकर जिसने अपनी 'विशुद्धि' सिद्ध कर दी, उसको तुमने केवल 'लोकवाद' सुन कर तज दिया! मैं पूछना चाहती हूँ, तुम्हारा यह कर्म तुम्हारे प्रख्यात कुल के अनुरूप ही हुआ है न?'

लक्ष्मण ने शान्तभाव से कहा—'मैं आर्यपुत्र से कह दूँगा।'

...राजबधू सीता की आँखों से छर्-छर् करके आँसू झर गये। उन्हीं आँसुओं के बीच कहने लगीं—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम तो कल्याण-बुद्धि हो, तुम मेरे साथ कोई 'यथेच्छाचार' नहीं कर सकते। इसकी शंका ही नहीं करनी चाहिये। मेरे ही उस जन्म के कोई पाप थे, जिनका यह दारुण, असहनीय फल मुझे मिला है।'

लक्ष्मण ने शांतभाव से कहा—'मैं आर्यपुत्र से कह दूँगा।'

...लक्ष्मण चला गया। वालुका-राशि पर उसके चरण-चिन्ह बने रह गये। और कुछ नहीं है, और कोई नहीं है—और कोई नहीं है। चारो ओर से धुँधियारा झुकता आ रहा है। निर्वासिता सीता ने एक बार आँखें फाड़ कर अपने चारों ओर देखा फिर फूट-फूट कर क्रन्दन करने लगीं।

...उस रुदन को दूर वन में एक मुनि ने सुना, जो कुश और समिधा बीनने आये थे। उस क्रन्दन को दूर वन में उन मुनि ने सुना, जिनका कोमल हृदय बहेलिया से घायल किये एक पंछी को देखकर शोक से कातर हो गया था और वही 'शोक' संसार में सब से पहिली 'कविता' के रूप में प्रकट हुआ था।

...पादुकाओं की ध्वनि करते हुए महर्षि वाल्मीकि सीता के सामने आ खड़े हुए।...

सूर्योदय के समय यह पाठ पढ़ा कर, पुरोहित गोपालराम किसी दूसरे गाँव चले गये। किसी सद्गृहस्थ के यहाँ 'पुत्रोत्सव' था। लौटते-लौटते शाम हो गई और गाँव में घुसे तो दीपक जल गये थे।

पुरोहितजी ने आँगन में पहुँच कर आवाज़ दी—'सत्यकाम!'

कोई न बोला। कोठरी में अँधेरा छाया था। पुरोहितजी ने दिया-सलाई खोजकर दीपालोक किया और चारों ओर नज़र दौड़ाई तो देखा, भगवती के आगे चटाई पर सत्यकाम पड़ा सो रहा है। पुष्ट, मांसल शरीर, उन्नत वक्ष, मसें भीग रही हैं। लम्बे-लम्बे केश मुख के चारों ओर छितरे पड़े हैं। मानो कोई ऋषिकुमार सोया है। जाने कैसे मोह से उनका हृदय

भर उठा। दीपक आगे करके, झुक कर अपने प्रसुप्त सुत का मुख निहारने लगे अतृप्त आँखों से।

पास ही कालिदास का रघुवंश और कापी-पेंसिल पड़ी थी।

कापी बीच से खुली थी और जाने क्या लिखा था उस पृष्ठ पर।

वात्सल्य से विह्वल पिता ने वह कापी उठा ली। मन में बोले कि जाने क्या लिखा है पगले ने! और दिये की रोशनी में वह सत्यकाम का लिखा बाँचने लगे। बाँचते रहे—बाँचते रहे, फिर कापी बंद करके नयन मूँद लिये। और पिता के उन मुँदे नयनों से, नयनों की कोरों से आँसू टपकने लगे। आँसुओं को न पोंछा, नयन न खोले और मूक होकर सत्यकाम से पूछने लगे कि 'तुम कौन हो! इतनी प्रतिभा, इतना बुद्धि-वैभव ले कर यह देव-रूप लेकर इस झोपड़े में क्यों चले आये बन्धु, मुझ अकिञ्चन के पुत्र क्यों बने तात!'...

सत्यकाम ने रघुवंश का हिन्दी में सुन्दर पद्यानुवाद किया था, बहुत मीठी कविता बनाई थी।

जाने कौन बाहर दरवाज़े पर पुरोहितजी का नाम लेकर ज़ोर से पुकारने लगा।...

× × ×

ब्राह्म मुहूर्त्त में सत्यकाम को जगा कर पिता ने कहा—'बेटा, मैं तीन दिन के लिए बाहर जा रहा हूँ, एक भले आदमी का कुछ ज़रूरी काम है। तुम सावधान रहना और अभी सूर्योदय होने पर पूजा समाप्त करके हरिदासपुर चले जाना। मौसी तीर्थों से लौटी हैं, 'कथा' सुनेंगी तुम से।'

हरिदासपुर मोतिया से दक्षिण, तीन मील पर बसा था। वहाँ पुरोहितजी की दूर के रिश्ते की एक बूढ़ी विधवा मौसी रहती थीं।

पिता के चले जाने पर सत्यकाम को फिर नींद न आई और वह उसी समय नहा-धो कर चल दिया और सूरज चढ़े हरिदासपुर आ पहुँचा।

मौसी के कोई न था। पहिले बेटा मरा, फिर पतोहू भी .एकढाई साल का बालक छोड़ कर चल बसी। उसका नाम रामस्वरूप था। बचपन में कभी सत्यकाम से उसकी भेंट हुई थी। फिर वह ननिहाल चला गया और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ और वहीं पढ़ा-लिखा भी। इतने दिनों बाद अचानक उसी रामस्वरूप से मौसी के यहाँ फिर भेंट हो गई। वह दादी के पास गरमियों की छुट्टियाँ बिताने चला आया था।

सत्यकाम से मिल कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। अच्छा होनहार नौजवान था। 'कथा' समाप्त हो गई तो फिर पढ़ने-लिखने की बातें होती रहीं। रामस्वरूप सत्यकाम की ऐसी प्रतिभा देख कर चकित हो गया और बन्धु-भाव से ही वह सत्यकाम से कहने लगा—'तुम इंगलिश और पढ़ लो। आज के युग में इंगलिश के बिना आदमी का ज्ञान अधूरा रहता है।'

सत्यकाम ने कहा—'कैसे पढ़ूँ इङ्गलिश, कौन पढ़ायेगा?'

रामस्वरूप ने उसी भाव से कहा—'अभी दो महीने तक मैं यहाँ हूँ। तुम तीसरे-चौथे चले आया करो। बहुत शीघ्र अक्षर-बोध करा दूँगा। फिर आगे के लिए कुछ प्रबन्ध कर लेना। आया करोगे मेरे पास?'

'अवश्य आऊँगा,' सत्यकाम ने कहा—'मैं तुम्हें कालिदास का मेघदूत पढ़ा दूँगा बदले में। बहुत सुन्दर काव्य है।'

रामस्वरूप ने हँस कर कहा—'एकदम मेघदूत?'

तभी बुढ़िया आ पहुँची और सत्यकाम से विनय के स्वर में बोली—'अपना अँगोछा मुझे दे तो बेटा! यह थोड़े-से जौ के सत्तू हैं, तीर्थ की प्रसादी है और ये चिउड़ा हैं नीमसार के। अपने बाप को दे देना।' उसके अँगोछे में दोनों चीज़ें बाँध कर रामस्वरूप से कहा—'तू इसे थोड़ी दूर तक पहुँचा आ रामू!'...

दोपहरी ढलने लगी थी और आसमान में बादल आ गये थे। पुरवैय्या बह रही थी और गाँव के पेड़ झकोरे ले रहे थे।

गली ख़तम हो गई और मोतिया की ओर जाने वाली पगडंडी आ गई तो सत्यकाम विदा का नमस्कार करने लगा।

रामस्वरूप सामने की ओर देख रहा था और चौंक कर कह उठा—'अरे आओ-आओ, चलो तुम्हें मन्दिर दिखलायें।'...

ज़मींदार की माता ने 'वेणुगोपाल जी' का मन्दिर बनवा कर मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। उसी का उत्सव हो रहा था।

रामस्वरूप साथी सत्यकाम का हाथ पकड़े-पकड़े उधर बढ़ता गया और पूछता गया—'तुम्हारे दादा का यहाँ कल से बराबर इन्तज़ार हो रहा है। क्यों नहीं आये ?'

सत्यकाम ने कहा—'वे बाहर गये हैं।'

रामस्वरूप ने हाथ उठा कर कहा—'यह देखो मन्दिर, बहुत सुन्दर बना है।'

बाहर काफ़ी भीड़ जमा थी और संगीत हो रहा था। आस-पास दो-चार कनातें और 'राउटियाँ' लगी थीं, जिनकी चोटियों से मन्दिर की रंग-बिरंगी कागज़ की झंडियाँ जुड़ी थीं और हरे पत्ते लटक रहे थे।

दोनों साथी भगवान् के दर्शन करके बाहर आये तो रामस्वरूप ने कहा—'आओ, थोड़ी देर गाना सुन लो।'

पर संगीत मंडली के पास पहुँच कर देखा कि गाना सुन पाना कठिन है। चारों ओर आदमी-ही-आदमी खड़े थे और पीछे से कुछ भी दिखाई न देता था। उस भीड़ में जाने कैसे साथ छूट गया और रामस्वरूप जाने किधर चला गया। सत्यकाम घूमता-घूमता 'राउटी' के पास आ खड़ा हुआ। यहाँ आदमी कम थे, क्योंकि इधर को गानेवालों की पीठ पड़ती थी। सत्यकाम ने सहारे के लिए 'राउटी' की रस्सी पकड़ ली और तिरछा झुक कर गाना सुनने लगा।

गाने वाली चम्पा थी। शुभ्र साड़ी पहिने आनन्दित होकर मन्दिर की ओर दृष्टि किये करुण स्वर में गा रही थी—'जाके प्रिय न राम-वैदेही...'

हीरालाल तबला बजा रहा था, पर अब वह बूढ़ा हो चला था और मीरासी को भी आँखों से कम दीखने लगा था। वे दोनों भी मथे पर चन्दन लगाये थे और भावमें डूबे थे। एक ओर गाँव की कुलीन स्त्रियाँ बैठी थीं और दूसरे किनारे आबाल-वृद्ध पुरुष जमा थे। सभी एक आसन पर, देवता के प्रांगण में एकाकार होकर बैठे थे, ग़रीब-अमीर, भले-बुरे सब और सब के चारों ओर कवि तुलसीदास का भक्ति-रस बह रहा था—'जाके प्रिय न राम-वैदेही...' कोकिल-कण्ठी चम्पा ने विह्वल होकर क्षण भर के लिए नयन मूँद लिये, पर गाना न रुका। अचेतन सारंगी उसी स्वर में मानो आँसू बहा कर गाती रही—'जाके प्रिय न राम...'

सत्यकाम उस संगीत से विमुग्ध होकर खड़ा था कि हड़-बड़ करके पचास आदमियों की भीड़ आ गई और इतने ज़ोर से 'रेला' आया कि सत्य-काम के पास खड़े तीन-चार आदमी उसके ऊपर ही आ गिरे। सत्यकाम के हाथों से रस्सी छूट गई और वह चारों खाने चित्त होकर धड़ाम से पीछे को गिर पड़ा। आँखें मुँद गई सत्यकाम की।...

क्षण भर में होश में आकर फिर सत्यकाम ने जो आँखें खोलीं तो पागलों की तरह देखता ही रह गया।

डेरे का कपड़ा एक किनारे से चिरता चला गया था और सत्यकाम डेरे के भीतर आ गिरा था। और उस ख़ाली डेरे में अनिंद्य सुन्दरता लिये बैठी एक षोड़शी बाला खिन्न होकर कह रही थी—'हे भगवान, पीठ तोड़ दी मेरी!'

सत्यकाम हाथों का बल लगा कर किसी प्रकार उठ कर बैठ गया और डर कर नवयुवती की ओर ताका। उसके बायें कपोल पर और बालों पर सफ़ेद सत्तू चमक रहा था। अपनी बसन्ती साड़ी से उन सत्तुओं को पोंछती-पोंछती वह अनिंद्य सुन्दरी दुखी होकर बोली—'हाय राम, सारा आटा मेरे ऊपर गिरा दिया!'

तब सत्यकाम ने घबरा कर अपना अँगोछा खोजा। अँगोछा दूर पड़ा था। भयभीत सत्यकाम आगे को बढ़ कर अपना अँगोछा उठाने लगा कि एक झिड़की सुन पड़ी—'कौन हो तुम ?'

सत्यकाम ने चौंक कर सिर उठाया। दृष्टि का विनिमय हुआ। और सत्यकाम ने हौले से कहा—'मैं सत्यकाम हूँ—'

'तुम सत्यकाम हो ?'—नवयुवती ने जाने कैसी आवाज़ में कहा—'पुरोहितजी के पुत्र ?'

सत्यकाम ने हौले से कहा—'जी हाँ।' और लजा कर अपना सामान ठीक करने लगा। फिर और सिर न उठाया। जल्दी-जल्दी अँगोछे में गाँठ लगाई और सिर डाले ही उठ कर डेरे के बाहर जाने लगा तो एक मृदु स्वर सुन पड़ा—'मुझे पहिचाना ?'

सत्यकाम ने आँखें उठाईं। दृष्टियाँ फिर मिल गईं।

उस अनिंद्य सुन्दरी ने ओठों पर मुसकान लाकर स्निग्ध स्वर में कहा—'मैं अन्नपूर्णा हूँ।'

पर सत्यकाम के मुख से एक शब्द न निकला। दृष्टि गिरा ली और पलक मारते झुक कर उसी फटे किनारे से बाहर निकल गया।

× × ×

सारी रात सत्यकाम की आँखों के आगे स्वप्न चलते रहे। और रह-रह कर याद आती रही—'मुझे पहिचाना ? मैं अन्नपूर्णा हूँ।'

दूसरे दिन भोर की बेला चित्त को स्थिर करके सत्यकाम सन्ध्या-वन्दन करने बैठा तो आसमान से ज़मीन पर आ गिरा।

भगवान् 'शालिग्राम' की मूर्त्ति कहाँ है ? वह कल मौसी के यहाँ सिंहासन समेत शालिग्राम को ले गया था। ख़ूब अच्छी तरह याद है, कथा की पोथी और सिंहासन मौसी के घर से लाल कपड़े में लपेट कर लाया था। सब अँगोछे में ही तो था। अँगोछा वहाँ डेरे में खुल पड़ा।

सिंहासन समेत शालिग्राम वहीं गिर गये ? सत्यकाम भय और चिन्ता से व्याकुल हो कर हरिदासपुर की ओर भाग छूटा···।

तन-बदन का होश खोये सत्यकाम भागता चला गया। तीन मील कब पूरे हो गये, पता न चला और आख़िर दूर से नव-निर्मित मन्दिर का कलश दीखने लगा।

सत्यकाम के माथे से पसीना टपक रहा था। पर उसे किसी बात का ध्यान न था। मन्दिर पर दृष्टि जमाये सरपट चलता गया।

पर यह क्या ? मन्दिर के प्रांगण में खड़े होकर सत्यकाम ने चारों ओर आँखें फाड़ कर देखा—सब सुनसान है। न संगीत-मण्डली है, न वह डेरा है। सिर्फ़ एक ओर आठ-दस कुत्ते जूठे पत्तलों और कुल्हड़ों के ढेर पर लड़ रहे थे। बाक़ी किसी आदमी का पता नहीं। उत्सव समाप्त हो गया था। सत्यकाम ने एक साँस खींची, धोती से माथे का पसीना पोंछा और धूल-भरे पैरों से चन्दनपुर की राह ली···।

···ठीक बारह बजे वह चम्पा के द्वार पर पहुँचा। किवाड़ भीतर से बन्द थे। सत्यकाम ने धड़कते कलेजे से साँकल खटखटाई और एक नौकर किवाड़ें खोल कर सामने आ खड़ा हुआ और पूछने लगा—'क्या है, क्या काम है ?'

सत्यकाम हक्का-बक्का हो कर नौकर का मुँह देखने लगा। क्या कहे, क्या बतलाये ?

नौकर को हँसी आ गई उसका यह भाव देख कर। हँसता-हँसता पूछने लगा—'किसी से मिलना है क्या ?'

सत्यकाम कुछ कहना ही चाहता था कि भीतर से एक मृदु स्वर आया—'घनश्याम, कौन है ?' और फिर पलक मारते अन्नपूर्णा दीखी द्वार की ओर आती। सत्यकाम का कलेजा धक्-धक् करने लगा।

अन्नपूर्णा चौखट पर आकर मुसकरा कर बोली—'आओ-आओ, मैं सुबह से ही तुम्हारी राह देख रही थी।'

नौकर एक ओर हट गया। धड़कता कलेजा लिये सत्यकाम अन्नपूर्णा के पीछे-पीछे बरामदे तक आया। अन्नपूर्णा उसी प्रसन्न भाव से बोली—'मैं जानती थी, तुम आते होंगे। आओ, भीतर आ जाओ।'

सत्यकाम स्वच्छ, शान्त कमरे में पलंग पर आ बैठा तो अन्नपूर्णा उसके धूप से तमतमाये मुख पर पङ्खा झलने लगी। सत्यकाम ज़मीन पर दृष्टि गड़ाये निश्चल होकर बैठा रहा।

घड़ी बीते अन्नपूर्णा ने पङ्खा झलते-झलते हँस कर कहा—'कुछ याद है, जब तुम छोटे थे, एक दिन इसी कमरे में आकर बैठे थे?'

सत्यकाम नज़र उठा कर कमरे को देखने लगा।

अन्नपूर्णा ने हँसते-हँसते कहा—'मैंने तुम्हें लड्डू खिलाया था। शरमा कर खा नहीं रहे थे, मैंने कसम दिलाई, तब खाया। है कुछ याद?'

सत्यकाम सिर नीचा करके हँसने लगा। उसने कोई बात न कही। अन्नपूर्णा पङ्खा नीचे रख कर बोली—'कुरता उतार दो, पसीने से तर हो गया है। और चलो हाथ-मुँह धो डालो ···।'

अन्नपूर्णा क्रमशः आदेश देती गई और सत्यकाम हर आदेश को मूक भाव से मानता गया। जब ख़ूब ठण्डा और शान्तचित्त हो गया तो अन्नपूर्णा कटोरे में जलपान के लिए मीठा लाई और सत्यकाम के आगे वह कटोरा रख कर अत्यन्त स्नेह से मुसकराती पूछने लगी—'ख़ुद ही खाना शुरू कर दोगे या आज भी उसी दिन की तरह मुझे कसम दिलानी होगी?'

तब सत्यकाम हँस कर मीठा खाने लगा कि दरवाज़े पर किसी की परछाहीं देख कर चौंक पड़ा।

पर अन्नपूर्णा न चौंकी। आगन्तुक से हँस कर बोली—'इन्हीं के भगवान् गिर गये थे कल।'

चम्पा का चेहरा चमक उठा। पलक मारते वह सत्यकाम के पास आ बैठी और उसकी पीठ पर स्नेहभरा हाथ फिरा कर बोली—'तुम्हीं सत्य-

काम हो ! पुरोहितजी के पुत्र ! ओहो, तुम तो भाई, बहुत बड़े हो गये। छोटे बच्चे थे, तब यहाँ आये थे एक दिन।'

सत्यकाम के मुख में ग्रास अटकने लगा। चम्पा ने मीठा देखा तो अन्नपूर्णा को झिड़क कर बोली—'हाय पगली, ये सूखे लड्डू खिला रही है इसे !—वह टोकरी भरी ताज़ी गुझियाँ रक्खी हैं, उनकी सुधि न आई तुझे ?'

अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा—'इन्हें लड्डू बहुत अच्छे लगते हैं।'

मोतिया यहाँ से सिर्फ़ चार मील था। पर चम्पा ने न माना। सूरज ढले जब सत्यकाम घर लौटने को तैयार हुआ तो उसने कहा—'अब पैदल नहीं, सवारी से जाओ।' और ख़ुद बाहर खड़ी होकर नौकर से बैल जुतवाने लगी गाड़ी में।

भीतर सत्यकाम भगवान् शालिग्राम की मूर्त्ति को सम्हाल कर अँगोछे में बाँधने लगा तो किवाड़ों के पास खड़ी अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा—'अच्छी तरह गाँठ लगाओ। फिर न गिरा देना भगवान् को कहीं !'

सत्यकाम ख़ूब लजाया।

अन्नपूर्णा हँस कर बोली—'तुमने कल मुझे इतनी चोट मार दी थी कि सारी रात मैं कष्ट से जागती रह गई।'

तब जाने कैसे सत्यकाम के मुख से निकल गया—'मैंने भी जागते रात काटी है...'

अन्नपूर्णा ने लजा कर नयन गिरा लिये। सत्यकाम उठ कर चल दिया और किवाड़ों तक आया तो अन्नपूर्णा ने उसे रोक कर काँपते कण्ठ से पूछा—'अब कब आओगे ?'

'आऊँगा।'—सत्यकाम ने कहा और शीघ्रता से बाहर हो गया।

× × ×

तीसरे दिन शाम होते-होते पिता लौट आये। रात को खा-पीकर निश्चिन्त होकर दोनों जने बैठे तो पिता ने सत्यकाम से हँस कर पूछा—'तुम्हारी वह कविता वाली कापी कहाँ है ?'

सत्यकाम लजाकर मुसकराने लगा। पिता ने उसी तरह कहा—'देखें, वह उतना अनुवाद तो हमने पढ़ लिया था। और आगे लिखा है कुछ?'

सत्यकाम ने संकुचित होकर कहा—'और नहीं लिखा है।'

'तब क्या पढ़ते रहे तीन दिन?'

सत्यकाम ने अचकचा कर कहा—'श्रीमद्भागवत देखता रहा।'

'कोई शंका हो तो पूछो।'

'नहीं, शंका कुछ नहीं है।'

शंका कुछ नहीं है! ऐसा कैसे हो सकता है? सत्यकाम को तो श्रीमद्भागवत में प्रति पृष्ठ पर शंका उठती थी, जाड़ों में जब पढ़ता था। तीन दिन के पाठ में, सत्यकाम को एक भी शंका न उठी! आश्चर्य है।

तभी अचानक सत्यकाम कह उठा—'दादा, मैं इंगलिश सीखूँगा।'

पिता प्रश्नमयी दृष्टि से पुत्र को देखने लगे।

सत्यकाम ने कहा—'रामस्वरूप मिला था। वह कहता है, इंगलिश के बिना आदमी का ज्ञान अधूरा रहता है। वह मुझे पढ़ाने को भी तैयार है। आप आज्ञा दें, तो हरिदासपुर चला जाया करूँ। मैं बहुत जल्दी इंगलिश पढ़ लूँगा।'

पिता घड़ी भर शान्त रहे। फिर गम्भीर भाव से कहने लगे—'ज्ञान कभी पूरा नहीं होता बेटा, मनुष्य अपने जीवन में कितना ही अध्ययन-मनन करे, अन्त समय तक उसका 'अज्ञान' नहीं जा सकता। तुमने तो पढ़ा है सत्यकाम, भौतिकवाद हमारे पूर्वजों ने स्वीकार नहीं किया। ऋषियों का तपःपूत जीवन-दर्शन कभी पढ़ सकोगे, तो जानोगे कि यह दुनिया किस क़दर अन्धकार में है। ऐश्वर्य और भोग की चकाचौंध में ख़ुद हमारे देश के आदमी ही राह भूल गये हैं औरों की तो बात ही जाने दो। पर मैंने इंगलिश नहीं पढ़ी है। हो सकता है, उसमें भी मानव-कल्याण की बातें लिखी हों विद्वानों ने। विद्या कोई 'हेय' नहीं होती। तुम चाहो तो इंगलिश पढ़ सकते हो। मुझे भी फिर सिखा देना तुम, मैं भी बुढ़ापे में

'गिट-पिट' बोलना सीख लूँगा।'—कह कर पुरोहितजी ख़ुद ही हँस पड़े। सत्यकाम को बहुत ज़ोर से हँसी आगई थी। वह उठकर बाहर भाग गया।...

और वह प्रतिदिन इंगलिश पढ़ने के लिए हरिदासपुर जाने लगा। दस बजे तक खाना-पीना समाप्त करके वह चल देता और उधर से फिर सूरज डूबने के बाद लौटता। किसी दिन झुटपुटा रहता तो किसी दिन दिये जल जाते। पिता भोजन बना कर प्रतीक्षा में बैठे मिलते। ..

पहिले दिन जब सत्यकाम अपने साथी रामस्वरूप से अँगरेज़ी के छब्बीस अक्षर पढ़ कर घर लौटने लगा, तो हरिदासपुर गाँव के बाहर आकर ठिठक कर खड़ा हो गया। तिराहे पर सत्यकाम खड़ा था, जहाँ से तीन ओर को रास्ते फटते थे। उत्तरी रास्ता उसके गाँव को जाता था, पर वह उधर न बढ़ा। और जाने कौन अज्ञात शक्ति उसे उस राह पर खींच कर ले गई, जो राह चन्दनपुर जाती थी। इस राह से घूम कर मोतिया जाने पर दो मील का चक्कर पड़ता था। यह दो मील की दूरी ध्यान में न आई और क़दम उसके शीघ्रता से बढ़ने लगे चन्दनपुर की ओर।...

आकाश मेघाच्छन्न था और हवा ख़ूब तेज़ थी। सत्यकाम विमुग्ध-सा होकर उस वट-वृक्ष के नीचे आ खड़ा हुआ, जिसके आगे धूल-भरी राह पूरब-पच्छिम होकर बिछी थी और उस पार चम्पा की हवेली शोभित थी। सत्यकाम हवेली के बन्द द्वार को घड़ी भर वहाँ से खड़ा-खड़ा निहारता रहा। फिर एक निःश्वास छोड़ कर ऊपर की उस अटारी को देखने लगा, जो बादलों के बीच चमक रही थी। उस अटारी पर नज़र गई और चौंक कर सत्यकाम एक क़दम पीछे हट गया।

अन्नपूर्णा अटारी पर खड़ी थी। शायद सूखे कपड़े उठाने आई थी और शायद आसमान में ऐसी सुहावनी मेघ-माला और ऐसी हिल्लोल उठाने वाली समीर पाकर विभोर हो गई थी। उसका धानी अंचल फर-फर करके उड़ा जा रहा था और वह मुसकराती-मुसकराती उसे समेट रही थी और बालों की लटें उड़कर चन्द्रानन पर आ गिरी थीं। अन्नपूर्णा

एक हाथ से बाल सम्हालती, एक हाथ से धानी अंचल सम्हालती और उस शोख़ हवा से हारी जा रही थी।

सत्यकाम वट-वृक्ष के नीचे खड़ा अपलक नयनों से देख रहा था और उसके कलेजे की धड़कन द्विगुणित हो गई थी।

जाने कौन-से देवता थे, जिन्होंने बरबस अन्नपूर्णा का मुख इधर को कर दिया और प्यार से कान में कह गये कि 'उधर देख नादान, वट-वृक्ष तले!'

आँखों में आँखें आ गिरीं और अन्नपूर्णा ने बाल सम्हालने के मिस दोनों हथेलियाँ माथे पर जोड़ लीं। पर सत्यकाम के हाथ न उठे, वह प्रति-नमस्कार न कर के पागलों की तरह अन्नपूर्णा को अपलक ताकता रहा और चेहरा उसका रक्तिम हो उठा।

पर हवा तीव्र से तीव्रतर होने लगी और दूर पूरब के किनारे पल-पल पर कौंधा होने लगा बादलों के बीच।

अन्नपूर्णा ने अपनी पतली अँगुलियाँ हिला कर सत्यकाम को घर जाने का इशारा किया और ओझल हो गई उसी अटारी में।...

उस दिन से फिर नियम हो गया। सत्यकाम प्रति दिन इंगलिश पढ़ कर चन्दनपुर के उस वट-वृक्ष तले जा खड़ा होता, जिसके सामने वाली अटारी पर एक सलोना मुखड़ा आँखों में प्यास लिये चमकता था रोज़ बादलों के बीच और दो सुन्दर-सी मेंहदी रँगी हथेलियाँ जुड़ कर माथे से लगती थीं जिस अटारी पर और संकेत होता था पतली सुकुमार अँगुलियों से कि बादल आ रहे हैं कि नीचे मौसी चम्पा उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं कि घर लौट जाओ बन्धु, पानी बरसने वाला है। और सत्य-काम सिर झुका कर उस धूल-भरी राह में शिथिल पैरों से चल देता, जो राह उसके घर जाती थी, जहाँ भगवती के साधक, स्नेहशील पिता रोटी सेंक कर उसकी प्रतीक्षा में भूखे बैठे रहते थे। इसी तरह प्रति दिन होता रहा।...

बरसात आ गई थी। एक दिन फिर ऐसी वर्षा हुई कि चारों ओर पानी ही पानी हो गया। बादल छाये रहे और बादलों ने आँख न उघारी और झिमका लगा रहा, तो पिता ने सत्यकाम को रोक लिया। हरिदासपुर न जाने दिया और ठण्ड पाकर भगवती के आगे चटाई पर पड़े सोते रहे शाम तक।

पर सत्यकाम को नींद न आई। वह बादलों की ओर निहारता एक आसन से पोथी खोले बैठा रहा और पन्ने हवा से फर-फर करके आगे-पीछे उड़ते रहे।...

शाम हो गई और घर में अँधियारा झुक आया। पुरोहितजी ने दीपक जला कर भगवती को प्रणाम किया। फिर तख़्ते पर से अपना सितार उतार लिया। आवरण खोल कर खूँटियाँ उमेठीं, छल्ला पहिना और तारों को एक बार झनझना कर 'तूम त,न,न,न' किया और प्रसन्न मुद्रा से सत्यकाम को पुकार कर बोले—'गाओ, आज 'मेघदूत' गाओ।' और नयन मूँद कर चपल गति से तारों पर अँगुलियाँ फेरने लगे। सारा घर उस झनझनाहट से भर उठा। सितार करुण लय से बज रहा था, बाहर रिमझिम हो रही थी। सत्यकाम ने एक बार माँ की पावन प्रतिमा को देखा, एक बार पिता के शान्त, सौम्य, नयन मुँदे मुख की ओर देखा और 'यक्ष' के 'विरह की रागिनी' छेड़ दी :—

'...सखा, उस नगरी में पहुँचते-पहुँचते तुम्हें शाम हो जायगी। फिर और आगे न बढ़ना। वह रात उसी नगरी में बिताना। तुम्हारी प्रियतमा 'बिजली' इतनी लम्बी यात्रा की थकान लिये होगी, उसे विश्रान्ति देना। किसी ऊँचे 'हर्म्य' की अटारी में, प्रिया को लेकर वह रात्रि बिता देना, जहाँ गुटुर-गूँ करके कबूतरों के जोड़े छज्जे की आड़ में सो गये होंगे...।

बन्धु, मेरी तरह कौन अभागा होगा, जो इस भरी बरसात में अपनी प्रिया से बिछुड़ कर दूर 'परदेश' में पड़ा हो...।'

सत्यकाम और गा नहीं सका। उसका गला रुँधने लगा। परन्तु पिता द्रुतगति से तार झनझना रहे थे और बाहर रिमझिम हो रही थी। 'मन्दाक्रान्ता छन्द' की वह करुण लय तारों से झंकृत होती रही और विरही यक्ष रोता रहा—'बन्धु, मेरी तरह कौन अभागा होगा!...'

दूसरे दिन तीसरे पहर तक धूप छाई रही, आसमान साफ़ रहा, परन्तु जब सत्यकाम 'किसी' के दर्शनों की तीव्र पिपासा लिये सन्ध्या बेला में उस पेड़-तले आकर खड़ा हुआ तो चारों ओर से फिर घटायें घिर आईं और धीरे-धीरे बूँदें गिरने लगीं। सत्यकाम एक बार बादल-भरे आकाश को ताकता फिर दूसरे क्षण अटारी की ओर देखता। बादल उमड़-घुमड़ रहे थे, अटारी सूनी पड़ी थी। खड़ा रहा, खड़ा रहा, फिर प्रतीक्षा में व्याकुल होकर सत्यकाम भीतर ही भीतर छटपटाने लगा। पर अटारी पर वह प्रियमुख न चमका। आज भी 'उसे' नहीं देख पाया—आज भी नहीं देख पाया। निराश हृदय सत्यकाम ने घर के लिए क़दम बढ़ाये कि फटाक् से हवेली का द्वार खुला और किवाड़ों के बीच एक प्यारा मुख आलोकित हो उठा। पतले, लाल ओठों से बाँसुरी के स्वर में पुकार आई—'आओ...!'

...सत्यकाम को अपने कमरे में लाकर अन्नपूर्णा ने नौकर से पुकार कर कहा—'घनश्याम, बाहर का दरवाज़ा बन्द कर दे।'

फिर वह पलंग के पाँयते बैठ कर मुसकराकर पूछने लगी—'क्या बहुत देर से खड़े थे वहाँ बट-तले?'

'नहीं, अभी आया हूँ।'

अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा—'मौसी आज हीरालाल को साथ लेकर 'बाराहजी' के दर्शन करने गई हैं, परसों तक लौटेंगी। पढ़ आये अँगरेज़ी?'

'हाँ, पढ़ आया।'

हँसती-हँसती बोली—'मैंने घनश्याम से सब पता लगवा लिया। वह लड़का तुम्हारा भाई लगता है न ?'

'हाँ, भाई लगता है।'

तभी पड़-पड़ करके आँगन में मेंह गिरने लगा। अन्नपूर्णा बाहर को उठकर भागी और घनश्याम से नाराज़ होकर कहा—'बैठा है! ऊपर से ईंधन उठा कर ला, सब भीग जायगा। जल्दी कर।'

फिर सत्यकाम के पास लौट आकर मुसकान दबा कर कहा—'ऐसे काले बादल आये हैं! घनघोर वर्षा होगी अब। आज अब घर को कैसे लौटोगे ऐसे पानी में ?'

सत्यकाम चिन्तित होकर खिड़की से आसमान की ओर देखने लगा कि 'कड़-कड़' करके बिजली गिर गई कहीं। अन्नपूर्णा ने घबरा कर अपने कानों पर हाथ रख लिये। पर सत्यकाम खिड़की से न हटा। सोलह धार गिरते मेंह में अपने गाँव को जाने वाली राह को वह ताक रहा था।

अन्नपूर्णा ने पीछे से आकर धीरे से उसका हाथ पकड़ लिया और सरलता से पूछने लगी—'क्या देख रहे हो ?'

सत्यकाम ने कोई जवाब न दिया।

पानी की फुहारें खिड़की की राह उसके और अन्नपूर्णा के ऊपर आने लगीं तो अन्नपूर्णा ने हौले से उसका हाथ खींचा और बोली—'चलो, भीगे जा रहे हो।'

फिर वह पलंग पर उसे बिठा कर अचानक उसके लम्बे बालों को छू कर स्नेह में डूब कर बोली—'उफ़, सारा सिर भिगो लिया!' और अपने अंचल से सत्यकाम के बालों का पानी पोंछने लगी।

तब सत्यकाम मूर्ख की तरह कह उठा—'मैं घर जाना चाहता हूँ।'

अन्नपूर्णा क्षण भर अवाक् होकर उसका चिन्तातुर मुख देखती रही। फिर उसने मुसकरा कर कहा—'मैं दरवाज़ा खुलवाये देती हूँ, आप जा सकते हैं।'

सत्यकाम की दृष्टि जाने कैसी हो गई थी। बालकों की तरह अन्नपूर्णा की तरफ़ देखता रह गया। मेंह और ज़ोर से बरसने लगा।

अन्नपूर्णा ज़मीन पर दृष्टि गड़ाये, दुख में डूब कर बोली—'एक रात अगर मुझ अभागिन की कुटिया में रह जाओगे तो पाप लग जायगा शायद।'

'पाप!'—सत्यकाम ने दृष्टि स्फीत करके कहा—'तुम क्या कह रही हो?'

'सच ही कह रही हूँ',—अन्नपूर्णा ने कम्पित स्वर में कहा—'तुम्हें रात भर अपने इस घर में रखने का क्या अधिकार है मुझ अभागिन को? तुम देवता की पूजा के फूल हो और मैं हूँ राह की धूल। मेरी तुम्हारी क्या समता है! दया करके रोज़ दूर से दर्शन दे जाते हो, यही बहुत है मेरे लिए!'—अन्नपूर्णा की आँखें सजल हो उठीं। उन्हीं पानी-भरी आँखों से सत्यकाम का सौम्य मुख देखती बोली—'तुम चले जाना। पर मेंह रुक जाने दो। इतनी देर यहाँ रहने का कष्ट सह लो।'

सत्यकाम घड़ी भर अपलक होकर अन्नपूर्णा की अश्रुपूर्ण आँखें देखता रहा फिर उसने भरे गले से कहा—'मेरे हृदय की बात सुनोगी...?'

...आधी रात बीत गई थी और गोदी में सितार रक्खे अन्नपूर्णा कातर स्वर में पूछ रही थी—'फिर उन लोगों का मिलन हुआ? उस यक्ष का और उसकी प्रिया का?'

सत्यकाम ने अँगड़ाई लेकर कहा—'नहीं, महाकवि ने उनके मिलन की बात नहीं लिखी है।'

अन्नपूर्णा साँस खींच कर बोली—'कैसी दुख-भरी कहानी है, अभी तुम गा रहे थे तो जाने क्यों मेरा दिल भर आया और रोना आने लगा, सब ग़लत बजाती रही।'

सत्यकाम ने हँस कर कहा—'लाओ, सितार मुझे दो। यह 'विरह का गीत' सुन लिया। अब तुम कोई 'मिलन की रागिनी' गाओ।'

अन्नपूर्णा ने सितार उठा कर सत्यकाम के आगे रख दिया और लजा कर कहने लगी—'क्या गाऊँ ? तुम्हारे आगे मैं गा न सकूँगी। रहने दो।'

'गाओ, गाओ!'

'मुझे शरम लगती है।'—अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा।

पर सत्यकाम ने न माना। तारों को झंकृत करके बोला—'गाओ।'

आखिर अन्नपूर्णा को गाना ही पड़ा। उसने 'चकोरी और चन्द्रमा' का गीत गाया। उस गीत को सुनकर विश्व चराचर सिहर उठा...।

...दिन चढ़ आया तो अन्नपूर्णा पास आकर सत्यकाम के बालों को सहलाती बोली—'उठोगे नहीं ?'

सत्यकाम हड़बड़ा कर उठ बैठा और घबरा कर पूछने लगा—'मेरा कुरता कहाँ है, मेरी किताबें कहाँ हैं ?'

अन्नपूर्णा खिलखिला कर हँस पड़ी और हँसती-हँसती बोली—'एक चीज़ भूल गये; 'मेरा डंडा कहाँ है...!'

सत्यकाम उस हवेली से बाहर निकलने लगा तो धूप ख़ूब फैल गई थी। अन्नपूर्णा ने किवाड़ों की आड़ में खड़े हो कर अनुनय के स्वर में कहा—'शाम को दर्शन देने आओगे ?'

'आऊँगा',—सत्यकाम उसके उतरे-उतरे चेहरे को निहार कर बोला—'तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है।' और चौखट के नीचे पैर रक्खा कि देखा, सामने से मोतिया के चार-पाँच आदमी चले आ रहे हैं। शायद कोई पर्व था उस दिन। शायद सब गंगा-स्नानार्थी थे। वे लोग पास आये तो सत्यकाम कतरा कर एक किनारे से आगे बढ़ गया।

× × ×

पुरोहितजी ने हँस कर कहा—'क्यों, रात तो ख़ूब फँसे!' सत्यकाम भी हँसने लगा। पिता ने प्रसन्न भाव से कहा—'मैं तो शाम को ही समझ गया था कि आज तुम आ न सकोगे मौसी के यहाँ से। बड़ी घनघोर वर्षा हुई रात।'

सत्यकाम हँसता रहा ।

पिता स्नेह से बोले—'ये फल रक्खे हैं तुम्हारे, खा लेना । मैं तो भाई, जा रहा हूँ । उस दिन जिन के यहाँ 'पुत्रोत्सव' में गया था, उनका आदमी आया है, बालक बहुत बीमार है । भगवती की इच्छा । शाम तक लौटने मिला तो लौटूँगा, नहीं तो सवेरे आ सकूँगा...।'

पिता चले गये । सत्यकाम अनमना होकर सारे दिन लेटा-लेटा करवटें बदलता रहा । किताब उठा कर पढ़ने को इच्छा न हुई और ज्यों-ज्यों शाम नज़दीक आने लगी उसका चित्त छटपटाने लगा । सत्यकाम मन को इधर-उधर की बातों में बहुतेरा बहलाता रहा, पर उसकी एक न चली और मन के आगे हार मान कर आख़िर वह उठ बैठा । घर में ताला डाला और लम्बे-लम्बे डग भरता चल दिया उस बट-वृक्ष को याद करता, जहाँ से वह अटारी दीखती थी कि जिस पर बादलों के बीच एक सलोना मुखड़ा...

पर सलोना मुखड़ा अटारी पर न दीखा । हवेली की किवाड़ें बन्द थीं और भीतर से कई आदमियों के बोलने-चालने की आवाज़ें आ रही थीं । सत्यकाम बट तले खड़ा रहा ।

धीरे-धीरे अँधेरा छाने लगा और चन्दनपुर गाँव में जहाँ-तहाँ दिये जल गये तो सत्यकाम एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर मुँह का पसीना पोंछने लगा कि खट् से किसी ने उसकी बाँह पकड़ ली । सत्यकाम ने घबरा कर देखा तो अन्नपूर्णा खड़ी काँप रही थी ।

और अन्नपूर्णा ने काँपती ज़ुबान से कहा कि मौसी आ गई हैं और मौसी को सब मालूम हो गया है । घनश्याम नौकर ने सब बतला दिया और अटारी के जीने पर ताला पड़ गया है और मैं पिछवाड़े से नाली की राह निकल कर आई हूँ ।

सत्यकाम निश्चल, अवाक् खड़ा रहा ।

अन्नपूर्णा उसका हाथ पकड़े-पकड़े कातर कण्ठ से बोली—'अब क्या होगा ?'

सत्यकाम न बोला।

अन्नपूर्णा रुदन-भरे कण्ठ से बोली—'तुम्हें देख नहीं पाऊँगी, क्या हम लोग बिछुड़ जायँगे ? क्या यही अन्तिम मिलन है ?'

सत्यकाम मूक रहा।

अन्नपूर्णा आँखों से आँसू बहाती बोली—'चुप क्यों हो देवता ! क्या सचमुच मुझे तज दोगे ? यही सोचा हो तो जाने से पहिले मेरा गला घोंटते जाओ। मुझे अपने हाथों से मार डालो !'

तब सत्यकाम ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—'सुनो अन्नपूर्णा, मैं तुम्हारे बिना जीवित न रह सकूँगा। तुम्हें यदि नहीं देख पाऊँगा तो मैं पागल हो जाऊँगा। तुम मेरी आँखों से ओझल न होना।'

अन्नपूर्णा से और सहा नहीं गया। उसने नीचे झुक कर सत्यकाम के धूल-भरे चरणों पर अपना सिर रख दिया और फूट कर रो उठी।

सत्यकाम विह्वल होकर अन्नपूर्णा को उठाता-उठाता बोला—'कल इसी स्थान पर, इसी समय मिलोगी ?'

अन्नपूर्णा ने रोते-रोते कहा—'मिलूँगी।'

सत्यकाम ने उसके बालों पर हाथ फिरा कर कहा—'तो अब जाओ तुम। कल हम लोग भविष्य की बात सोचेंगे।'

× × ×

पुरोहितजी उस दिन न लौट सके। सारी रात बालक की जीवन-रक्षा के लिए उपचार होते रहे। कुल का दीपक बुझा चाहता था। पर कोई भी शक्ति मृत्यु-पवन के झोंके से उसे बचा न सकी और दिन निकलते-निकलते उस लघु-दीप की लौ झिलमिला कर बुझ गई। घर में कुहराम मच गया।

बच्चे को नदी किनारे समाधिस्थ करके बन्धु-बान्धव लौट गये और पुरोहितजी दुखी मन लिये मोतिया चले आये।

सत्यकाम इंगलिश पढ़ने चला गया था। पुरोहितजी ने भोजन न

किया। बच्चे का कोमल मुख रह-रह कर याद आ रहा था, सारी दुपहरिया यों ही बीत गई। फिर खिन्न चित्त लिये सन्ध्या-स्नान करके पूजा की तैयारी करने लगे कि अचानक हीरालाल आँगन में आ खड़ा हुआ और प्रणाम करके बोला—'चम्पा आई है। गाँव के बाहर आपका इन्तज़ार कर रही है।'

पुरोहितजी भारी कुतूहल लिये हीरालाल के साथ चले आये।......

बाग़ के किनारे सवारी रुकी थी और चम्पा नीचे खड़ी थी। पुरोहित जी निकट पहुँचे तो वह भक्ति से विनश होकर उनके चरणों में झुकने लगी।

पुरोहितजी चौंक कर एक क़दम पीछे हट गये और हँस कर संकोच से कहा—'बुरा मत मानना माँ, मैंने स्त्री-स्पर्श छोड़ दिया है। कैसे कष्ट किया तुमने, क्यों आना हुआ इस तरह ?'

चम्पा ने विनीत स्वर में कहा—'ज़रा एकांत में चलिए, उस पेड़ के नीचे।'

पुरोहितजी पेड़ के नीचे आ खड़े हुए और प्रश्न भरी दृष्टि से चम्पा की ओर देख कर बोले—'कहो माँ, क्या बात है ?'

तब चम्पा ने हौले-हौले कहा—'महाराज, क्या कहूँ आप से, कहते दुख लगता है। यह बात है...'

पुरोहितजी ने सब चुपचाप सुन लिया और स्थिर भाव से खड़े रहे।

चम्पा दुखी होकर बोली—'यह कैसे हो सकता है महाराज, यह क्या कभी सम्भव है ? आकाश के तारे को कौन तोड़ सकता है ? अभागिन ने यह न सोचा कि क्या नतीजा होगा इसका। चाँद को छूने चली थी अन्नपूर्णा।'

पुरोहितजी कुछ न बोले।

चम्पा दुखी होकर बोली—'आप मेरे पिता-तुल्य हैं। एक बार मुझे जीवन-दान दे चुके हैं। आपका अहित अपनी आँखों से नहीं देख सकती थी। सत्यकाम को समझा दीजिये महाराज, वह तो बहुत भोला है, पाप-पुण्य समझता नहीं, भला-बुरा भी नहीं जानता। मोह हो गया महाराज,

उन दोनों ने कोई अपराध नहीं किया है, मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ, मोह हो गया था दोनों में। पर यह स्नेह कैसे निभ सकता था, कैसे यह सम्बन्ध चल सकता था?—मैंने अन्नपूर्णा पर अत्याचार करके उसे इस मोह से तोड़ा है। अब आप सत्यकाम को उधर जाने से रोक दें। जो जंजीर एक दिन तोड़नी पड़ेगी उसकी कड़ियाँ जोड़ने से क्या फ़ायदा!'

पुरोहितजी शान्त खड़े थे।

चम्पा हाथ जोड़ कर बोली—'आज्ञा दें, मैं जाऊँ अब?'

'हाँ माँ, जाओ तुम।'—पुरोहितजी ने कहा—'आज के इस कष्ट के लिए मैं तुम्हारा ऋणी रहूँगा।'

चम्पा ने सिर हिला कर कहा—'नहीं महाराज, ऐसा कह कर मुझे नीचे मत धकेलिए। आप मेरे 'पिता' हैं।'

...चम्पा चली गई। पुरोहितजी स्वप्नाविष्ट की तरह गाँव में घुसे तो होरी बनिया मिल गया। हाथ जोड़े और ठिठक कर बोला—'आप से एक बात कहना चाहता था—'

क्या कहना चाहता था?

'बात यह है कि वह जो चन्दनपुर की चम्पा है—'

पुरोहितजी ने हाथ हिला कर कहा—'मैं सुन चुका हूँ। तुम और मत कहो, सब सुन चुका हूँ।' और आगे बढ़ गये।

गली के मोड़ पर सुनार की दूकान थी। बाहर खड़ा पंखे से बयार कर रहा था। वह पालागन करके, राह रोक कर बोला—'एक बात सुनिये—'

'सुनाओ, भाई!'

'आप का लड़का सत्यकाम चन्दनपुर में—'

पुरोहितजी हाथ हिला कर बोले—'बस भाई, बस, रहने दो। जानता हूँ, सब जानता हूँ।'

दरवाज़े पर आये अस्थिर पैरों से तो बिरादरी का एक प्रौढ़ व्यक्ति खड़ा था। पैर छूकर बोला—'भीतर चलिए। कुछ गुप्त बातें कहनी हैं।'

पुरोहितजी ने भवें सिकोड़ कर कहा—'क्या गुप्त बात कहोगे? सत्यकाम चन्दनपुर जाता है चम्पा के यहाँ, यही न?'

प्रौढ़ व्यक्ति अचरज से उनका मुख देखता रहा। मुख लाल हो गया था और आँखों में ऐसा भाव था मानो वे किसी विक्षिप्त की आँखें हों।

पुरोहितजी ने भीतर घुस कर फड़ाक् से किवाड़ दे लिये।

× × ×

अन्नपूर्णा अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकी। वह रात को बट-तले नहीं आई। सत्यकाम अँधेरे में आँखें फाड़े उसकी राह देख रहा था। समय बीतने लगा और आकाश से बूँदें गिरने लगीं। पहिले छोटी-छोटी बूँदें गिरीं, फिर बड़ी-बड़ी, फिर सहस्त्र धाराओं से बादल जल बरसाने लगे और उस सौ शाखाओं वाले बट-वृक्ष के नीचे खड़े सत्यकाम के ऊपर पत्तों से चू-चू कर पानी गिरने लगा। पर सत्यकाम को जैसे होश न था, आँखें फाड़े था और खड़ा था। समय बीतता गया। वर्षा होती रही और सत्यकाम धीरे-धीरे शराबोर हो गया। उसके बालों से पानी टपक रहा था, माथे पर और कपोलों पर पानी की धारें बह रही थीं और कपड़े तर होकर शरीर से चिपक गये थे। पर अन्नपूर्णा न आई। और अर्ध-चेतन-सा सत्यकाम यों ही सारी रात उस बट-वृक्ष के नीचे पानी में भीगता खड़ा रहा।...

पुरोहितजी व्याकुल होकर उस रात जागते रहे और बार-बार दरवाज़े तक जाकर पुत्र सत्यकाम की मूर्ति अँधेरे में खोजते रहे। सत्यकाम न लौटा। एक प्रहर रात्रि शेष रही होगी, तब उन्हें नींद आ गई।...

फिर सहसा एक विचित्र स्वप्न देखकर वे चौंक कर जाग पड़े और चारों ओर भीत दृष्टि दौड़ाई तो कोठरी के द्वार पर सत्यकाम को खड़ा पाया।...

दिये की बाती सारी रात जल कर बुझने पर आ गई थी। उसके मन्द प्रकाश में पिता ने देखा कि पुत्र सत्यकाम पानी से तर-बतर भीगा सामने किवाड़ों से सटा खड़ा है और उसके सम्पूर्ण शरीर से पानी टपक रहा है और नीचे उसके चारों ओर ज़मीन गीली हो गई है।

पुरोहितजी मानो वही स्वप्न देख रहे हों, ऐसे उठ कर आये और सत्यकाम की आँखों में आँखें डाल कर देखने लगे कि यह उन्हीं का पुत्र सत्यकाम है, सत्यकाम ही है! पर सत्यकाम की दृष्टि जैसे पत्थर की हो गई थी।

पिता उसकी ओर देख रहे थे और वह पिता को देख रहा था और सामने विराजती माँ की मूर्ति दोनों पिता-पुत्रों को देख रही थी।...

पुरोहितजी ने क्षीण स्वर में पूछा—'कहाँ थे तुम?'

सत्यकाम अचल खड़ा रहा।

'कहाँ थे तुम? सारी रात कहाँ थे? उत्तर दो!'

सत्यकाम प्रस्तर बना खड़ा रहा।

'बोल रे प्रपंची, यही इंगलिश तू पढ़ने जाता था, यही ज्ञान तू पूरा कर रहा था? उत्तर दे! उत्तर दे! अरे, उत्तर दे!'

पर सत्यकाम ने उत्तर न दिया। पुरोहितजी को क्रोध आ गया। संयम न कर सके। डंडा पास ही पड़ा था, उठा कर सारी शक्ति से सत्यकाम की पीठ पर प्रहार किया और चीत्कार करके कहा—'अरे राक्षस! तुझे मेरे ऊपर दया न आई ···?'

क्या सत्यकाम के कपाल पर डंडा मार दिया? यह बालों के ऊपर से लाल-लाल क्या बहने लगा? रक्त है क्या? अरे, रक्त बह रहा है क्या?—पुरोहितजी आँखें फाड़े सत्यकाम के बिलकुल निकट आकर अँगुली से वह लाल पदार्थ छूकर देखने लगे, रक्त ही है क्या? सत्यकाम का रक्त है? फिर दिये के आगे दौड़े आये, दिये के प्रकाश में अपनी अँगुली देखी और चिल्ला कर बोले—'अरे, सिर फोड़ दिया है मैंने!'

और पागलों की तरह फिर सत्यकाम के पास दौड़े आये और उसका जल-सिक्त और रक्तसना मुख छाती से चिपटा कर काँपते बोले—'बेटा !'

सत्यकाम की मानो चेतना लौटी। वह वात्सल्य-भरी छाती से हट कर कटे वृक्ष की तरह पिता के चरणों पर गिर पड़ा और कलेजा चीर देने वाली आवाज़ में रोकर बोला—'और मारो पिता, और मारो, मेरे अपराध का भार हल्का कर दो ! मारो दादा, और मारो, नहीं तो मैं इस पाप के कष्ट से मर जाऊँगा...'

सत्यकाम विकल होकर उन चरणों पर बार-बार अपना रक्तसना मस्तक पटक कर चीत्कार करने लगा—'हाय पिता, हाय पिता...'

पुरोहितजी थर-थर काँपते खड़े थे और आँखों से आँसुओं की धारें बँधी थीं।

माँ की मूर्ति दोनों पिता-पुत्रों को देखती रही।

× × ×

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने 'लोकापवाद' के कारण ही सती-साध्वी सीता को घर से निकाल दिया। समाज में रह कर मनुष्य को समाज के नियम पालने चाहिये। मोह तो मन का एक विकार मात्र है। षड्रिपुओं पर विजय पाना ही पुरुषार्थ है। नारी जीवन का लक्ष्य नहीं है।—पिता सब समझाते-बुझाते गये और सत्यकाम शान्त चित्त से सब सुनता गया फिर उसने लजाकर कहा—'मैं दो दिन निराहार व्रत करना चाहता हूँ दादा, गायत्री-पुरश्चरण करूँगा भगवती के आगे।'

दादा ने विह्वल होकर कहा—'मेरी चित्तवृत्ति भी डाँवाडोल हो गई है सत्यकाम, मुझे भी व्रत करना होगा...।'

सारा दिन बीत गया और रात पड़ गई तो पिता पाठ समाप्त करके बाहर आँगन में जा सोये। आकाश स्वच्छ था और सप्तर्षियों की माला नीचे को उतर आई थी। पुरोहितजी हल्का हृदय लिये एक भजन गुनगुनाते रहे, फिर धीरे-धीरे उनकी आँखों पर नींद उतर आई।

पर सत्यकाम न उठा। भगवती के आगे पद्मासन लगाये, नयन मूँदे गायत्री मंत्र का पुरश्चरण कर रहा था, चित्त और आत्मा की शुद्धि के लिए। इसी प्रकार घंटे पर घंटा बीतने लगा। यहाँ तक कि रात्रि का द्वितीय प्रहर भी उतर चला।...

सहसा, जाने कैसी एक ध्वनि सुन कर, आँगन में सोये पिता की नींद खुल गई। चौंक कर देखा। उनके चरणों के पास पाटी पर सिर रक्खे बैठा सत्यकाम सिसक रहा था। पिता घबरा कर उठ बैठे और स्नेह से कातर होकर पुत्र के सिर पर हाथ रख कर पूछने लगे—'क्या हुआ सत्यकाम?'

सत्यकाम और फूट कर रो उठा।

पिता ने विकल होकर कहा—'कहो बेटा, क्या बात है, क्यों इस तरह रुदन कर रहे हो तात?'

तब सत्यकाम पिता के चरण पकड़ कर रोता-रोता बोला—'मुझे दृष्टि-दोष हो गया है दादा, मेरी दृष्टि लौटाइये पिता!'

'दृष्टि-दोष? कैसा दृष्टि-दोष हो गया है?'

सत्यकाम पिता के चरण पकड़े रोता-रोता बोला—'मुझे भगवती की मूर्ति नहीं दीखती...'

'भगवती की मूर्त्ति नहीं दीखती?'

सत्यकाम क्रन्दन करके बोला—'अन्नपूर्णा का मुख दीखता है। भगवती का मुख अन्नपूर्णा का हो जाता है। मेरी रक्षा करो पिता, मुझे दृष्टि-दोष हो गया है!'

पुरोहितजी क्षण भर अवाक् होकर बैठे रहे। फिर द्रुत-गति से कोठरी की ओर भागे आये।...

भगवती की पावन प्रतिमा के आगे पीतल के दीपक में मोटी-सी बाती जल रही थी। कोठरी में शान्त, उज्ज्वल आलोक छाया था।

पुरोहितजी सत्यकाम के रिक्त आसन पर बैठ कर मूर्त्ति की ओर निहारने लगे।

यह क्या?

यह क्या हो रहा है?

भय से धड़कता कलेजा लिये पुरोहितजी ने अपनी आँखों से स्पष्ट देखा, भगवती का वह सदा का मुख नहीं है। एक अति स्निग्ध, अति सुन्दर, अति प्रिय, अति सरल षोडशी बाला करुण नयनों से उनकी ओर निहार रही है! ये नयनों में आँसू भरे हैं न?

थर-थर काँपते पुरोहितजी ने आँखें मूँद लीं और भगवती के चरणों में सिर रख कर एक बार रुँधे कण्ठ से पुकारा—'माँ!'...

× × ×

...पूरब में शुक्र तारा उदित हो चुका था। सब जाग रहे थे। अचानक बड़े ज़ोर से दरवाज़े की साँकल खड़खड़ा उठी। हीरालाल लालटेन लिये दौड़ा आया, शीघ्रता से किवाड़ें खोलीं और हक्का-बक्का रह गया।

सामने भगवती के साधक पुत्र सत्यकाम का हाथ पकड़े खड़े थे। भयभीत होकर हीरालाल ने प्रणाम किया। पुरोहितजी सत्यकाम का हाथ पकड़े भीतर घुस आये और हीरालाल से पूछने लगे—'माँ चम्पा कहाँ है?'...

आँगन में सब जमा थे और भगवती के साधक शान्तभाव से कह रहे थे—'सत्यकाम को नहीं, मुझे दृष्टि-दोष हो गया था माँ! इतने दिनों तक, इतनी सालों तक, भगवती की आराधना करता रहा, पर मेरी साधना अधूरी ही रही। माँ को नहीं पहिचान सका। अज्ञानी होकर माँ का अपमान करता रहा। इससे बढ़ कर और क्या अधर्म होगा? माँ मेरी परीक्षा ले रही थीं, असफल हो गया। मैं अबोध समझ नहीं सका, तुम भी नहीं समझ सकीं, चम्पा माँ! तुम्हारी भक्ति भी अधूरी है। कहाँ है वह?'

चम्पा की आँखों में पानी भर आया था। काँपते कण्ठ से बोली—'कोने में सिर दिये पड़ी है अभागिन। पिता, उसने अफ़ीम खा ली थी, जान दे रही थी। बड़ी कठिनता से हम लोग उसे बचा पाये हैं।'

पुरोहितजी तड़ित्-वेग से उठ कर खड़े हो गये और माथे से दोनों हाथ लगा कर बोले—'भगवती, जगज्जननी, मुझे इतने बड़े पाप से बचा लिया, तू धन्य है मैया!'

फिर चौंक कर बोले—'हीरालाल!'

'महाराज!'—हीरालाल हाथ जोड़े खड़ा था।

'भैया, जल्दी करो। यज्ञ-वेदी बनाओ। अभी ब्राह्ममुहूर्त्त शेष है। मैं अपने हाथों से सत्यकाम को उसे सौंप कर, अभी सूर्योदय से पूर्व, चल दूँगा। उत्तरा-खंड में मेरे गुरुदेव हैं—वे मुझे पुकार रहे हैं। चम्पा माँ!'

'हाँ पिता,'—चम्पा रो कर बोली।

'मेरी माँ को लाओ, कहाँ है मेरी माँ अन्नपूर्णा?'

...शिथिल गात, शिथिल वसन और धूलि धूसरित, कुम्हलाये मुख वाली अन्नपूर्णा को चम्पा पुरोहितजी के आगे ले आई। नयन मुँदे थे दुःखिनी के और नयनों से मोती झर रहे थे।

पुरोहितजी ने गद्गद होकर कहा—'आँखें खोलो माँ, मैं तुम से क्षमा की भिक्षा लेने आया हूँ।'

अन्नपूर्णा और खड़ी न रह सकी। कुछ विचार न किया। पुरोहित जी की गोदी में सिर रख कर फफकने लगी।

भगवती के साधक 'स्त्री-स्पर्श' की बात भूले, विश्व-चराचर का ज्ञान भूले। अन्नपूर्णा के सिर पर काँपता हाथ रख कर रो कर कह उठे—'मैया मेरी!'

करुण, पवित्र आँसुओं की नदी बह रही थी हवेली में।

तिवारी

बाँकेलाल तिवारी घर में घुसे, तो चूल्हा ठंडा पड़ा था और मालकिन ओसारे में निश्चिन्त बैठी, छोटी बच्ची को दूध पिला रही थीं।

बाँके तिवारी चौके में झाँक कर बोले—'खाना नहीं बनाया !'

मालकिन ने स्वर को ऊँचा करके जवाब दिया—'बनाऊँ क्या अपना सिर ? तड़के ही कह दिया था कि दाल, तरकारी कुछ नहीं है। अब लौटे हैं ! ख़ाली हाथ हिलाते आ खड़े हुए।'

तिवारी बग़लें झाँकने लगे। फिर उल्टी पड़ी कटोरी को सीधा करते बोले—'ज़मींदार रामनारायण की बारात आ गई। उसी को देखने चला गया था।'

मालकिन ने उसी स्वर में कहा—'बारात देखने से पेट भर गया हो तो अब कुछ शाक-तरकारी ले आओ। पाँच साल के बच्चे हैं न ? बारात देख रहे थे !'

तिवारी व्यस्तता से बोले—'लो, चला मैं। अभी कुछ लिये आता हूँ शाक-तरकारी। तुम चूल्हा सुलगाओ तब तक।'

मालकिन ने बच्ची को छुड़ा कर अलग किया, भवें चढ़ाकर बोलीं—'अभी से चूल्हा सुलगा कर क्या होगा ?'

पर तिवारी ने ध्यान न दिया। पैरों में फटा जूता डाला। और बाहर को लपकते चले गये।

ज़मींदार के नौकर-चाकर मिले। बारात के लिए नाश्ता जा रहा था। तिवारी उन्हीं के साथ हो लिये, और जनवासे तक साथ-साथ आये बातें करते।

पक्की सड़क के किनारे, पाँच मेहराबदार खम्भों वाली धर्मशाला खड़ी थी, जिसके कंगूरे मीलों से दिखाई देते थे। आगे ईंटों का लहरियादार फ़र्श था और उससे आगे छोटा-सा मन्दिर था महादेवजी का। बायें कुँआ था और दायें बाग़। आम के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की कतारें तिरछी होकर दूर तालाब के किनारे तक चली गई थीं, जिनकी घनी टहनियाँ आपस में गुँथ कर एकाकार हो गई थीं और जिनके नीचे सूरज की किरणें कभी न आ पातीं। आमों के बौर झर गये थे और छोटी-बड़ी, हरी अमियों से डालों के छोर सजे थे, जिन्हें छोटे बच्चे ललचाई नज़रों से देखते और ढेले मारते ताक ताक कर।

इसी बाग़ में बारात ठहरी थी। सारे गाँव में इसकाशोर था कि लड़के वाले बहुत बड़े आदमी हैं। पाँच हाथी थे, तवायफ़ें थीं, भाँड़ थे और रथों की और रहलुओं की तो शुमार न थी। ऐसी घोड़ियाँ लाये थे सरगुजा वाले ठाकुर कि इस गाँव के लोग उनकी चाल देखकर अचम्भे में आ गये और दाँतों-तले अँगुली दबा ली।

अमीर-उमरा, रईस और बड़े-बड़े ओहदे वाले अफ़सर तक इस बारात में थे, जिनकी अलग-अलग रंगीन छोलदारियाँ लगी थीं, जिनमें बार-बार तिरछे साफ़े बाँधे, मूँछें उमेठे सेवकगण पर्दे हटा कर बराबर आते-जाते थे।

लड़की वाले खौफ़-सा खाये थे और तन-बदन का होश खोकर, जी-जान से सरग़ुजा वालों की ख़ातिर-तवाज़ों में लगे थे और हर बात पर हर बराती के हाथ जोड़ते थे और जो कुछ कहना होता था, 'सरकार' कह कर अर्ज़ करते थे। भाग-दौड़ करते-करते उनके माथों से पसीना टपक रहा था।...

नाश्ते के थाल लिये नौकर-चाकर आगे बढ़ गये। जनवासे का पड़ाव आ गया, तिवारी ठिठक गये। घड़ी भर चारों ओर नज़र दौड़ाकर

निहारते रहे, फिर पीछे मुड़ कर सड़क पार करके, शेख़जी के बाग़ में उतर आये नीचे।

रखवाला गाँव में गया था, या शायद उधर बारात का तमाशा देख रहा था। तिवारी ने उसकी झोपड़ी में झाँक कर देखा, तो प्रसन्न हुए। सोचा चलो, यह अच्छा रहा। दस-पाँच अमियाँ जेबों में डाल लें। खटाई का काम देंगी। हर पेड़ पर नज़र डालते, अमियों को ताकते, आगे बढ़ने लगे बाग़ के बीच। मानों टहल रहे हों, मानों वे ही बाग़ के मालिक हों।

तभी उधर पत्तों की चुर-मुर होती सुन पड़ी। .शायद कोई चालाक लौंडा है, जो शायद अमियाँ चुरा रहा है। ज़ोर से डाँटने को हुए कि उस 'चोर' का चेहरा दीख गया। हैरत में आ गये।

यह इन्द्रदेव था, ज़मींदार रामनारायण का बड़ा दामाद। वह भी अपनी साली की शादी में आया था। उसकी स्थिति ऐसी थी कि वह न बराती था, न घराती। काम की इतनी भीड़-भाड़ थी, पर उससे भला कोई क्या काम करने को कहता! और अपने आप किसी काम में जुट पड़ने में इन्द्रदेव को संकोच लगा। अकेला बैठक में पड़ा था। छोटी सालियाँ और साले उससे बार-बार आकर कहते थे—'नाश्ता और ले आवें?...थोड़ा-सा शर्बत और पीजिये, जीजा जी!...पान खाइये न, जीजा जी!...आप की बहिन का क्या नाम है?...आपको नाचना आता है, जीजाजी?'

जब इन्द्रदेव को यह परिस्थिति असह्य हो उठी, तो वह चुपचाप निकल आया बाहर। बारात के हंगामे से बचता, इधर पूरब वाले बाग़ में चला आया अकेला, छड़ी लिये। फिर घने पेड़ों की छाँह में धीरे-धीरे टहलता दो जगह ज़रा देर बैठ कर, यहाँ मुराव की बारी में आ पहुँचा था।

बारी में लहलहाते पत्तों वाली घुइयाँ की हरियाली दूर तक फैली थी

और मुराव अपनी कुइयाँ से पानी सींच रहा था उन पौधों में, जिस से हरी दूब वाली किनारे की मेंड़ें नम होकर ठण्डी हो गईं थीं।

इन्द्रदेव वहीं एक मेंड़ पर बैठ गया और इस दृश्य से विमुग्ध होकर, कविता गुनगुनाने लगा।

यह 'सुदामा-चरित' का एक कवित्त था, जिसका चौथा पद बार-बार सोचने पर भी इन्द्रदेव को याद न आया। और उसने कुछ खिन्न हो कर अकेले में अपने-आप से कहा—'क्या था आख़िरी चरण? क्या था...'

तभी पीठ पीछे से एक विनम्र स्वर सुन पड़ा—'मैं सुनाऊँ शहज़ादे साहब को?'

इन्द्रदेव ने चौंक कर सिर घुमाया, तो एक अजनबी, अधेड़ उम्र का व्यक्ति खड़ा मुसकरा रहा था। उस व्यक्ति ने उत्तर की प्रतीक्षा न की। वहीं इन्द्रदेव के पास मेंड़ पर बैठ गया और मुसकराता बोला—'चौथा चरण यों है, 'पानी परात को हाथ छुओ नहिं, नैनन के जल सों पग धोये...।'

यह बाँकेलाल तिवारी थे, जिनकी जेबों में अमियाँ भरी थीं और जो इन्द्रदेव को देखकर चले आये थे।

इन्द्रदेव ने प्रसन्न होकर पूछा—'आप कवि हैं क्या?'

तिवारी ने हाथ जोड़ कर कहा—'मैं तो अपढ़, गँवार हूँ। दादा पंडित थे। उन्होंने बचपन में मुझे बहुत से कवित्त याद करा दिये थे। लीजिये, यह छड़ी लीजिये अपनी। इसे आप अभी उस बाग़ में भूल आये थे।'

इन्द्रदेव ने अचरज से कहा—'अरे!' और अपनी हाथी-दाँतवाली उस छड़ी को लौट-पौट कर, बोला हँस कर—'मेरे भाग्य अच्छे थे, जो आप जैसे आदमी के हाथ यह क़ीमती चीज़ पड़ी। कोई बेईमान या चोर-उचक्का पाता, तो हरग़िज न छोड़ता। आप यहाँ गाँव में क्या करते हैं? खेती करवाते हैं शायद?'

ने द्रवित होकर मुराव का हाथ पकड़ लिया। लड़के को छुड़ा कर अलग किया। शान्त स्वर में बोला—'क्यों इतना मार रहे हो ?'

'यह देखिये !'—मुराव ने नीचे ज़मीन की ओर इशारा करके कहा—'इसकी करतूत देखिये सरकार, चोट्टा कहीं का !'

ज़मीन पर बैगनों का ढेर लगा था। तिवारी जाने कब पीछे आ खड़े हुए थे। इन्द्रदेव ने सिसकी भरते लड़के को निहार कर कहा—'बालक है। जाने दो अब। नासमझ है।' और अनुमोदन के लिए तिवारी की ओर देखा।

चुप खड़े थे तिवारी। चौंक कर बोले—'जी हाँ, नासमझ है, क़ाबिल माफ़ी है।'

मुराव बोला—'सरकार, आप क्या जानें ? इस गाँव में ऐसे समझदार लोग भी हैं, जिनके बाल पक गये हैं, पर यहाँ बारी से तरकारियाँ चुरा ले जाते हैं। बतलाइये, उनके साथ क्या सलूक हो ? यह तो ख़ैर बालक है। पर जो बुड्ढे हो चले हैं...'

इन्द्रदेव चुप रहा।

तिवारी शीघ्रता से बोले—'चलिये, धूप तेज़ हो रही है।'...

बारी से दूर आ गये तो इन्द्रदेव ने इतनी देर बाद मुँह खोला। दुखी स्वर में कहने लगा—'ग़रीबी कितनी बुरी होती है। उस लड़के का क्या दोष है ? शायद आज उसके घर में खाने को कुछ न हो। शायद उसकी माँ हाथ पर हाथ घरे उदास बैठी हो। चोरी करना कोई आनन्ददायक चीज़ नहीं है। आदमी मजबूर होकर ही चोरी करता है। आपका क्या ख़याल है ? मैं ठीक कह रहा हूँ न ?'

'जी हाँ, जी हाँ। आप बजा फ़रमाते हैं।'—तिवारी ने बहुत शीघ्रता से कहा।

इन्द्रदेव याद करके बोला—'मेरे यहाँ एक बार नौकर ने अजीब चोरी की। भैया-दूज का मौक़ा था। बहिन हम लोगों के लिए टोकरा भर

मीठा लाई थी। रात के बारह बजे खट्-पट् सुन कर जो हम लोगों की नींद खुली और तिदरी में पहुँचे तो देखा कि बुड्ढा रामनाथ अँधेरे में टोकरा खोल कर मिठाई खा रहा है।' इन्द्रदेव ने फिर तनिक हँस कर कहा—'क़रीब-क़रीब सब ख़तम कर चुका था। अब क्या हो? बड़े भाई साहब ने नाराज़ होकर उसकी पीठ पर एक लात मारी। पिताजी ने उन्हें डाँट कर रोका, फिर हम लोगों से बोले कि 'ख़बरदार, इस पर कोई हाथ न चलाये। यह बिलकुल बेक़सूर है। कभी इसे मिठाई दी तुम लोगों ने? अपने पर क़ाबू नहीं रख सका। ख़तावार तो तुम लोग हो। ख़ुद मिठाई खाते हो और घर में एक दूसरा आदमी, जो तुम्हारी तरह ही दिल रखता है और तुम्हारी जैसी ही रसना है जिसकी, मिठाई के एक टुकड़े को तरसता है।' पिताजी ने रामनाथ को बिलकुल माफ़ कर दिया। हर समझदार आदमी यही करता। आप भी यही करते, मैं समझता हूँ।'

'जी हाँ, जी हाँ।'—तिवारी बोले।

सड़क आ गई थी। सामने जनवासा दीख रहा था। लड़कों का झुण्ड हाथियों के आस-पास जमा था और कुछ लड़के एक साथ चिल्ला रहे थे—

'हाथी-हाथी बार दे;
सोने की तरवार दे।'

एक लड़का सामने से कतरा कर निकला और तनिक फ़ासले पर खड़ा होकर चिल्ला कर गाने लगा—

'बाँके तिवारी, बाँकी चाल,
लेकर भगा इमरती थाल,
पड़ी मार, तब हुआ बेहाल
हाय इमरती, तरमाँ माल!'

इन्द्रदेव ने सुना तो हँस कर बोला—'लीजिये, यह भी कोई रामनाथ

का ही भाई रहा होगा, जिसकी कीर्त्तियाँ सड़कों पर गाई जा रही हैं। कविता अच्छी बनाई है किसी ने। आप को पसन्द आई?'

'जी हाँ, जी हाँ। बहुत अच्छी है।'—तिवारी ने त्रस्तभाव से कहा—'अब आज्ञा दीजिये, घर चलूँ।'

—२—

मालकिन के आगे अमियों का ढेर लगा कर बाँके तिवारी बोले—'देखो, कितनी खटाई ले आया!'

मालकिन ने पूछा—'तरकारी कहाँ है?'

अनुनय करके बोले—'भूल गया भाई! माफ़ी दो। वह ज़मींदार का बड़ा दामाद मिल गया था। माना नहीं वह। हाथ पकड़ कर बैठा लिया और हाथ जोड़ कर बोला कि 'बहुत तारीफ़ सुन चुका हूँ आपकी। मेरे श्रवण तृप्त कीजिये।' 'श्रवण' कान को कहते हैं। 'तृप्त कीजिये,' यानी 'कुछ सुनाइये।' मेरी ज़ुबान जो खुली और दो-चार बातें सुनाईं तो हक्का-बक्का रह गया। बोला, 'आप इस गाँव में क्यों पड़े हैं? वन में मोर नाचा, किस ने जाना? मेरे साथ चलिये न! ज़िन्दगी भर अपने पास रक्खूँगा। कोई तकलीफ़ न दूँगा।' वह तो डिप्टी कलक्टर होने वाला है। कहने लगा, 'मुझे आप-जैसा आदमी मिले, तो अपना भाग्य सराहूँ। हामी भरिये, मेरे साथ चलियेगा न!' मैंने सोचकर कहा, 'साहब, जब तक मालकिन से न पूछ लूँ, आपको पक्का वचन नहीं दे सकता।'

मालकिन ने शान्त स्वर में कहा—'क़दर करने वाला मिला तो क़दर की। गाँव वाले मूरख, चाण्डाल हैं। तुम्हारा गुण क्या खा कर समझेंगे! चले जाओ। वह कहता है तो जाने में बुराई क्या है?'

तिवारी बोले—'बड़ी मुश्किल से पिंड छोड़ा। फिर मिलने का वादा करवा लिया। चलने लगा तो पैर छुये मेरे।'

मालकिन ने कहा—'उसकी बड़ी उमर हो। कितनी बड़ी जायदाद

है उसकी और गुमान छू नहीं गया है, सुनते हैं। यहाँ दो कौड़ी के आदमी आपे से बाहर हो जाते हैं।'

मँझला लड़का बाहर से भागता आया और माँ के कन्धों पर झुक कर बोला—'भूख लगी है अम्माँ!'

तिवारी जैसे स्वर्ग से धरातल पर उतर आये। घबरा कर बोले—'लाओ, थोड़ी ज्वार निकाल दो। आलू ले आऊँ कुंदन साव के यहाँ से।'

मालकिन भी ज़मीन पर आ गईं। बोलीं—'ज़रा जल्दी लौटना दया करके।'

तिवारी ने लड़के को साथ लिया और लपकते-झपकते चल दिये अँगोछे में ज्वार बाँधे।...

बाँके तिवारी के बाप पंडिताई करते थे गाँव में। लड़के को उर्दू पढ़ा रहे थे। सोचते थे कि कभी जो मिडिल पास कर सका तो पटवारी हो जायगा। इससे बड़ी साध और क्या हो सकती थी? पर वह साध पूरी न हुई। बाप चल बसे और तिवारी का पढ़ना छूट गया। न मिडिल पास कर पाये और न पटवारी हुए। माँ जब तक ज़िन्दा रही, किसी तरह घर-गिरस्ती चलाती रही। उसी ने हाकिमों से अनुनय-विनय करके बाँके-लाल को मदरसे में छोटा मुदर्रिस भी बनवा दिया। वह मरी तो बाँके तिवारी पर उसी दिन से मानो सनीचर आ गया। महीना बीतते-बीतते बरख़ास्त हो गये। किसी लड़के को पाठ याद न करने पर रूल से इस क़दर पीटा कि उसकी कलाई तोड़ दी। हेड मुदर्रिस तो पहिले से ही ख़ार खाये था। सो उसने रिपोर्ट कर दी। पन्द्रहवें दिन बाँके तिवारी बरख़ास्त कर दिये गये। पंडिताई करनी आती न थी। नौ बीघा खेत था। उसी पर गुज़र चलने लगी। और एक के बाद एक सन्तानें होती गईं और दरिद्रता लाती गई घर में। फिर गाँव वालों की प्रार्थना पर बिजली का कुँआ बना हार में। और तिवारी का चार बीघा खेत क़ाम में आ गया 'ट्यूब वेल' के। तब से और तबाही आ गई।

सरकार से हरजाने में जो रुपये मिले सो औरत की बीमारी में ख़र्च हो गये। पाँचवीं सन्तान अस्पताल में मृत पैदा हुई। घर में अन्न का दाना नहीं। चाँदी के ज़ेवर बेच-बेच कर खाते रहे। जेवर निवट गये तो उधार लेते रहे जिस-तिस से। जब किसी का लौटा नहीं सके तो लोगों ने उधार देना बन्द कर दिया। हालत गिरती गई और मन की वृत्ति निम्न से निम्नतर होती गई।

जब इस तरह ज़िन्दगी के चारों ओर ख़ाक उड़ रही थी, कुटुम्ब में एक शादी आ पड़ी। लड़की का ब्याह था। तिवारी चाचा लगते थे। कुछ न कुछ ख़र्च करना लाज़िमी था। कहाँ से दें, क्या करें? औरत की नाक में लौंग थी सोने की। आख़िर ढाई रुपये में उसे बेचा और दो रुपये से वर का टीका कर आये और फिर लगे रहे सारी ताक़त से काम-काज में। शरीर अपना था सो शरीर खपा रहे थे, कुटुम्ब की लड़की के ब्याह में। दुपहरी भर भट्टी के पास डटे रहे, फिर बड़े-बड़े बोझ उठा-उठा कर भण्डार में पहुँचाते रहे। फिर जब बारात खाने आ पहुँची तो ख़ुद भूखे-प्यासे रह कर और सब के साथ बारात को खिलाने-पिलाने में जुट गये।

लड़की का भाई भीतर से मिठाइयों के थाल ला-लाकर परोसने वालों को दे रहा था। तिवारी पानी परोस रहे थे। लड़की का भाई भीतर से इमरतियों का थाल लिये आया। इन्हें पानी का गडुआ लिये देखा तो झिड़क कर बोला—'चच्चा, क्या कर रहे हो? पानी धर दो। लो, यह थाल पकड़ो तुम। बाहर फाटक के किनारे बाजे वाले और धीमर रह गये हैं। उन्हें परोस आओ इमरतियाँ।'

तिवारी भरा थाल लिये फाटक के बाहर आये तो वहाँ कोई न था। अँधेरा पड़ता था। इसलिए उन लोगों को किसी ने उठा कर भीतर आँगन के एक ओर ही बैठा दिया था। तिवारी चारों ओर आँखें दौड़ा कर देखने लगे। कोई कहीं न था। दूर पर सिर्फ़ बुढ़िया मेहतरानी गुड़ी-मुड़ी

होकर पड़ी थी, जूठन के इन्तज़ार में। दस क़दम पर अपना घर है। सहसा एक विचार आया—यह इमरतियों का थाल अपने घर ले जायँ। राह में अँधेरा है। दस क़दम पर घर है। आगे-पीछे कहीं भी कोई देख नहीं रहा है। यह इमरतियों का थाल झपट कर घर ले जायँ। हाय, उन के बच्चों ने आज तक कभी इमरतियाँ नहीं खाई हैं। जल्दी, जल्दी करो!

तिवारी भरा थाल लिये तेज़ क़दमों से अँधेरे में आगे बढ़ गये ···।

लड़की का मामा तमोली की दूकान से पान-सुरती खा कर लौट रहा था। यहाँ अँधेरा देख उसने हाथ का टार्च जला दिया। गज़ भर के फ़ासले पर तिवारी थाल लिये दीखे। टार्च की तेज़ रोशनी उनके पूरे बदन और थाल पर पड़ रही थी। वहीं काठ हो गये।

मामा ने अचरज से पूछा—'यह मीठा कहाँ लिये जा रहे हो?'

तिवारी सन्न रहे। मामा ने आगे बढ़ कर उनकी बाँह पकड़ ली। शान्त स्वर में कहा—'इधर आओ।' और टार्च की रोशनी आगे फेंकते तिवारी को फाटक की ओर ले चले···।

बारात चली गई। फिर वही पुराना ढर्रा चलने लगा सब का। पर इमरतियों के थाल की बात जैसे अजर-अमर हो गई। जाने कैसे और जाने किसने वह कविता बनाई और मुहल्ले के, ग़ैर मुहल्ले के हर लड़के को वह याद हो गई और हर लड़का जब तिवारी को देखता तो ज़ोर से गा उठता—

'बाँके तिवारी, बाँकी चाल।
ले कर भगा इमरती थाल···'

यह मानो पतन का श्रीगणेश था। दरिद्रता आदमी को बेहया बना देती है। मान-अपमान का बोध ही मन से निकल जाता है। बेहया और बेग़ैरत इसी प्रकार आदमी हो जाता है। तिवारी का भी वही हाल हुआ।

बकरी पाल ली थी। छोटा बच्चा दूध पीता था। बड़ों को भी थोड़ा-थोड़ा मिल जाता था। तिवारी उसके लिए घास-पत्ती बीन लाते थे। एक दिन इसी प्रकार गट्ठर बाँधे तिवारी को अपने खेत से निकलते गेंदनलाल कुर्मी ने पकड़ लिया। गट्ठर खुलवा कर तलाशी ली तो उसके भीतर बाजरे की पच्चीस बालियाँ बँधी निकलीं।

वह तो थाने लिये जा रहा था। लोगों ने छुड़ा दिया।

एक दिन फिर एक मुराव ने रँगे-हाथों पकड़ा। आलू खोद रहे थे आड़ में बैठे। फिर ताल में सिंघाड़े तोड़ते पकड़े गये। धीमर ने पकड़ा। बड़ी लानत-मलामत की उसने।...

अन्त में यह स्थिति हो गई कि लोग तिवारी को कहीं आता-जाता देख एक-दूसरे से पुकार कर कहने लगे—'होशियार रहना, चोर-उचक्के गाँव में बहुत बढ़ गये हैं!' तिवारी सब का व्यंग सुनते, छिपी गालियाँ सुनते, लड़कों का गीत सुनते। पर सब-कुछ जैसे कानों तक ही रह जाता। मौक़ा पाते तो हाथ साफ़ करने से बाज़ न आते। ग़नीमत थी कि कभी किसी ने उन पर हाथ न चलाया। पर अगर कोई उन्हें पीटता तो शायद पिट भी लेते चुपचाप। यह उनके पतन की चरम सीमा थी। उनके मनुष्यत्व का गला घोंट दिया था किसी ने। कभी भर-पेट अन्न मिलता, कभी आधे-पेट रहते। किसी दिन निराहार रह जाना पड़ता। सारे दिन मारे-मारे फिरते। मौक़ा पाते तो छोटी-मोटी चोरी कर लाते और बच्चों के साथ बैठ कर खा-पी लेते।

पहिले आत्मा उन्हें धिक्कारती थी। फिर अनमनी होकर उदास होने लगी। फिर मूक हो गई एक दिन। बच्चों के कुम्हलाये मुख उन्हें सब कुछ करने को विवश कर देते। पढ़ना-लिखना छूट गया। जिन्दगी ऊसर हो गई थी। परन्तु तिवारी को हिन्दी के कवित्त और उर्दू की गज़लें हज़ारों की संख्या में याद थीं। यही मानो मनुष्यत्व का चिन्ह उनके पास बाक़ी

रह गया था। अक्सर लोगों को हिन्दी-उर्दू की कविताएँ सुना कर मुग्ध कर देते थे।

खेत जो कुछ बच रहा था, उसे अधिया पर दे देते थे। बैलों की जोड़ी ख़रीद नहीं सकते थे। ख़ुद काश्त करते तो कैसे करते? जब तक अन्न घर में रहता, मौज से बैठे खाते। आलस्य और काहिली ने आ घेरा था।

जाड़ों में शहर का एक बनिया लोगों की ईख ख़रीदने आया था। उससे जान-पहिचान हो गई। दस कोस पर उसकी बहुत भारी गुड़-राब की ख़रीद हो रही थी। तिवारी को उसने हिसाब-किताब लिखने पर नियुक्त कर दिया। तिवारी ने वहाँ भी हाथ साफ़ किया। कई धड़ी गुड़ वहाँ से उड़ा लाये। एक मटका राब पत्तों में छिपी रक्खी थी और घर लाने की फ़िक्र में थे। पकड़ लिये गये। बनिये ने उनका हिसाब करके जवाब दे दिया।...

उस साल खेत में बाजरे और ज्वार की पैदावार अच्छी हुई थी। जाड़े भर तिवारी ने गुड़ से बाजरे की रोटियाँ खाईं और अब ज्वार खा रहे थे। नौकरी वाले रुपये निबट गये थे। अब पैसों की ज़रूरत पड़ती तो ज्वार बेच कर काम चलाते थे। सो वही ज्वार ले कर आलू ख़रीदने गये थे···।

कुन्दन साव के यहाँ आलुओं का ढेर लगा था। आलू सड़ने लगे थे, इसलिए वह सस्ते भाव पर बेच रहा था। साव ने ज्वार तौली और फिर हिसाब करके आलू तौलने लगा। तिवारी सामने अँगोछा फैलाये बैठे थे। पास ही आलुओं का ढेर था। अँगोछे पर आलू डाल कर साव किसी दूसरे ग्राहक से बातें करने लगा। मौक़ा पाकर तिवारी ने तीन-चार बड़े-बड़े आलू जल्दी से अपने आलुओं में डाल लिये और अँगोछा लपेट कर चल दिये। वह ग्राहक देख रहा था। तिवारी उठ गए तो उसने साव से कहा। पर साव हँस दिया। बोला—'उनकी चोरी करने की आदत

पड़ गई है। पढ़ा-लिखा आदमी है। भाग्य की बात है कि उचक्का हो गया है अब। पहिले मदरसे में पढ़ाता था।'

इधर तिवारी ने बाहर खड़े लड़के का हाथ पकड़ा और लम्बे डग भरने लगे...।

राह में ज़मींदार की चौपाल पड़ी। इन्द्रदेव ऊपर मूढ़े पर बैठा था। इन पर नज़र पड़ी तो उठ कर खड़ा हो गया और आदर से बोला—'आइये, आइये!'

तिवारी ने आलू लड़के को थमाकर घर भेज दिया और आप चौपाल पर चढ़ आये। इन्द्रदेव ने दूसरा मूढ़ा खींचकर बैठने का इशारा किया और नम्र भाव से कहने लगा—'मैं खाने जा रहा था। चलिये, भोजन कर लीजिये।'

तिवारी हाथ जोड़कर बोले—'बस, अभी-अभी खाकर आ रहा हूँ। आप जाकर जीमिये।'

नौकर इन्द्रदेव को भीतर ले जाने के लिए खड़ा था। इन्द्रदेव ने सकुचा कर कहा—'लेकिन आप उठ मत जाइयेगा। मैं अभी दस मिनिट में आता हूँ।'

तिवारी हँसकर बोले—'मैं बैठा रहूँगा।'

इन्द्रदेव तेज़ी से नीचे उतर गया। पर नौकर न गया। उसने चौपाल में चारों ओर निगाह दौड़ाई। जमाई बाबू का रेशमी कुरता टँगा था और कुरते में शायद सोने के बटन लगे थे। सँभाल कर नौकर ने कुरता उतार लिया। तिवारी की ओर देख कर मुसकराया और धीर गति से चला गया।

तिवारी के मुँह से अनजाने एक लम्बी साँस निकल गई, सामने के नीम को ताकने लगे...।

आध घंटा बाद एक दूसरा नौकर आकर तिवारी को भीतर हवेली में बुला ले गया। भंडार-घर के आगे इन्द्रदेव कुरसी पर बैठा था और एक

कुरसी तिवारी के लिए रखवा ली थी। इन्द्रदेव ने पान खाते-खाते कहा—'तशरीफ़ रखिये। मैं तो भंडारी बना दिया गया। इस समय मनों मिष्टान्न का स्वामी हूँ! लीजिये, पान खाइये।'

तिवारी ने आज जाने कितने दिनों बाद पान खाया। माथे पर पसीना आ गया और दिमाग़ ख़ुशबू से भर उठा।

इन्द्रदेव ने हँस कर कहा—'हम लोगों को ड्यूटी अच्छी मिली। तरह-तरह की मिठाइयों की सुगन्ध लेते रहेंगे। अच्छा, अब कोई 'देव' का कवित्त सुनाइये। वह सुनाइये तो, 'राधे कही है...'

तिवारी 'देव' कवि की कविता सुनाने लगे। फिर इन्द्रदेव ने सुनाया, फिर तिवारी ने सुनाया, फिर इन्द्रदेव ने फिर तिवारी ने।|कविता के रस ने मानो दोनों व्यक्तियों को पागल कर दिया हो। कई घण्टे बीत गये। नशा-सा चढ़ आया था। झूम रहे थे दोनों कि नौकर ने दौड़े आकर ख़बर दी—'बारात में झगड़ा हो गया! लड़के वाले अपने घर लौटे जा रहे हैं!'

चुप हो कर दोनों उस नौकर का मुँह देखते रह गये।

तभी ज़मींदार रामनारायण घबराये हुए आये और इन्द्रदेव के हाथों में एक भारी थैली देकर बोले—'इसे सँभालिये। मैं ज़रा जनवासे तक जा रहा हूँ।'

'कितनी रक़म है इसमें?'—इन्द्रदेव ने ससुर के चिन्तातुर मुख पर नज़र जमा कर पूछा।

'कुछ याद नहीं है।'—ज़मींदार ने जल्दी-जल्दी कुरता पहिनते हुए कहा और पलक मारते बाहर हो गये।

घर भर में कुहराम-सा मचा था।

कविता बन्द हो गई थी और इन्द्रदेव किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर सब की ओर ताक रहा था।

तभी ज़मींदार की बड़ी लड़की यशोदा दौड़ी हुई आई और पति से

काँपती ज़ुबान में कहा—'तुम यहीं बैठे हो ! लड़के वाले नाराज़ होकर लौटे जा रहे हैं ! बाबूजी का क्या हाल होगा ? यहाँ बैठे क्या कर रहे हो ? जनवासे जाओ न भाग कर । लड़का तुम्हारा परिचित है । उसी को जाकर समझाओ । हे भगवान् ! कुछ करो जल्दी !'

इन्द्रदेव ने सान्त्वना के स्वर में कहा—'घबराने की क्या बात है ? मैं जा रहा हूँ । तुम अम्माँ को सँभालो । कहाँ हैं ?'

'रो रही हैं ।' यशोदा ने कहा और ख़ुद भी रोने लगी ।

इन्द्रदेव ने झटके के साथ खूँटी से अपना कुरता खींचा और पैरों में चप्पल डालता बोला—'शान्ति रक्खो । जाओ, अम्माँ को समझाओ ।'

यशोदा आँसू पोंछती माँ के पास लौट गई । इन्द्रदेव ने वह रुपयों की थैली तिवारी की गोद में रख कर कहा—'इसे आप सँभालिये । मैं वहाँ जा रहा हूँ । भंडार पर नज़र रखियेगा । मैं जल्दी ही लौट आऊँगा । आपको थोड़ा कष्ट दे रहा हूँ ।'

इतनी देर बाद तिवारी ने ओंठ खोले । बोले—'कष्ट कैसा ? यह तो मेरा फ़र्ज़ ही है । यह थैली आप बिटिया-रानी को दे जाते...'

इन्द्रदेव ने आश्चर्य से कहा—'क्यों ?'

तिवारी ने निरुत्तर हो कर सिर झुका लिया ।

घण्टा-डेढ़ घण्टा बीत गया, पर जनवासे से कोई न लौटा । जो गया सो वहीं रह गया । यशोदा माँ को बेसुध देख कर फिर इधर घबराई हुई आई । आँगन में सन्नाटा छाया था । तिवारी अकेले कुरसी पर बैठे जाने क्या सोच रहे थे ।

यशोदा उनके पास आकर करुण स्वर में बोली—'चच्चा, कुछ ख़बर तो लाओ । क्या कर रहे हैं सब ? अम्माँ बेहोश हो गई हैं । अब मैं क्या करूँ ?' और फल-फल करके उसकी आँखों में आँसू भर आये ।

तिवारी का दिल हिल गया । यशोदा के सिर पर हाथ फेर कर

बोले—'रोओ मत, मेरी लाड़ली ! लो मैं अभी ख़बर लाता हूँ ।' और वह थैली यशोदा को देने लगे।

यशोदा ने सिर हिला कर कहा—'मेरी अकल तो यों ही गुम हो रही है। तुम इस जंजाल को अपने पास ही रक्खो। तुम्हें दे गये हैं, तो तुम्हीं सँभालो। चच्चा, जल्दी लौटना। तुम भी जाकर मत बैठ रहना।'

—३—

सरगुजावाले ठाकुर रिटायर्ड कोर्ट इन्सपेक्टर थे। शुरू से ही शराब के आदी थे। सर्विस में बराबर पीते रहे और अब भी रोज़ पीते थे। घर पर शाम को ही दौर चलता था। यहाँ लड़के की बारात लेकर आये तो दिन में भी बार बार पीते रहे। नशा अपने चढ़ाव पर था। तभी साईस ने आकर ख़बर दी कि लड़की वालों ने उनकी तौहीन कर दी अभी।

साईस घोड़ियों के लिए घी माँगने गया था। उसे लड़की वालों के किसी आदमी ने जवाब दिया कि—'ख़ुद चाहे कभी घी न खाते हों। बारात लाये तो घोड़ियों के लिए घी माँग रहे हैं! टुच्चे ख़ानदान के हैं न!'

घोड़ियों के लिए घी न मिला। साईस दुखी होकर लौट आया। अपने मालिक की शान में ऐसे अल्फ़ाज सुन कर उसका कलेजा टूट गया।

कोर्ट साहब ने आँखें लाल करके कहा—'कौन वह दोग़ला है, जिसने हमारे नौकर से यह बात कही? हम अभी उसकी खाल उतार लेंगे। बुलाओ उसको! हमारे सामने आसामी को पेश किया जाय!'

रामनारायण के साले ने उस साईस को फटकारा था और उस धूर्त्त साईस को ही लक्षित करके घी का व्यंग किया था। पर नौकर ने बात बदल दी और अपने अपमान का यों बदला लिया।

तिवारी जनवासे में पहुँचे तो अजीब समाँ देखा। कुछ तम्बू उखड़ गये थे, कुछ लोगों के बिस्तर बँध गये थे और कुछ अपनी छोलदारियों में आराम से लेटे गप-शप कर रहे थे।

समधी के शामियाने के आगे कुछ भीड़ थी और कुछ भीड़ इधर थी महादेवजी के मन्दिर के पास। ये घराती लोग थे। इन्द्रदेव एक किनारे यशोदा के मामा से बात कर रहा था। तिवारी वहीं जा खड़े हुए।

मामा प्रौढ़ व्यक्ति थे और तिवारी के हमउम्र होंगे। चेहरा-मोहरा भी ऐसा ही कुछ था। बेचारे बहुत लज्जित थे और इन्द्रदेव से कह रहे थे कि 'भाई, मुझे तुम लोग कोर्ट साहब के सामने पेश कर दो न! जो कुछ सज़ा वे देंगे, मैं सह लूँगा।'

इन्द्रदेव ने कहा—'यह हरगिज़ न होगा। वे शराबी आदमी हैं और इस वक्त नशे में हैं। आपके साथ जो कहीं कुछ गड़बड़ी कर बैठे तो हम लोगों से कैसे सहा जायगा? मान लीजिये कि गाली देने लगे या हाथ चला बैठे, तो?'

मामा ने हँस कर कहा—'मैं पिट लूँगा बेटा!'

'हरगिज़ नहीं', इन्द्रदेव ने कहा—'शाम होने को आई। पर उनकी मोटी अक़्ल में इतनी-सी बात नहीं आ रही है कि नौकर झूठ बोला है। वह ख़ुद घी छिपा कर ले जाना चाहता था। कैसी बेवक़ूफ़ी की बात है! बुड्ढा अपनी ज़िद, पर अड़ा है कि 'उस आदमी को मेरे सामने पेश करो!' अजी, आप लोग चुप रहिये। अब नशा उतार पर है। ख़ुद सँभल जायेंगे कोर्ट साहब। लड़का बेचारा कितना शर्मिन्दा हो रहा है!'

दो गज़ की दूरी पर रामनारायण अपने बड़े भाई से बातें कर रहे थे और चारों ओर से सब लोग उन्हें घेरे हुए थे। सहसा उन्होंने इन्द्रदेव को पुकारा।

तिवारी तब से सब सुन रहे थे और अब नत-शिर बैठे मामा की ओर बार-बार देख रहे थे कि उनकी बग़ल से बाराती नौकर यह कहते निकले कि 'सब सामान गाड़ियों पर लादो। सरकार का हुक्म है। जल्दी करो। सूरज डूब रहा है। अभी कूच होगा।'

तिवारी ने नौकरों को उधर गाड़ियों की ओर जाते देखा और फिर नत-शिर मामा की ओर देखा और फिर उतरा मुख और निराश, भीत दृष्टि लिये ज़मींदार रामनारायण की ओर देखा। और तब जैसे चोट खाकर मामा से बोले—'ठाकुर साहब, ज़रा अपनी टोपी दे दीजिये। ज़रा मैं भी कोर्ट साहब का दर्शन कर आऊँ। नंगे-सिर नहीं जाना चाहिये।'

मामा सीधे-सादे आदमी थे। हँस कर अपनी टोपी तिवारी को दे दी। तिवारी ने सब की नज़र बचा कर वह रुपयों वाली थैली मामा की गोद में जल्दी से रख दी और हौले से कहा—'इसे सँभाले रहिये। मैं अभी आया।' और जब तक मामा कुछ कहें, तब तक कोर्ट साहब के तम्बू में घुस गये...।

इन्द्रदेव मामा के पास फिर लौट कर आया तो चेहरा उसका बहुत उदास था। मामा करुण हँसी हँसकर पूछने लगे—'क्यों, क्या हुआ?'

इन्द्रदेव ने दुखी स्वर में कहा—'मैं इसे पसन्द नहीं करता। बाबूजी के बड़े भाई कह रहे हैं कि हम अपने नौकर को कोर्ट साहब के आगे भेज दे रहे हैं। वे उसका जो कुछ चाहें, कर लें। कह देंगे, 'साहब, यही वह आदमी है।' आप बतलाइये, मामाजी, यह कोई उचित बात है? वह नौकर भी तो आख़िर आदमी है और अपनी कुछ इज़्ज़त रखता है। वह भला दूसरे का अपराध अपने सिर लेकर क्यों पिटे? यह तो साहब, सरासर पाप है।'

मामा कुछ कहने ही वाले थे कि देखा कि रामनारायण और रामनारायण के भाई दोनों कोर्ट साहब के तम्बू की ओर लपके जारहे हैं और पीछे से भीड़ भी दौड़ती चली जा रही है।

ये दोनों भी उधर ही को दौड़े...।

दो-चार आदमी ही भीतर डेरे में घुसे थे। बाक़ी भीड़ को दो बलिष्ठ नौकर पीछे ढकेल रहे थे। ये दोनों जने भी भीतर दाख़िल हो गये।

डेरे में यह दृश्य था कि मसहरी पर मसनद लगाये, नोकदार मूँछें

और लाल आँखें लिये, कोर्ट साहब बैठे थे। एक हाथ में फ़र्शी की रंगीन निगाली थी और दूसरा हाथ पैर के ऊपर था। बाईं ओर लड़की वाले स्तब्ध होकर खड़े थे और दायीं ओर बाँके तिवारी थे। मामा की काली टोपी लगाये, बाँके तिवारी ज़मीन पर मुर्ग़ा बने उकडूँ बैठे थे। चेहरे पर सारा ख़ून उतर आया था और पीछे का धड़ ऊपर को उठाये थे।

इन्द्रदेव सहम कर खड़ा रह गया।

साईस सामने हाज़िर था। कोर्ट साहब ने गम्भीर स्वर में उसे हुक्म दिया—'इसकी पीठ पर जूता मारो!'

ज़मींदार रामनारायण ने तड़प कर कहा—'ख़बरदार!' और तड़ित् वेग से समधी के आगे जाकर बोले—'आप चाहें तो मेरे सिर पर जूते मरवा सकते हैं। यह ब्राह्मण है। इसके शरीर को कोई छुयेगा तो मैं उसकी जान ले लूँगा!'

कोर्ट साहब ने हकला कर कहा—'आपका...यह...नौकर है?'

'जी नहीं', ज़मींदार ने दृढ़ता से कहा—'उसके बाप पण्डित थे गाँव के। और यह भी मास्टर था।' और उन्होंने नीचे झुककर तिवारी के हाथ खोल दिये। बाँह पकड़ कर उन्हें खड़ा किया।

तिवारी का चेहरा लाल-सुर्ख़ था और पसीना बह रहा था धारों से। ज़मींदार रामनारायण ने विह्वल होकर तिवारी का चरण-स्पर्श कर लिया और रुँधे कण्ठ से बोले—'मेरी विपत्ति बचाने के लिए तुमने अपनी 'बलि' दे दी! अब कैसे तुमसे उऋण हो पाऊँगा? तिवारी, तुमने यह क्या कर डाला?'

सहसा सब ने देखा कि कोर्ट साहब अपने पलंग से उतर रहे हैं। क्या करेंगे अब?

कोर्ट साहब आगे बढ़ आये। एक बार तिवारी का रक्तिम मुख निहारा और फिर नीचे झुक कर उनकी चरण-रज माथे से लगा ली और दोनों हाथ जोड़ कर अपराधी के स्वर में बोले—'मुझे माफ़ी दो महाराज! मैं

बड़ा पापी हूँ ।' फिर समधी की ओर मुख़ातिब होकर बोले—'आप के यहाँ अब लड़के की शादी मैं सिर्फ़ इस शर्त्त पर करूँगा कि यह हीरा आदमी आप मुझे दे दें । इन्हें मैं अपने पोतों का गुरू बनाकर रक्खूँगा । कहिये, मंज़ूर है ?'

ज़मींदार ने हँस कर तिवारी की ओर देखा ।

तिवारी ने प्रसन्न भाव से कहा—'मुझे मंज़ूर है । ख़िदमत में एक शैर अर्ज़ करता हूँ ।

अपने सर ले लिया महशर में ख़ता को उनकी,
मुझ से देखा न गया उनका परेशाँ होना !'

—o—

बच्चे

'प्रिय भाई,

कल हेड-क्लर्क से मिला था। बहुत आरज़ू-मिन्नतें करके, उसे इस बात पर राजी कर पाया कि जुलाई तक तुम्हारा ट्रान्सफ़र न हो। इसी को ग़नीमत समझो। जून में फिर देखा जायगा। सुना है कि यह हेड-क्लर्क मई से पहिले ही रिटायर्ड होने वाला है।

भाभीजी ने तोप छोड़ी या नहीं? कन्यारत्नम् या पुत्ररत्नम्?

एक नया समाचार सुनो। राजेश्वर की तो तुम्हें याद होगी। वही जो कविता करता था, हम लोग जिसे 'महाकवि' कहा करते थे। उस बेचारे को टी० बी० हो गई! क्या उसकी कल्पनायें थीं और क्या हुआ आख़िर? मास्टरी से कितनी घृणा करता था और वही स्कूल-मास्टरी अन्त में उसे मिली। दो बच्चे भी हो गये और गृहस्थी की बोझिल गाड़ी ढकेलता-ढकेलता आख़िरकार वह टी० बी० का शिकार हो गया। छुट्टी लेकर अपने चाचा के पास, तुम्हारे शहर में पहुँचा है। मुझे यहीं इलाहाबाद आकर, हरस्वरूप से यह सब मालूम हुआ है।

भाई, हो सके तो राजेश्वर का पता लगाना और उसकी कुछ सहायता करना। बहुत दर्द लग रहा है। मुझे तो सुनकर वहम-सा हो गया है। लगता है कि मुझे भी टी० बी० हो जायेगी, तुम्हें भी—सब टी० बी० से मरेंगे। सभी तो दरिद्रता के शिकार हो रहे हैं, सभी तो पिस रहे हैं। इस प्रकार कब तक जीवित रहेंगे?

× × ×

'प्रिय भाई,

तुम्हारा पत्र कल ही मिला है। हेड-क्लर्क से तुम ने इतना काम करवा लिया। दाद देता हूँ। मुझे तो वह शायद फटकार ही देता।

श्रीमतीजी ने कन्यारत्नम् अजीजनत। कल ही स्नाता हुई हैं। मेरे ऊपर यह तीसरी डिक्री और हुई।

राजेश्वर का सब हाल मुझे ज्ञात हो चुका था। शीघ्रता में तुम्हें पत्र लिखा था, इसी से कुछ प्रकट नहीं कर पाया। उसके चाचा को तो तुम भी जानते हो। पूरा खूसट है। अचानक एक दिन यहाँ बाज़ार में उस से मेरी भेंट हो गई। उसी दिन फिर राजेश्वर के पास पहुँचा। क्या कहूँ, क्या हाल था उसका! तीव्र ज्वर में जलता, घड़ी-घड़ी खाँसता, एक सूखा हुआ नर-कङ्काल मेरे सामने बैठा था। चेहरा काला, आँखें भीतर को धँसी हुईं। हँसता था, तो देख कर भय लगता था। यह बुरा हाल और चिकित्सा के नाम पर किसी साधारण-से वैद्यजी की चटनी और एक सस्ता सा नुस्खा। पैसा नहीं है। क़ीमती दवा नहीं खा सकता। जब तब मुँह से रक्त-मिला कफ निकलता है।

उस रात को सो नहीं सका। अँधेरे में सामने बैठी राजेश्वर की ठठरी खाँसती दीखती थी।

स्कूल में असिस्टेंट-सर्जन का लड़का मेरा विद्यार्थी है। दूसरे दिन उस के साथ जाकर डाक्टर से मिला। फिर शाम को राजेश्वर के पास उसे ले गया। उसी की चिकित्सा शुरू हुई फिर। तीसरे दिन से सुबह-शाम स्ट्रैप्टोमाइसीन के इञ्जेक्शन लगने लगे।

मेरी हालत तो तुम जानते ही हो। दो सौ पचपन मिलते हैं। किसी तरह गुज़र होती है। पर राजेश्वर के घर में तो दरिद्रता जैसे अट्टहास कर रही हो। छुट्टी लेकर आया है, वेतन नहीं मिलता। शायद पत्नी के जेवर बेंचकर काम चलता है। शायद ऋण ले रहा है बराबर। चाचा अमीर नहीं है, पर थोड़ी-बहुत जमा-पूँजी उस के पास अवश्य होगी। लेकिन बुड्ढा बड़ा कंजूस है। शायद आज-कल राजेश्वर के ही मत्थे खा रहा है। उसी मुहल्ले में राजेश्वर की चचेरी बहिन का घर है। वे लोग बड़े आदमी हैं। इस छोटे-से शहर में इने-गिने बड़े आदमी हैं। उसके बह-

नोई को मैं भी जानता हूँ। खूब अमीर और इज्जतदार है, हालाँकि है सींकिया जवान ही। पर ग़रीबी और रोग से घिरे निकट सम्बधी राजेश्वर की एक पैसे से भी सहायता नहीं कर सकता। कह नहीं सकता कि वह कभी राजेश्वर को देखने भी आया है या नहीं।

बहिन भी शायद पक्का दिल रखती है, नहीं तो इन नसीब के मारे लोगों पर ज़रूर दया खाती। राजेश्वर से तो तुम परिचित हो, परन्तु यदि एक बार उसकी पत्नी को देख पाते, तो अवश्य अपने को कृतार्थ समझते। उसे देख कर दर्द से कलेजा फटने लगा। यह ग़रीबी, यह विपदा, यह कार्य-भार! मुरझाई कली-सा चेहरा है, दो दर्द-भरी, आँसू-भरी आँखें हैं और ममता-मोह-भरा दिल है। राजेश्वर से मेरा परिचय पाकर, प्रथम बार जब उसने मेरी ओर हाथ जोड़े, तो जाने क्यों मेरे मन में एक तीव्र इच्छा जाग्रत हुई, कि नीचे झुक कर उस 'नारी' का चरण-रज ले लूँ। केवल चरण-रज, और कुछ नहीं। और कुछ नहीं किया जा सकता इस तपस्विनी के साथ। तब से, उसी प्रथम दिन से, बराबर यही सोचता रहा कि यदि किसी प्रकार, अपना जीवन देकर भी, विधाता को मना सकूँ, तो यही उन से कहूँ कि 'इतने निर्दयी न होओ, भगवान्! इस करुणा-मूर्त्ति पर तरस खाओ! इसका यह लाल सिंदूर अक्षुण्ण रहने दो, चाहे मेरी जान ले लो!'

डाक्टर आकर कह गया कि 'बहुत जल्दी इन्हें आप चंगा देखेंगे,' और फ़ीस देकर जब मैं डाक्टर को विदा करके लौटा तो जीने के नीचे, जहाँ ईंधन पड़ा रहता है, पहिली सीढ़ी पर मुझे राजेश्वर की पत्नी खड़ी मिली। मैं झिझक कर रुका कि उसने नीचे झुक कर, मेरे पैरों पर अपना माथा रख दिया।

सह नहीं सका। दोनों हाथों में मैंने उसका सिर पकड़ कर उठाया शीघ्रता से। किसी प्रकार अपना रुदन रोक कर कहा—'भाभी!' और कुछ नहीं कह सका। लगा कि जैसे कलेजा फटा जा रहा है।

आज यह क्या हो गया, परमात्मा! मन का सारा धैर्य खो कर, मन्त्र-मुग्ध की तरह उस घर से निकला। सामने सँकरी गली है, और फिर मोड़ है एक। उसी मोड़ पर अचानक राजेश्वर के दोनों बच्चे मिल गये। बड़ा आठ साल का है, और छोटा पाँच साल का। इन मासूम बच्चों को देख कर कितना तरस आता है! कोमल, उदास मुख लिये अक्सर बाप की खाट के पास खड़े रहते हैं और सरल, भोली आँखों से टगर-टगर पिता का कृश, क्लान्त चेहरा देखते रहते हैं चुपचाप।

बड़ा लडका मुन्ना मुझे सामने पाकर बोला —'जा रहे हैं, चाचाजी? फिर कब आयेंगे?'

मैंने कहा—'कल आऊँगा बेटा! मैं रोज़ तुम्हारे पास आया करूँगा।' और आगे बढ़ा कि मुन्ना ने मेरे पैरों पर झुक कर प्रणाम किया। और फिर छोटे रामू ने भी अपनी ज़रा-ज़रा सी अँगुलियाँ मेरे पैरों में लगा कर, दोनों हाथ माथे पर लगा लिये। हे भगवान्!

मैंने बच्चे को गोद में उठा लिया। कितना मोहक मुख है, कितना भोला! मुन्ना वहीं पैरों के पास खड़ा था। अचानक पूछ उठा—'चाचाजी, हमारे बाबूजी कब अच्छे होंगे?'

जैसे किसी ने मेरा दिल पकड़ कर मसल दिया। बच्चे की पीठ पर हाथ रख कर कहा—'तुम्हारे बाबूजी बहुत जल्दी अच्छे हो जायेंगे, मुन्ना!'...

जैसे बेहोशी में अपने घर पहुँचा। सारी राह पैरों में मानो सरसराहट होती रही। आज, अभी इन पैरों पर एक शीश गिरा है! आज, अभी इन पैरों को दो कोमल प्राणों ने अपने सुकुमार हाथों से छुआ है! इच्छा होने लगी कि इन पैरों को काट कर फेंक दूँ। ये मेरे शरीर के सब से निकृष्ट अंग, धूल-मिट्टी-सने ये पैर आज मानो बहुत भारी अपराध करके घर लौटे हैं। पापियो, तुमने कैसे सब बरदाश्त कर लिया!...

भाई, यह एक महीना पहिले की बात है। महीना भर हो चुका, मुझे

राजेश्वर के घर रोज़ आते-जाते। मैंने श्रम अवश्य किया है, आर्थिक सहायता भी की है; पर बदले में जो कुछ पाया है, वह जैसे किसी भी मूल्य से कूता नहीं जा सकता।

राजेश्वर, उसकी पत्नी, उसके दोनों बच्चे—सभी मानो मेरे लिये प्राण देना चाहते हैं। निश्चय ही, निश्चय ही भाभी जान दे देंगी प्रभात के लिये। और दोनों बच्चे चाचाजी के लिए ज़रूरत हो, तो अपनी कोमल गरदन झुका देंगे, कि ख़ुशी से काट लो। सती-साध्वी माँ की कोख से जन्मे ये बच्चे बिलकुल असाधारण जीव हैं। बड़ा मुन्ना अत्यन्त मेधावी, अत्यन्त प्रतिभाशील बालक है। छोटा रामू अभी नासमझ है, पर कितना भोला, कितना मोहक! बिलकुल देव कुमार-सा लगता है। बहुत ही प्यारा बच्चा है। कल मैं अपना कैमरा ले गया था। दोनों बच्चों को पास-पास बिठा कर फ़ोटो खींच लाया हूँ। फ़िल्म धुलने को दे दी है। फ़ोटो तैयार होने पर तुम्हारे पास एक प्रति अवश्य भेजूँगा। इन बच्चों का चित्र देख कर तुम प्रभावित हुए बिना न रहोगे।

और तुम यह पढ़ कर अवश्य प्रसन्न होओगे कि राजेश्वर की तबीयत इस एक महीने में बहुत-कुछ ठीक हो गई है। ज्वर अब बिलकुल नहीं रहता और चेहरे की रंगत भी बदल गई है।

कल डाक्टर से उसके घर पर मिला था। उसने कहा है कि 'अब आप के मित्र को कोई ख़तरा नहीं है। मैंने उनके कफ़ की परीक्षा की है, बहुत जल्दी घूमने-फिरने लगेंगे।'

मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है। भाभीजी को मैंने डाक्टर की बात सुनाई। रोने लगीं सुन कर। झर्-झर् मोती-से आँसू गिरने लगे।

मैंने कहा—'भाभी, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। ख़ुशी मनाओ। अब रोने की क्या बात है?'

भाभी ने आँचल से आँखें पोंछ कर करुण वाणी में कहा—'सोचती

हूँ कि मुझ पापिनी ने ऐसे कौन-से पुण्य किये थे जो भगवान् स्वयं प्रभात बाबू बन कर मेरा उद्धार करने आये !'

'मैं भगवान् हूँ भाभी ?'—हँस कर पूछा ।

आँखें पोंछ कर बोलीं—'तुम क्या मनुष्य हो प्रभात बाबू ? नहीं, तुम नारायण हो देवर ! नारायण इसी तरह तो रूप धर कर दुखियों की, अनाथों की, विपदा मेटने आते हैं ।'

सो आज-कल 'नारायण' हो गया हूँ । मौक़ा अच्छा है, तुम्हारा कोई काम हो नारायण के करने लायक़ तो लिखना ।

—२—

नन्दिनी ने रसोई-घर से पुकार कर कहा—'आज पढ़े-लिखेगा नहीं ? कब तक खेलेगा तू ?'

मुन्ना भीतर के कमरे में था । वहीं से चिल्ला कर विनय के स्वर में बोला—'ज़रा देर और जीजी !' फिर छोटे भाई से हौले से कहा—'इधर को मुँह करो । लो, शीशे में देखते जाओ ।'

तभी खट्-से किसी ने आँगन में जूतों की आवाज़ की ।

'कौन ?'—नन्दिनी ने बिना देखे पूछा ।

'नारायण !'—आने वाले ने गम्भीरता से कहा ।

तब हँसती, लजाती नन्दिनी बाहर निकल आई रसोई-घर से ।

प्रभात ने नमस्ते करके पूछा—'बच्चे कहाँ हैं ?'

'भीतर घुसे हुए हैं । जाने क्या कर रहे हैं तब से । मुन्ना ! अरे बाहर आ रे ! देख, चाचाजी आये हैं तेरे ।'

पलक मारते बड़ा लड़का बाहर दौड़ा आया । जल्दी से चाचाजी के चरण छुये, फिर एक हाथ ऊपर करके अनुनय-भरे स्वर में बोला—'चाचा जी, ज़रा अपना हैट दे दीजिए !'

चाचाजी ने अपना सोला हैट उतार दिया तो माँ ने पूछा—'क्या करेगा हैट का ?'

पर मुन्ना ने न सुना। बहुत प्रसन्न होकर भीतर को घुसता-घुसता बोला—'चाचाजी, तुम जरा बाबू जी के पास चलकर बैठो। हम अभी आते हैं ···।'

राजेश्वर दीवार से तकिया लगा कर बैठा जाने क्या लिख रहा था। प्रभात ने उसे आकर चौंका दिया, फिर आगे को झुक कर वह लिखना देख कर ख़ूब हँसा और वहीं खाट के किनारे बैठ कर बोला हँसता-हँसता—'यह छिप-छिपकर जुआ खेलते हो? अभी भाभी से कह दूँगा!'

राजेश्वर ने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' को बन्द करके मुसकरा कर कहा—'मन बहला रहा था ज़रा।'

नन्दिनी ने सामने आकर पान की तश्तरी बढ़ाई। प्रभात ने भवें चढ़ा कर कहा—'सिर्फ़ पान! न मीठा, न नमकीन, सिर्फ़ पान! इस प्रकार नारायण का अपमान न करो देवी!'

नन्दिनी ने किसी प्रकार हँसी रोक कर कहा—'नारायण को सब्र करना चाहिए। हलुआ बना रही हूँ।'

'तथास्तु!' प्रभात ने गम्भीरता से कहा।

तभी पीछे से एक तेज आवाज आई—'जिन्दाबाद!'

तीनों व्यक्तियों ने चौंक कर उधर देखा। दोनों बच्चे भेष धारण किये खड़े थे।

'कम्यूनिज़्म ज़िन्दाबाद!'—बड़े ने हवा में मुट्ठी घुमा कर ज़ोर से कहा।

'इन्कलाब ज़िन्दाबाद!'—छोटे ने दाहिना हाथ ऊपर करके पतली आवाज़ में कहा।

फिर दोनों साथ-साथ क़दम रखते सामने आ खड़े हुए गम्भीर भाव से और चाचाजी को एक 'सेल्यूट' दे कर बड़े ने अपना परिचय दिया—'मोशिये लेनिन!'

वह छोटी-सी दाढ़ी लगाये था। सिर पर माँ की बुनी टोपी थी रूसियों की-सी।

फिर छोटा आगे बढ़ा। बायें हाथ से चाचाजी को सलाम करके बोला —'सरदार भगत सिंह !'

वह मूँछें लगाये था नुकीली और सिर पर बड़ा-सा चाचाजी का सोला हैट पहिने था।

एक क्षण गम्भीरता रही। फिर सब एक साथ हँसे।

माँ ने हँसते-हँसते कहा—'यही स्वाँग भर रहा था तब से ?'

चाचाजी ने 'लेनिन' से कहा—'दाढ़ी देखें तुम्हारी।'

लेनिन ने दाढ़ी उतार कर चाचाजी के हाथ में दे दी और भारी प्रसन्नता से बोला—'दो आने में कल ख़रीदी है हमने।'

तब भगतसिंह ने भी मूँछें उतार दीं और चाचाजी से कहा—'देखो, कितनी बढ़िया मूँछें हैं !'

चाचाजी ने बड़े से कहा—'अच्छा, हम तुम्हारे लिए एक चीज़ लाये हैं। लेकिन पहिले यह बतलाओ कि 'कम्यूनिज़्म' के मानी क्या हैं, तब देंगे।'

मुन्ना ने प्रसन्न भाव से कहा—'कम्यूनिज्म के मानी हैं—ग़रीबों का राज।'

'शाबाश !'—बच्चे से कहा फिर बाप की ओर देख कर हँस कर कहा—'तुमने रटा दिया होगा।'

राजेश्वर ने हँस कर कहा—'बिलकुल ग़लत ख़्याल है तुम्हारा। मैंने उसे कुछ नहीं रटाया है।'

मुन्ना ने फ़ौरन कहा—'मुझे जीजी ने बतलाया है।'

प्रभात ने सिर हिला कर कहा—'कामरेड !'

भाभी ने हँसकर पूछा—'कामरेड माने ?'

'कामरेड माने भाभी !'—और जेब से एक पैकेट निकाल कर बच्चों को देते कहा—'लो, तुम्हारी तसवीर बन गई।'

बेसब्री से बच्चों ने फ़ोटो निकाला पैकेट से। क्षण भर उसे ध्यान से देखते रहे और फिर उछल पड़े ख़ुशी से।

फिर क्रमशः बाप ने और माँ ने भी वह फोटो देखा। वे भी प्रसन्न हुए। वे भी मुसकराये।

तब प्रभात ने जैसे याद करके पूछा—'सीरप मँगवा लिया वह ?'

'हाँ, मँगवा लिया। डाक्टर तो कल आये नहीं।'

'डाक्टर लखनऊ गये हैं, परसों तक लौटेंगे। मेरा भी आज रात को कूच है।'

'कहाँ को ?'—भाभी ने चौंककर पूछा।

'घर को,' प्रभात ने कहा—'बाबूजी की चिट्ठी आई है। दिवाली वहीं करनी होगी सब को।'

बच्चे अभी तक बराबर अपनी तसवीर देख रहे थे। सहसा मुन्ना ने कहा—'जीजी, हम बुआजी के घर दिखा आयें इसे ?' और बिना माँ के उत्तर की प्रतीक्षा किये छोटे भाई को खींचता भागा बुआजी के घर की ओर।

× × ×

लम्बी चौड़ी तिदरी में बीच की बड़ी आलमारी शृङ्गार के सामान से सजी थी। दोनों बच्चे भागते-हाँफते फ़ोटो लिये आ पहुँचे। उस समय लल्ला वहीं आलमारी के सामने खड़ा, बड़े-से शीशे में अपना मुँह देखता बाल काढ़ रहा था। लल्ला बुआजी का एकमात्र लड़का है। ग्यारहवीं में पढ़ा है, पर देखने में और भी बड़ा लगता है। लम्बा-चौड़ा, माँ की तरह का डील-डौल है और माँ की तरह ही काला रङ्ग है। बचपन में उसके चेचक निकली थी। चेहरा खुतरा हुआ-सा है। रूप-श्री तो जैसे उसे छू नहीं गई है।

इन्होंने पास आकर एक साथ कहा—'देखो लल्ला !'

'यह हम बैठे हैं।'

'यह हम हैं।'

'चाचाजी ने खींची है।'

'कितनी बढ़िया है !'

दोनों कहते गये ख़ुशी से। तब लल्ला ने कंधा आलमारी के बीच छोड़ कर कहा—देखो।'

'देखो!'

'अच्छी है न?'

'यह हम हैं।'

'यह हम हैं।'

पर लल्ला न बोला। ध्यान से उस तसवीर को देखता, गुमसुम खड़ा था कि राजरानी आ पहुँचीं। लल्ला ने हँस कर माँ से कहा—देखो अम्माँ, इनकी तसवीर!'

अम्माँ ने पलङ्ग पर बैठ कर तसवीर अपनी गोदी में रख ली और ध्यानस्थ होकर देखने लगीं तो लल्ला ने हँस कर कहा—'कैसे कुलाउङ्लू से बैठे हैं दोनों!'

पर अम्माँ ने कहा—'तुम भी खिंचवा लो अपनी तसवीर।'

'इनकी तो मुफ़्त खिंची है, बिना पैसे की।'

'तुम रुपये देकर खिंचवा आना फ़ोटोग्राफ़र के यहाँ,' हँस कर बोलीं—'पाँच रुपये ले जाना। अपना नया पतलून और नया कोट पहिन कर यों कुरसी पर बैठ कर खिंचवाना!' राजरानी ने तनिक तिरछी होकर हँस कर बतलाया।

लल्ला ने ख़ुश होकर कहा—'ये देखो, दोनों कुर्ते ही पहिने बैठे हैं। और अम्माँ, रामू तो नंगे पैर ही बैठा है।'

'तुम अपना बूट पहिन कर खिंचवाना।'

ये दोनों चुप खड़े थे। बुआजी और लल्ला की बातों के बीच एक शब्द न बोल पाये। उदास हो गये थे और चुप खड़े थे दोनों कि आँगन के बीच से सुरेश ने पुकार कर कहा—'मुन्ना! रामू! यहाँ आओ। गेंद खेलें।'

सुरेश राजरानी की विधवा जिठानी का लड़का है। मुन्ना से सिर्फ़

सात महीने बड़ा है। खुश-खुश बोला—'तुम उधर खड़े हो जाओ। रामू तुम इधर। और हम यहाँ रहेंगे। लो मुन्ना, फेंको गेंद।'

गेंद इधर से उधर और उधर से इधर घूमती फिरने लगी। तीनों हँसते जाते और गेंद उछालते जाते।

सहसा लल्ला तीनों के बीच आ खड़ा हुआ और सुरेश से बोला—'इधर लाओ गेंद।'

सुरेश ने गेंद मुन्ना की ओर फेंक दी और चिल्लाकर बोला—'देना मत!'

पर लल्ला ने आगे बढ़ कर मुन्ना का हाथ दबोच लिया फिर एक झटके के साथ उससे गेंद छीन कर किनारे पड़ी कुरसी पर जा बैठा।

तीनों खिलाड़ी क्षण भर जहाँ के तहाँ खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे लल्ला के पास सरक आये।

रामू ने याद करके कहा—'आज हम भगतसिंह बने थे, मूँछें लगा कर।'

लल्ला ने हँस कर कहा—'इसी भगतसिंह की तरह?' साफ़ा भी बाँधा था इसी की तरह? नौकर बने थे तुम?'

राजरानी के नौकर का नाम भी भगतसिंह है। उसके बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। साफ़ा बाँधता है सिर पर।

रामू ने हाथ हिलाकर कहा—'नहीं-नहीं, हैट लगाया था चाचाजी का। यह भगतसिंह नहीं, दूसरे।'

मुन्ना ने कहा—'सरदार भगत सिंह, जिन्होंने अँग्रेजों को मारा था, जिनको फाँसी हुई थी।'

लल्ला ने गम्भीरता से कहा—'सुल्ताना डाकू की तरह? उसे भी तो फाँसी हुई थी।'

मुन्ना ने सुल्ताना का नाम नहीं सुना था। रुक कर कहा—'हम

लेनिन बने थे, दाढ़ी लगा कर, ऐसे!' फिर हाथ से दाढ़ी की शकल बनाकर कहा—'यों!'

लल्ला ने पूछा—'लेनिन कौन?'

'रूस के नेता, जैसे हमारे गाँधी जी थे। उसने सब अमीरों को ख़तम कर दिया, राजा को भी। रूस में तो अब ग़रीबों का राज है।'

'वहाँ सब ग़रीब हैं?'—लल्ला ने पूछा।

मुन्ना ने कहा—'यहाँ भी ग़रीबों का राज हो जायेगा। अख़बार में लिखा था। एक भी अमीर यहाँ न रहेगा। अमीरों को ग़रीब लोग मार डालेंगे।'

लल्ला ने मुँह टेढ़ा करके कहा—'क्या खाके मार डालेंगे! तुम को कुछ मालूम भी है? हमारे बाबूजी के पास बन्दूक भी है और तमंचा भी है। कोई बोलगा तो फ़ौरन गोली से उड़ा देंगे साले को। अमीरों को भला कोई मार सकता है?'

लल्ला समझा रहा था और तीनों छोटे लड़के पलक रोके सुन रहे थे कि बाहर वाले दालान में एक आवाज़ सुनाई दी—'तुम साले, तब से कहाँ थे?'

सुन कर लल्ला ने घबरा कर कहा—'बाबूजी आ गये। हटो, भागो!'

ये दोनों भी डरे। दालान में बाबूजी की आवाज सुनाई दे रही थी। नौकर को फटकार रहे थे। बायीं ओर एक छोटा दरवाज़ा सड़क की ओर और है। मुन्ना ने रामू को इशारा किया और दबे-पाँव दोनों निकल गये उसी दरवाज़े से।

भगवानदीन जी झूमते हुए, आँगन में पहुँचे तो वहाँ सन्नाटा छाया था। उनके क्रोध से सब डरते थे। दिमाग़ चढ़ा हुआ है। जो कहीं किसी पर बिगड़ पड़े तो फिर समझो कि उसकी ख़ैर नहीं।

पम्प शू आवाज़ करके उल्टा जा गिरा। नौकर तड़ित्‌वेग से पैरों के पास खड़ाऊँ रख गया।

'लल्ला !'—एक कर्कश ध्वनि हुई।

'जी।'—लल्ला ने धीरे से कहा।

'मास्टर आया था आज ?'

'नहीं, आज भी नहीं आया।'

राजरानी ने गुसलखाने की किवाड़ पर पति की धोती और तौलिया रखते-रखते कहा—'महीने में पन्द्रह दिन नागा, पन्द्रह दिन पढ़ाई !'

पति ने अपनी छोटी-सी छाती पर हाथ फिरा कर कहा—'अब इस साले मास्टर के रुपये काटो। यों नहीं मानने का। दुनिया किस क़दर हरामख़ोर हो गई है !'

बड़ी तिदरी में दोनो पति-पत्नी निकट हुए तो राजरानी ने धीरे से कहा—'राजू की बहू चाहती है कि उसका लड़का भी हमारे लड़कों के साथ मास्टर से पढ़ लिया करे।'

'पढ़े न ! ट्यूशन के रुपये दे मास्टर को तो पढ़े।'

'अजी हाँ, रुपये तो बहुत धरे हैं उनके पास ! घर में भूनी भाँग नहीं, मास्टर को रुपये देंगे ! यों ही, बिना पैसे के चाहती है।'

भगवानदीन जी ने कहा—'तो पढ़ने दो ! तुम्हारा क्या हर्ज हो जायगा ? तुम्हारा भी दिल बहुत छोटा है। एक ग़रीब आदमी का लड़का तुम्हारे लड़के के साथ अगर चार अक्षर सीखता है तो क्या बुराई है इसमें ?'

राजरानी ने तुनक कर कहा—'मैंने कब मना किया था ? पढ़ने दो !'

तसवीर वह तब से खाट पर ही पड़ी थी। पति की नज़र पड़ी तो फ़ौरन उठा ली और आँखों के आगे करके बोले—'किसकी फ़ोटो है यह ?'

राजरानी ने उसी भाव से कहा—'उन्हीं दोनों लौंडों की है। और किसकी है ?'

भगवानदीन जी ज़रा देर तक उस तसवीर को नज़र भर कर देखते

रहे। फिर हाथ को ज़रा दूर करके, दूर से दोनों लड़कों की वह सुन्दर छवि देख कर सिर हिलाकर बोले—'साले हैं बड़े ख़ूबसूरत! बिलकुल बड़े आदमियों के लड़के मालूम पड़ते हैं। वाह, ब्यूटिफ़ुल!'

राजरानी पूजा का आसन बिछा रही थीं। उन्होंने कुछ न कहा। पति ने तसवीर सामने ताख़ पर रख दी और उसी की ओर निहारते-निहारते बोले—'एक ये बच्चे हैं, और एक तुमने पैदा किया है! साला बिलकुल चमार लगता है देखने में!'

राजरानी ने कुढ़कर कुछ कहना चाहा, पर चुप रह गईं। पति झूमते हुए, शृंगार वाली आलमारी के पास आ खड़े हुए। शीशे में अपना मुँह देखा। देखते रहे, देखते रहे। फिर धीरे से बोले—'क्या साला ज़रा-सा शरीर दिया है भगवान् ने!'

तभी नौकर ने किवाड़ों के पास झुक कर कहा—'सरकार, दो दिन की छुट्टी मिल जाती तो दिवाली पर गाँव हो आता।'

'तुम साले, इस तरह क्यों गिड़गिड़ाते हो? शेर घर के नौकर हो, शेरों की तरह रहो। समझे?'

'जी सरकार!'

'जाओ, ज़रूर जाओ। दिवाली अपनी माँ के पास जाकर मनाओ। हमारी माँ ज़िन्दा थी तो दिवाली में हमें अपने से अलग नहीं रहने देती थी। समझे?'

'जी सरकार!

'माँ मर गईं तो फिर ज़िन्दगी साली ऐसी बेरस हो गई कि क्या कहें। तुम साले, बहुत भाग्यवान् हो, जो तुम्हारी माँ ज़िन्दा है। समझे?'

'जी सरकार!'

शायद और कुछ कहते नौकर साले से कि राजरानी ने टोक कर कहा—'आज लल्ला के लिए कपड़ा मँगवाना है। दिवाली पर उसे नये कपड़े चाहिये। रुपये दिये जाना।'

नौकर चुपके से सरक गया। भगवानदीन जी ने अपनी छोटी-छोटी मूँछें उमेठ कर कहा—'जरूर-जरूर ! हैं कहाँ लल्ला साले ? लल्ला !'

'जी !'—लल्ला ने दौड़े आकर कहा।

पिता ने मूँछें उमेठते हुए कहा—'बोलो, क्या-क्या कपड़े चाहिये तुम्हें ? बोलो जल्दी !'

लल्ला ने कहा—'कोट, पतलून, कमीजें, पायजामे, जूता—'

बाप ने सिर हिलाकर कहा—'तुम तो साले पूरी लिस्ट ही बनाये बैठे हो। कोट, पतलून, कमीज, जूता ! कितने जूते ? बोलो जल्दी !'

लल्ला ने हँस कर मुँह फिरा लिया तो बाप ने आगे बढ़ कर कहा—'अबे बोल ! कितने जूते ?' और हँसते गये कहते-कहते कि आगे को नज़र गई तो उसी प्रसन्नताभरे स्वर में बोले—'कम ऑन, कम ऑन, मिस्टर मुन्ना !'

मुन्ना ने धीमे क़दमों से पास आकर फूफाजी के चरण छुये, तो फूफाजी ने अपने हाथ से उसकी पीठ ठोंक कर कहा—'जीते रहो !'

मुन्ना शरमा कर लल्ला से बोला—'हमारी तसवीर...'

लल्ला खड़ा हँस रहा था। उसने ध्यान न दिया।

पर फूफाजी ने दो लम्बे डग रख कर तसवीर उठा ली और उसके सामने करके बोले—'लीजिये हुजूर !'

तभी राजरानी ने भीतर से चिल्लाकर कहा—'आज क्या नहाना-धोना नहीं है ? बच्चे बन गये हैं !'

—४—

यहाँ भी वही चर्चा हो रही थी। मुन्ना घर लौटा तो माँ को कहते पाया कि 'दिवाली पर बच्चों के कपड़ों का क्या होगा ?'

मुन्ना ने सुन पाकर कहा—'जीजी, मेरे पास तो सब कपड़े हैं। कोट बिलकुल साबित है। रामू को नया कोट बनवा दो, नीले रंग का। क्यों जीजी, बनवाओगी ?'

जीजी ने कुछ उत्तर न दिया।

राजेश्वर ने धीरे से कहा—'प्रभात भी चला गया, नहीं तो उसी से कुछ रुपये—'

पत्नी ने उदास स्वर में कहा—'उन्होंने हमारे लिए जाने कितना ख़र्च कर दिया। यहाँ रहते तो भी क्या और माँगना चाहिये था?'

राजेश्वर ने हँस कर कहा—'पर रुपये तो चाहिये ही। कपड़े न सही, दवा सही। कल यह शीशी ख़ाली हो जायेगी। परसों से क्या खाऊँगा? डाक्टर की फ़ीस तो ख़ैर, उधार चढ़ ही रही है।'

नन्दिनी ने कहा—'दवा क्यों बंद होगी? कुछ न कुछ इन्तज़ाम तो होगा ही। चिन्ता न करो।' फिर मुन्ना की ओर देख कर बोली—'अब किताब लो। कुछ पढ़ो-लिखो।'

'सवाल निकालूँगा,' लड़का अपनी स्लेट खोजता-खोजता बोला—'स्लेट कहाँ गई मेरी?'

रामू ने दूसरे कमरे से चिल्लाकर कहा—'मेरे पास है दादा, हाथी बना रहा हूँ। देखो आकर।'

'यह हाथी है?'—मुन्ना ने भाई के पास आकर हँस कर कहा—'यह तो गधा बनाया है तूने। ला भैया, स्लेट मुझे दे। जल्दी दे, नहीं तो जीजी मारेगी।'

तभी दरवाज़े पर खड़े छेदी ने ज़ोर से आवाज़ दी—'भाभी, अख़बार!'

मुहल्ले में न्यूज़-एजेण्ट रहता है। उसका लड़का दोपहर तक अख़बार बाँट कर लौटता है। जिस दिन कोई क़ापी बच रहती है,तो आकर भाई साहब को पढ़ने के लिए दे जाता है। राजेश्वर को अख़बार पढ़ने की लत है।

राजेश्वर ने ऊपर की मोटी ख़बर पढ़कर कहा—'कम्यूनिस्ट बढ़ रहे हैं। अब क्या जीतेंगे ये पूँजीवादी राष्ट्र!'

'भगवान् करे, सारे संसार में कम्यूनिज़्म फैल जाय। ग़रीब लोग साँस तो ले सकेंगे!'

'कहीं और चाहे फैले या न फैले, हमारे देश में तो एक दिन कम्यूनिज़्म फैल कर रहेगा।'

नन्दिनी ने एक साँस खींच कर मानो अपने से कहा—'कब फैलेगा कम्यूनिज़्म ?'

तभी मुन्ना सामने आ खड़ा हुआ। माँ के आगे स्लेट रख कर दुखी स्वर में बोला—'यह सवाल देख।'

'क्या है ? पढ़।'

मुन्ना ने पढ़ा—'यदि किसी काम के २/३ को एक आदमी १२ दिन में पूरा करता है—'

'क्या जवाब आया तुम्हारा ?'

'१३ सही १/२ दिन, यह जवाब आता है।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? उत्तरमाला में लिखा है, १५ सही १/२। मैं तीन-चार बार कर चुका। वही १३ दिन आता है।'

नन्दिनी ने एक बार स्वय वह सवाल किया। वही मुन्ना वाला उत्तर आया। फिर उत्तरमाला को खोलकर देखा, फिर अपना निकाला हुआ सवाल देखा ध्यान से। अन्त में हँस कर कहा—'जाओ, तुम्हारा उत्तर ही ठीक है। यह किताब का उत्तर ग़लत है। जाओ, आगे निकालो।'

लड़का वहाँ से हट गया, तो पति की ओर देखकर हँसकर बोली—'तीन दिन में चार ग़लतियाँ निकाल चुका इस किताब की। वह हमेशा सवाल ठीक हल करता है।'

राजेश्वर ने अख़बार से नज़र न हटाई।

नन्दिनी ने फिर कहा—'ये किताबें लिखने वाले लेखक, गणित के प्रोफ़ेसर होकर इस तरह की ग़लतियाँ क्यों होने देते हैं अपनी किताबों में ?'

राजेश्वर ने अख़बार का पन्ना उलट कर कहा—'उन्हीं से जाकर पूछो। मैं तो गणित का प्रोफ़ेसर नहीं हूँ।'

नन्दिनी ने चौंक कर कहा—'अरे, दवा तो खा लो। कितनी देर हो गई !'

'लाओ।'—राजेश्वर ने पढ़ते-पढ़ते कहा।

तभी छोटे रामू ने बाप की गोदी में घुस कर पूछा—'बाबूजी, दही कैसे बनता है ?'

—५—

दिवाली पर कोई क़र्ज़ नहीं देता। बड़ी कठिनाई से कुछ रुपये उधार मिल पाये। पड़ोसिन ने दिलवा दिये किसी से। पर बच्चों के लिए नये कपड़े न बन सके। रामू के लिए मुन्ना ने नीले रंग का कोट बनवाने को कहा था। बीस रुपये हों तो नीला कोट बने। राजेश्वर की एक पुरानी पतलून पड़ी थी, जिसके किनारे कीड़ों ने खा लिये थे। नन्दिनी ने उसे सँभाल कर उधेड़ डाला, फिर लम्बे-लम्बे टुकड़े साफ़ कर लिये। गली के उस पार एक गया-बीता बुड्ढा मुसलमान दर्ज़ी बैठता था। वह राजी हो गया। उस पुराने कपड़े को छाँट-छूँट कर रामू का कोट बना दिया बुड्ढे ने। ढाई रुपये लिये और अस्तर और बटन देने पड़े ऊपर से।

दिवाली के दिन रामू उसे पहिन कर बाज़ार गया तो बहुत ख़ुश था। बार-बार हाथों से उस कोट को झाड़ लेता था कि कहीं धूल न लग गई हो। मुन्ना ने वही पुराना कोट पहिन कर दिवाली की।...

दिवाली किसी प्रकार हो गई। तीसरे दिन भैया-दूज थी। नन्दिनी ने सुबह से लग कर सारा आँगन पानी से धोया, फिर सामने वाली तिदर गोबर से लीपी, फिर लक्ष्मीजी के आगे चौक पूरा बड़ी सुघराई से। फिर

जल्दी से बच्चों को नहलाया-धुलाया, फिर खुद भी बाल धोकर नहाई। ननद जी राजरानी आज अपने राजू भैया को टीका करने आयेंगी। टीका लगायेंगी भैया के माथे पर और यहीं जीमेंगी।

नन्दिनी ने फुर्ती से हाथ चलाये। तीन शाक तैयार किये, रायता बनाया, फिर हलुआ भूना सूजी का। राजेश्वर के लिए खीर बनाई साबूदाने की और फिर धोती से मुँह का पसीना पोंछती, रसोईघर से उठ आई।

राजेश्वर अधलेटा छोटे बच्चे से बातें कर रहा था।

'लखनऊ को छोटी लाइन जाती है कि बड़ी?'

'छोटी।'

'अच्छा बाबूजी, हवाई जहाज तेज़ चलता है कि मोटर कि ताँगा?'

नन्दिनी खड़ी सुन रही थी। हँसकर पूछा—'क्या बजा है?'

राजेश्वर ने घड़ी देख कर कहा—'बारह बजने में दस मिनिट।'

'बारह बज रहे हैं,'—नन्दिनी ने अचरज और दुःख से कहा—"बीबीजी अभी तक नहीं आईं। भूखी-प्यासी बैठी होंगी। बड़ी देर हो गई मुझे। मुन्ना, जा तो बेटा, अपनी बुआजी को बुला ला। जा, टीका करेंगी तुम लोगों का। देखो तो, आज बच्चे भी तो भूखे फिर रहे हैं। तुम भी भूखे बैठे हो।'

राजेश्वर ने हँसकर कहा—'टीका होने से पहिले ही खा-पीकर बैठ जाता? जिज्जी क्या कहतीं?'

नन्दिनी ने शीघ्रता से मुन्ना को राजरानी के घर दौड़ाया तो छोटा रामू भी नहीं रुका। वह भी अपने दादा के पीछे दौड़ा गया।...

राजरानी के एक ममेरे भाई थे। वकालत करते थे और काफी कमाया था। सिविल लाइन्स में कोठी बनवाई थी। उसी कोठी में रहते थे बड़े आदमियों के बीच जहाँ वैभव और ऐश्वर्य दिन-रात चमकता था।

राजरानी उन्हीं वकील दद्दा की दूज करके लौटी थीं। दस रुपये की मिठाई ले गई थीं सजा कर। वकील दद्दा ने पचीस रुपये दिये टीका कराई और खाना भी अपने साथ बैठाकर खिलाया। बहुत ज़्यादा खा लिया था शायद, सो घर लौटकर पलङ्ग पर जा लेटी थीं और नयन मूँद लिये थे घड़ी भर के लिए।

दोनों बच्चे आँगन के बीच खड़े थे कि बुआजी को अपने घर ले चलें, पर बुआजी न दीखती थीं। बड़ी बुआजी से सब कह दिया था और प्रतीक्षा में खड़े थे कि अपनी बुआजी कहाँ हैं।

विधवा जिठानी ने भीतर आकर राजरानी को लेटे देखा, तो अचरज से कहा—'छोटी बहू, राजू का टीका करने नहीं गईं तुम? बाहर तुम्हारे दोनों भतीजे खड़े हैं। जाओ भाई!'

राजरानी किसी प्रकार उठीं। हँस कर जिठानी की ओर देखा और बोलीं—'हम तो खा-पी भी चुके। अब जायँ टीका करने को?'

जिठानी ने सोच कर कहा—'चली जाओ। वह बीमार आदमी तुम्हारे आसरे सबेरे से भूखा बैठा है। तुम्हें उस की याद तक न रही!'

राजरानी ने तनिक लज्जित होकर कहा—'क्या बतलाऊँ, भूल गई। लो, जा रही हूँ।'

लल्ला छत पर पतङ्ग उड़ा रहा था। अभी-अभी उसकी पतङ्ग कटी थी और नीचे से दूसरी पतङ्ग लेने आया था। इन्हें यहाँ यों उदास खड़ा देखा तो ठिठक कर बोला—'क्यों आये हो?'

'बुआजी को लेने आये हैं।'—बड़े ने कहा।

'बुआजी को अपने घर ले जायेंगे।'—छोटे ने कहा।

लल्ला की नज़र रामू के कोट पर गई तो पास चला आया। हाथ से कोट का कपड़ा छू कर देखा।

रामू बोला—'अभी नया बनवाया है हमने।'

लल्ला ने झटका देकर कोट का कपड़ा छोड़ दिया, फिर मुँह सिकोड़ कर बोला—'चल बे! यह नया है?'

मुन्ना ने धीरे से कहा—'बाबूजी की पतलून में से बना है।'

लल्ला ने दौड़े जाकर खूँटी पर से अपना नया कोट उतार लिया, फिर इनके पास भागे आकर कहा—'यह देखो हमारा कोट!'

दोनों लड़के मूक होकर क्षण भर उस बढ़िया कोट को देखते रहे। लल्ला ने कहा—'मालूम है, कितने रुपये लगे हैं इसमें?'

लड़के कुछ न बोले। लल्ला ने हाथ उठा कर, पाँचों अँगुलियाँ फैला कर कहा—'पचास! समझे? पचास रुपये का कोट है यह!'

तब तक सुरेश भी ऊपर से उतर आया। लल्ला अपना कोट भीतर टाँगने गया तो सुरेश ने मुन्ना से धीरे से पूछा—'तुमने दिवाली पर जुआ खेला?'

'नहीं तो।'

'हम ने खेला,' हँसकर बोला—'एक रुपया हार गये। थोड़ी देर खेले थे। लल्ला तो आधी-रात तक खेले। लल्ला ने चार रुपये जीते। उन्हीं रुपयों की तो पतगें लाये हैं और माँझा लाये हैं ढेर-सा। और एक रुपये की चाट खाई थी कल।'

बुआजी चादर ओढ़ती-ओढ़ती आ पहुँचीं और लड़कों से कहा—'चलो रे, चलो!'

—६—

यहाँ आकर याद आया तो हँस कर बोलीं—'लो, मीठा तो भूल ही आये!' भगतसिंह साथ आया था। जल्दी से अंटी से एक रुपिया निकाल कर उसके आगे फेंक कर कहा—'फुर्ती से जाकर इमरती ले आ इस रुपये की।'

उधर नन्दिनी ने चूल्हे पर कढ़ाई रक्खी और शीघ्रता से पूरियाँ निकालने लगी गरम-गरम।...

तभी भगतसिंह ने दौड़ते आकर कहा—'चाची, जल्दी चलो। लल्ला जीने से गिर पड़े।'

—७—

शहर से नौ मील की दूरी पर गाँव था, जहाँ चाचाजी की पचास बीघा खेती थी। आधे-साझे पर खेती करवाते थे और बीच-बीच में गाँव जाकर देख-भाल करते थे खेतों की। ख़रीफ की नराई हो रही थी और ईख में पानी लग रहा था कि यहाँ से लल्ला के गिरने की ख़बर पहुँची। सब काम जहाँ का तहाँ छोड़कर चाचाजी दौड़े आये। लखनऊ में भगवान-दीन जी की बहिन ब्याही थी। वहाँ भी ख़बर पहुँची, और बहिन-बहनोई भागे आये लल्ला को देखने।

तीन बार डाक्टर आया। चार बार मुहल्ले के वैद्य जी आकर देख गये।

ऊपर की सीढ़ी से, पतंग उड़ाते-उड़ाते पैर फिसल गया था लल्ला का। चोट बहुत मामूली थी। पीठ पर थोड़ी खरोंच आ गई थी और कुहनी छिल गई थी बाये हाथ की।

माँ ने दो दिन खाट पर ही खाना खिलाया और दस बार थर्मामीटर लगाकर टेम्प्रेचर देखा। गंगाजी का प्रसाद बोला गया और भगवान् की कीर्त्तन-कथा मानी गई।

ऐसे में पढ़ना कैसे हो सकता था? पाँच दिन के लिए मास्टर का आना रोक दिया गया...।

छठे दिन लल्ला ने मास्टर साहब के सामने किताब खोली तो एक किनारे मुन्ना को भी वही पेज खोले बैठे देखा।...

चार दिन में लल्ला की हुलिया तङ्ग हो गई, इस मुन्ना के कारण। मास्टर कुछ लल्ला से पूछते हैं तो लल्ला जवाब नहीं दे पाता। तब मास्टर इस मुन्ना की ओर देखते हैं और यह फ़ौरन जवाब देता है। जाने क्या बात हो गई है! अकेला पढ़ता था तब तो सब याद रहता था उसे।

अध्याय ६, उदाहरणमाला ३ के शुरू वाले पाँच सवाल मास्टर ने घर पर करने को दिये थे। दूसरे दिन कापियाँ देखीं तो लल्ला ने चार सवाल ग़लत किये थे। सिर्फ़ एक सही था। फिर मुन्ना की कापी देखी तो उसके पाँचों उत्तर सही निकले।

लल्ला ने कुढ़कर कहा—'मास्टर साहब, यह अपनी माँ से पूछ-पूछ कर निकाल लाता है सवाल।'

'ऐं मुन्ना?'

'जी नहीं। मैंने तो अपने आप किये हैं।'

'मास्टर साहब, यह झूठ बोलता है।'

मास्टर साहब ने कहा—'अच्छा लो, अभी झूठ-सच का पता लग जायेगा। लो लिखो दोनों...।'

दो सवाल बोले और तत्काल कराये दोनों से और कापियाँ देखीं दोनों की तो लल्ला ने सिर झुका लिया।...

शाम को सुरेश ने अपनी माँ और चाची के आगे लल्ला की खिल्ली उड़ाई कि इनसे तीन साल छोटा है मुन्ना। इनका एक सवाल सही नहीं था और उसके सब सही थे।'

राजरानी ने सुनकर कहा—'राजू का लौंडा तो बलैया पैदा हुआ है। और हमारे ये हैं गोबर गणेश!'

लल्ला ने चिल्ला कर कहा—'मैं काहे को हूँ गोबर गणेश? मुन्ना ने क्या अपने आप सवाल किये थे? वह तो अपनी माँ से पूछ-पूछ कर निकाल लाता है। तुम भी कभी बताती हो मुझे कोई सवाल? उसकी तो माँ पढ़ी-लिखी है। तुम को भी कुछ आता है?'

राजरानी ने झल्लाकर कहा—'चुप रह नासपीटे...!'

...दूसरे दिन मास्टर चार बजे तक न आये। घर से तो ठीक टाइम से निकले थे, पर राह में एक पुराने साथी मिल गये और उन्होंने पल्ला पकड़ लिया।

यहाँ बैठक में लड़के जमा थे। लल्ला बीच में बैठता है अपनी डेस्क लगाकर। दायें सुरेश रहता है और बायीं ओर दीवार के पास बैठता है मुन्ना।

सुरेश गा रहा था और लल्ला ताल दे रहा था डेस्क पर। इधर से मुन्ना निकला, दावात में पानी डालने। धक्का लग गया शायद, डेस्क हिल गई और डेस्क पर रक्खी लल्ला की दावात छलक गई थोड़ी-सी और होल्डर नीचे ज़मीन पर गिर गया।

मुन्ना ठिठक कर खड़ा था। लल्ला ने एक बार शान्तभाव से उसके मुँह पर नज़र जमा कर देखा फिर बिना कुछ बोले चुपचाप उठा, बायीं ओर को झुका, झुककर मुन्ना की किताब उठा ली और शान्तभाव से पूरी किताब बीच से चीर दी। चीर कर दूर कोने में उसे फेंक दिया और बिना कुछ बोले फिर अपनी जगह पर आ बैठा।

किताब वह कोने में पड़ी थी कि जिसका हर पेज बीच से दो हो गया था। और मुन्ना स्तब्ध होकर देख रहा था। तभी मास्टर साहब ने किवाड़ों पर छड़ी से आवाज़ की।···

शाम को घर आकर फटी किताब माँ को दिखाकर वह रोने लगा तो माँ ने हँस कर कहा—'अरे पगले रोता काहे को है? मैं जोड़ दूँगी इसे। तू लल्ला से लड़ा तो नहीं था?'

मुन्ना ने रोते-रोते सिर हिला कर जताया कि नहीं। माँ ने पुचकार कर कहा—'ले, दो पैसे का गोंद ले आ तू। मैं अभी सब पेज जोड़ दूँगी।'

रामू पीछे खड़ा था। मुन्ना चुप हुआ तो वह उसके कान पर मुँह रख कर धीरे से बोला—'दादा, गाजर खायेगा?'

'कहाँ हैं गाजर?'—मुन्ना ने धीरे से पूछा।

रामू ने धीरे से कहा—'चल, कडिया में हैं, उतार ले तू।'

पर माँ ने सुन लिया। नाराज़ होकर बोली—'गाजर छुई तो पिटोगे। कच्ची ही सब खा लो। तरकारी काहे की बनाऊँगी फिर? रामू,

तू बड़ा शैतान होता जा रहा है। अभी बाप से जाकर कहे देती हूँ। कान उखाड़ेंगे तेरे।'

रामू ने पूछा—'क्या दोनों कान ?'

नन्दिनी ने किसी प्रकार हँसी रोककर कहा—'हाँ, दोनों।'

—८—

माँ ने रात को लालटेन की रोशनी में पेज जोड़कर किताब सूखने को रख दी थी। सबेरे उठते ही मुन्ना ने याद करके पूछा तो माँ बोली—'अभी ज़रा गीली है। ऊपर धूप में रख आओ।'

मुन्ना ने दुखी होकर कहा—'अभी थोड़ी देर में तो हमें पढ़ने जाना है।'

माँ ने कहा—'मुझे तो लगता है कि आज मास्टर न आयेंगे। आज तो उनके घर भजन होंगे भगवान् के। अभी भगतसिंह कह गया है।'

'तुम भी जाओगी जीजी ? क्यों होंगे भजन ?'

'लल्ला के अच्छे होने की ख़ुशी में भजन होंगे। जल्दी-जल्दी खा-पी लो। चौका उठा दूँ तो कपड़े बदलूँ जाने को।'

फिर पति के निकट आ पूछा—'क्या खाओगे आज ?'

राजेश्वर पढ़ रहा था। किताब रख कर बोला—'मुझे भी तो जाना है। मेडिकल सर्टिफ़िकेट पर सिविल सर्जन के हस्ताक्षर कराने हैं। कुछ बना-बुनू डालो जल्दी।'

और तो कुछ सूझ न पड़ा, खिचड़ी बना ली मूँग की दाल की। राजेश्वर ने खाकर अस्पताल की राह ली। नन्दिनी ने जल्दी-जल्दी बरतन समेटे। अँधेरा हो जायेगा लौटने तक। सब काम निबटा कर जाना चाहती थी भजनों में।

लड़के छत पर खेल रहे थे। नन्दिनी ने मुन्ना को पुकार कर कहा—'जाकर पूछ आओ कि मास्टर आयेंगे आज या नहीं ?'...

दौड़ते आये दोनों बुआजी के घर। घुसते ही गुसलखाने में लल्ला

खड़ा मिला। राजरानी उसके पैरों को साबुन रगड़-रगड़कर उज्ज्वल कर रही थीं। लल्ला ने इन्हें देख कर हँसकर कहा—

'मुन्ना-रामू दो भैया,
पकड़ें कान, करें दैया!'

मुन्ना ने पूछा—'मास्टर साहब आज आयेंगे?'

लल्ला ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं। आज तो हम सिनेमा देखने जा रहे हैं। 'वीर अभिमन्यु' खेल आया है। बाबूजी कह गये हैं। अभी जायेंगे थोड़ी देर में। मेटिनी शो होगा आज।'

राजरानी ने चिल्लाकर कहा—'कूदो मत! सीधी तरह खड़े रहो।'

सुरेश निकल आया भीतर से और इन से पूछने लगा—'तुम भी चलोगे सिनेमा?'

इन्होंने कुछ न कहा। तभी सुरेश की माँ भी तेल की बोतल लिये बाहर आईं। उन्होंने सुन लिया था। इन से प्यार के स्वर में बोलीं—'जाओ, तुम दोनों भी कपड़े बदल आओ। तुम भी जाना सिनेमा देखने।'

सुरेश ने प्रसन्न भाव से कहा—'जाओ, जल्दी से तैयार होकर आ जाओ। कार आती होगी। चाचाजी कार भेजेंगे हम लोगों के लिए। कार से चलेंगे।'

लल्ला सब सुन रहा था। चिल्लाकर बोला—'नहीं, इन्हें हम नहीं ले जायेंगे साथ।'

राजरानी ने ऊपर को मुँह करके कहा—'क्यों नहीं ले जायेगा? तेरा क्या छीन लेंगे? नीचे बैठ, सिर पर साबुन लगा।' और इनकी ओर बिना देखे शान्त स्वर में कहा—'जाओ रे मुन्ना-रामू, तैयार हो आओ। अपनी माँ को भी लिवाते लाना।' फिर धीरे से बोलीं—'नहीं तो कौन जायेगा उसे बुलाने।'

ख़ुशी से उछलते दोनों घर की ओर भागे आये। हाथ-मुँह धोये दोनों ने और कपड़े बदलने को माँ के पास आ खड़े हुए भीतर।

नन्दिनी बक्स खोले बैठी थी। क्या पहिन कर बीबी जी के घर जाय? क्या है उसके पास? यही सादी-सादी धोतियाँ हैं, सादे-सादे दो-तीन जम्पर-ब्लाउज़ हैं। बढ़िया साड़ी कहाँ से लाये? रेशमी ब्लाउज़ कहाँ से लाये?

बच्चों ने एक साथ कहा—'हमें कपड़े पहिनाओ अच्छे-अच्छे!'

अच्छे-अच्छे कपड़े!...

माँ ने पुरानी धारीदार धोती पहिनी। मुन्ना ने पायजामा-कुरता पहिना। अब रामू को क्या पहिनाया जाय? एक नेकर धुला रक्खा था। उसी को जल्दी-जल्दी टाँके मार कर ठीक किया और कमीज़ पहिना दी मुन्ना की। हँस कर बोली—'लो, बाँहें ऊपर को किये देते हैं। अब बड़ी न लगेगी।'...

घण्टा-भर बाद ख़ुश-ख़ुश लौट कर आये दोनों तो यहाँ दरवाज़े पर कार खड़ी थी। ड्राइवर छोटेलाल सामने के चबूतरे पर बैठा बीड़ी पी रहा था। देखकर ख़ुशी से फूले न समाये। भीतर न गये। वहीं कार के पास खड़े रहे। लल्ला अपना नया सूट पहिने बाहर आया। हैंडिल घुमा कर दरवाज़ा खोला और पीछे वाली सीट पर कूद कर जा बैठा।

तब सुरेश आया। उसने आते ही इनसे कहा—'मुन्ना, चलो बैठो। रामू भैया चल।' और इन्हें भीतर करके पीछे से ख़ुद भी घुस आया।

छोटेलाल ड्राइवर ने एक अँगड़ाई लेकर कहा—'चलें लल्ला?'

लल्ला ने अपने कोट का कालर ठीक करते-करते कहा—'चलो!'

...मुहल्ले की गली पार करके,कार चौड़ी सड़क पर घूमने लगी तो झटका-सा लगा। रामू लल्ला के ऊपर लुढ़क गया। डर कर उसने लल्ला का कोट पकड़ लिया।

लल्ला ने झटका देकर उसका हाथ छुड़ाया कोट से। पर इस बीच

में सिलवट-सी पड़ गई। मुँह सिकोड़ कर घृणा से रामू की ओर देखता रहा—देखता रहा। फिर खट्-से उसे कन्धा पकड़ कर उठा कर खड़ा कर दिया चलती कार में। रामू घबराया हुआ आगेवाली सीट पकड़े खड़ा था लल्ला के ठीक सामने। तब लल्ला ने झुँझला कर दोनों हाथों से उसके दोनों कन्धे ज़ोर से दबा कर डाँट कर कहा—'नीचे बैठ!'

रामू सीट के नीचे लल्ला के जूतों के पास उकड़ूँ बैठ गया।

पर लल्ला को सन्तोष न हुआ। मुन्ना सीट के ऊपर था। रामू को इस तरह नीचे बैठा देख कर दुखी हो रहा था। लल्ला ने अँगुली उठा कर कहा—'तुम भी नीचे बैठो। उठो यहाँ से!'

कार बाजार के बीच से दौड़ती जा रही थी। ये दोनों नीचे बैठे थे, जहाँ से कुछ भी न दीखता था। सीट के किनारे पकड़ रक्खे थे दोनों ने। ज़रा-सा भी धक्का लगता तो गिरते-गिरते बचते लल्ला के जूतों पर।

लल्ला सीट पर तिरछा हो कर बैठा था। बाहर की सीनरी देखता जाता था और मुसकरा रहा था। सुरेश शान्त था।

पलक मारते बाज़ार पीछे छूट गया और नदी वाली रोड पर कार दौड़ने लगी।

सहसा लल्ला ने चिल्ला कर कहा—'अरे तीन हाथी! चार! अरे, पाँच!'

सुरेश ने भी उचक कर देखा। और ये दोनों भी उठ कर खड़े हो गये। सड़क के किनारे-किनारे किसी बारात से लौटे पाँच हाथी झूमते चले जा रहे थे।

लल्ला के सामने फिर आड़ हो गई। ज़रा देर रुका रहा—ज़रा देर सहा। फिर हाथ उठा कर रामू की खोपड़ी पर पीछे से कस कर एक धौल जमाई और डाँट कर कहा—'बैठ नीचे!'

रामू बैठ गया तो एक धौल फिर मुन्ना के भी जमाई और मुसकरा कर कहा—'नीचे बैठो !'

शहर के पच्छिमी किनारे पर, जहाँ नदी की ओर सड़क मुड़ती थी और बायें अछूतों की बस्ती थी, भगवानदीन जी का 'बाड़ा' था। बाड़ा एक फर्लाङ्ग का घेरा लिये था और पक्की चहारदीवारी से घिरा था। घेरे में 'दाल का कारखाना' था, आटे की चक्की थी, तेल की मिल थी और कपड़े की कोठी थी।

तीनों मद्दों की रोजाना आमदनी शाम को गिनी जाती थी और प्रतिदिन मुनीमजी इम्पीरियल बैंक की शाखा में नोटों के बंडल जमा कर आते थे।

तहसील में, जहाँ भगवानदीनजी का मौरूसी घर था, चारों ओर सूद पर रुपया फैला था और तीन बड़े-बड़े जमींदार उनके कर्जदार थे, जिनकी जमींदारी अब 'लल्ला' के नाम होने वाली थी।

भगवानदीनजी के बाप का नाम मसुरियादीन था। वह ज़िन्दगी भर लोगों को किश्त पर रुपया दे कर, दस के ग्यारह वसूल करता रहा। एक दिन वही किश्त वाला रुपया वसूल करने चमारों के टोले में गया। चमारों की चौपाल पर बैठा था, अचानक जम्हाई ली, मुँह फैला, फैलता ही चला गया, फैला ही रह गया मुँह। नीचे लुढ़क कर गिरा, फिर कभी न उठा।

भगवानदीनजी ने जब होश सँभाला, अपनी सब सम्पत्ति का तख़-मीना लगाया तो बालिश्त भर की छाती फूल कर सवा बालिश्त की हो गई। पर अपने नाम के साथ 'दीन' टागा देख कर बहुत कुढ़े, बहुत कुढ़े बाप की बुद्धि पर। परन्तु अब दिल जलाने वाले इस 'दीन' शब्द को हटाना नामुमकिन था। मिडिल के सर्टिफिकेट में, हिन्दी और अँगरेजी में, दो जगह 'दीन' लिखा था और बैङ्क में और पटवारी के खाते में हर जगह 'भगवानदीन' ही चढ़ा था। तब झख मार कर रह गये।

गोरा रंग, इकहरा शरीर, छोटा-सा क़द और बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें। अपने इस 'संक्षिप्त व्यक्तित्व' पर भी कभी-कभी बड़ी झुँझलाहट लगती। कभी नंगे होकर आदमक़द आइने के सामने खड़े होते तो अपना मुख्तसिर सीना देख कर कोफ़्त होता, तब मुट्ठी बाँध कर बाँहें ऊपर करते, मांसपेशियाँ फूली दीखतीं, सन्तोष की साँस लेते और अकारण ही किसी नौकर को पुकार उठते या फिर कोई गाना गुनगुनाने लगते।

परन्तु रुपया बढ़ता गया और 'भगवानदीन' शब्द में 'जी' लग गया। यह 'जी' किसने लगाया, पता न चला और 'जी' अब चिपट-सा गया था 'दीन' से। सुनकर प्रसन्नता होती।

रुपया बढ़ता गया। बाड़े में ईंटें चुनती गईं। भगवानदीन जी का अपना ख़ास कमरा टूट कर फिर से बना और दरवाज़े के ऊपर हिन्दी और उर्दू में मोटे-काले अक्षरों में लिखा गया—'बिना इजाजत अन्दर आने की मुमानियत है।' किवाड़ों के ऊपर एक बढ़िया-सी चिक पड़ गई।

बहुत दिनों से; शायद बाप के ज़माने से, कमरे में 'सम्राट् पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी' की तसवीर लगी थी। जमाने ने करवट बदली, देश स्वतन्त्र हो गया, कांग्रेस के हाथ में सत्ता आ गई तो भगवानदीन जी ने वह तसवीर उतार फेंकी और 'महात्मा गांधी' का बड़ा-सा चित्र लटका दिया उस जगह। शानो-शौकत का लिबास तज दिया, खद्दर पहिनने लगे। कांग्रेस के चवन्निया सदस्य बने, फिर कार्यकारिणी में पहुँचे।

एक पञ्जाबी ठेकेदार, जो इस शहर का बाशिन्दा-सा हो गया था, उनका पुराना लँगोटिया यार था। कांग्रेसी राज में उसे कहीं दूर, किसी नदी के बाँध का ठेका मिल गया था। उसका ख़ास साला 'पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी' हो गया था। ठेके में लाखों का वारा-न्यारा होने लगा। यहाँ का तमाम 'कपड़े का कोटा' उसने इनके नाम करवा दिया। ख़ूब चाँदी गिरी। लक्ष्मी जैसे पैरों पर आ गिरी थीं।

पहिले हाकिम-हुक्कामों को दावत देते थे, पुलिस को खिलाते-पिलाते

थे। हवा का रुख बदल गया, अब कांग्रेसी-पदाधिकारियों को प्रीति-भोज देने लगे। कांग्रेस का, कांग्रेसी सरकार का कोई अदना से अदना व्यक्ति भी अगर भूले-भटके इधर आ निकलता तो भगवानदीनजी उसकी खातिर मे जान लड़ा देते—एक बढ़िया-सी दावत हो जाती शहर भर के कांग्रेसियों की।......

ठेकेदार साहब अभी-अभी आये थे और कह गये थे कि उनके साले साहब, वही पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी, इस ओर शीघ्र ही आने वाले हैं, उनको प्रसन्न करना है। अगला चुनाव अब आने ही वाला है। मैंने निश्चय किया है, इस इलाके से तुम्हें कांग्रेस का टिकिट दिलवाऊँगा। मेम्बर हो जाओगे, फिर देखना क्या होता है।

भगवानदीनजी का हृदय गद्‌गद हो गया, आँखों में आँसू आ गये। कुछ सूझ न पड़ा, नीचे को झुके और मित्र की चरण-रज लेकर माथे से लगा ली।

ठेकेदार ने अपनी मूँछें उमेठ कर कहा—'मेरा नाम धन्नामल है, तुम्हें लखनऊ की कुरसी पर न बिठला दूँ तो इन मूँछों को मुँड़वा दूँगा।'

भगवानदीनजी पानीभरी आँखों से मित्र का मुख देखते रहे। ठेकेदार ताँगे पर बैठे तो फिर एक बार उनकी चरण-धूलि लेकर माथे से लगाई।......

भगवानदीनजी की पहिली पत्नी पैंतीस साल की अवस्था में मर गई। पाँच साल का एक बालक छोड़ मरी थी। वह बालक अपनी ननिहाल में पल रहा था और नाना की सारी सम्पत्ति का वारिस होने वाला था।

कुल ढाई मास 'रँडुआ' रहे। राजेश्वर् के चाचा की पुत्री, राजरानी काला रंग और बीस साल की जवानी लिये, साँड़ की तरह स्वास्थ्य बढ़ा रही थी। वह मानो 'वर माला' लिये प्रतीक्षा में बैठी थी। चाचा ने प्रस्ताव किया, भगवानदीन जी ने स्वीकृति दी और बीस साला कन्या ने सड़ाक् से पति के कण्ठ में वरमाला डाल दी।

और फिर राजरानी की सम्पूर्ण मनोवृत्ति का प्रतीक लल्ला अवतीर्ण हुआ धरातल पर।...

...पूरब से उत्तर तक पूरी कोठी की प्रदक्षिणा करके कार बरामदे के एक किनारे आकर खड़ी हो गई। छोटेलाल ड्राइवर ने उतर कर पीछे वाला दरवाज़ा खोल दिया।

रामू उसी तरह जूतों के पास सहमा बैठा था। लल्ला ने झुँझला कर कहा—'उतरो नीचे!' और रामू को उतरने में देर होती देख उसके सिर के ऊपर से टाँग घुमाता हुआ कूद गया बाहर।

शायद रामू के सिर से लल्ला का जूता छू गया। पर लल्ला ने ध्यान न दिया। शान से एक-एक क़दम रखता हुआ बाप के कमरे की ओर चला गया। पीछे से सुरेश इन लोगों को लिये पहुँचा।

ये तो फूफाजी से डरते ही थे, सुरेश भी चाचाजी से ख़ौफ खाता था। तीनों चिक के इस पार जा खड़े हुए।

लल्ला भीतर बाप के पास था। और बाप पूछ रहे थे—'सुरेश नहीं आया?'

'आया है।'

बाप शायद 'वाउचर' देख रहे थे। सिर झुकाये हुए बोले—'तो तुम सिनेमा ज़रूर देखोगे?'

'हाँ।'

'दें तुम्हें पैसे?'

'हाँ।'

'दो टिकिटों के न?'

'नहीं, चार के।'

'क्यों? चार के क्यों?'—बाप ने सिर उठा कर पूछा।

'मुन्ना और रामू भी आये हैं।'

'तुम साले, ये पुछल्ले भी लगा लाये!'—नाराज़गी से कहा।

'हम क्या करें ?'—लल्ला ने रंजीदा स्वर में कहा—'ताई जी ने भेज दिया इन्हें। हम तो मना करते रहे !'

'ताई बड़ी अक़्लमन्द हैं !'

ये बाहर सुन रहे थे कान लगाये। तभी एक दुबला-पतला आदमी शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहिने और सिर पर तिरछी गांधी-कैप लगाये, चिक तक आ पहुँचा। ये लोग अचकचाये। गांधी कैप वाला चिक हटा कर भीतर दाख़िल हो गया। और भीतर से फूफाजी की आवाज़ सुनाई दी—'ओह्वोह्, भाई साहब, आइये, आइये !—इधर आइये !'

ये शहर कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेन्ट थे, चौधरी साहब। व्यवधान पाकर लल्ला बाहर निकल आया। ये निश्चल निर्वाक् खड़े थे। लल्ला को देखा तो जैसे सहम गये।

लल्ला ज़रा देर सामने खड़ा रहा फिर उसने धीमे स्वर में मुन्ना से कहा—'बाबूजी नाराज़ हो रहे हैं। जाओ तुम दोनों। जाओ अपने घर !'

रामू फक़ चेहरा लिये खड़ा था। मुन्ना ने उसका हाथ पकड़ा और बिना कुछ बोले बरामदे की सीढ़ियों से उतर कर चल दिया सड़क पर।...

भगवानदीनजी एक कोठी और खड़ी करवाना चाहते थे। दो लाख ईंटें भट्ठे पर पक रही थीं और ज़मींदारी वाले गाँव में पेड़ चीरे जा रहे थे, किवाड़ों के लिए। और अब सीमेंट की ज़रूरत थी। सैकड़ों बोरे चाहिए।

चौधरीजी वही सुखद समाचार लेकर आये थे। हँस कर बोले—'तुम्हारा काम न रुकेगा। तुम्हारे लिए अगर इतना भी न कर पाया, तो मेरी प्रेसीडेन्सी बेकार है। बोलो, कितना सीमेंट लोगे, पाँच सौ कि एक हज़ार ? कितने बोरे चुनवा दूँ यहाँ ?'

भगवानदीनजी गद्‌गद हो गये।

चौधरी साहब ने कहा—'बहुत जल्दी में हूँ, माई डियर! ज़रा अपनी कार तो निकलवाओ। सूरजपुर तक जाना है। ज़रूरी काम है।'

'अभी लीजिए, अभी!' कहते हुए भगवानदीनजी कमरे के बाहर निकल आये। साथ-साथ चौधरीजी भी बाहर आ गये।

'छोटेलाल!'—ज़ोर से कहा आर्डर के स्वर में।

छोटेलाल मिस्त्री के पास बैठा गप्पें लड़ा रहा था। मालिक की आवाज़ सुन कर दौड़ा आया। झुक कर कहा—'जी।' और साँस रोक कर खड़ा हो गया।

'जाओ, गाड़ी ले जाओ! चौधरी साहब को सूरजपुर पहुँचा आओ। तेजी से, फ़ुल स्पीड! समझे?'...

नमस्ते करके जब चौधरी साहब को विदा कर दिया तो इधर ध्यान गया। लड़का और भतीजा दीवार से सटे खड़े थे। याद आया तो लल्ला से पूछा—'वे दोनों कहाँ गये?'

लल्ला ने दबे स्वर में कहा—'मैंने उन्हें लौटा दिया।'

'तुम साले, किस क़दर सुअर हो! पहिले उन्हें यहाँ तक साथ लाये फिर यहाँ से लौटा दिया। तुम से साले, लौटाने को किसने कहा था?' फिर अपनी कलाई की ओर देखा और बोले—'जाओ, देखो खेल। टाइम हो गया। लो, यह नोट लो।'

—१०—

कचहरी जाने वाले एक ताँगे में बैठ कर राजेश्वर 'हास्पिटल' पहुँचा। उस समय ग्यारह बजे थे। बाहर बरामदे में पड़ी बेंच पर बैठा-बैठा, सिविल-सर्जन का इन्तज़ार करने लगा।

बारह बजा, एक बजा, दो बजा। ढाई बजे साहब की कार आई। जेल चले गये थे। असिस्टेन्ट सर्जन किसी ऑपरेशन में लगे थे।

हेड क्लर्क से थोड़ी जान-पहिचान थी। उसने मेहरबानी करके साहब से सिफ़ारिश कर दी, फिर राजेश्वर को सामने पेश करके उसके सर्टिफ़िकेट

पर 'काउण्टर सिग्नेचर' .करवा.दिये साहब से। पाँच रुपये में ही काम निकलवा दिया, नहीं तो पूरे सोलह देने पड़ते।

हेड क्लर्क को धन्यवाद देकर, कागज की तह करता-करता इधर आया। असिस्टेंट-सर्जन अपना सब काम निबटा कर तभी फारिग़ हुए थे। इन्हें देखा तो हँसकर बोले अँगड़ाई लेकर—'अभी फुर्सत मिली है। खाना तक नहीं खा सका हूँ। चलिये, मकान चल रहे हैं।'

हास्पिटल से सटा उनका बँगला था। दोनों जने बात करते-करते, बैठक तक पहुँचे तो डाक्टर ने शान्ति से आराम-कुरसी पर लेट कर कहा—'अब इंजेक्शन की जरूरत नहीं है। मैं आपको एक दवा लिखे देता हूँ। उसे लीजिये। पैंतालीस रुपये में ढाई सौ ग्राम मिलेगा। पाउडर है। सुबह, दोपहर, शाम चार-चार ग्राम लीजिए। और रात को खाना खाकर वह सीरप। फल आप खा रहे हैं न? फल, मक्खन, दूध—यह सब खूब खाइये और हरी तरकारियाँ भी। टमाटर का रस पीते हैं न?'

राजेश्वर ने सच-झूठ मिलाकर कहा—'जी हाँ, सब ले रहा हूँ।'

डाक्टर ने जैसे याद करके कहा—'आपके वे दोस्त तो 'मिलेटरी ट्रेनिङ्ग' में ले लिये गये। अच्छे रहे।'

राजेश्वर ने अचरज से कहा—'आपको कैसे मालूम हुआ?'

हँसकर बोले—'कल उनका भेजा मनी-आर्डर मिला है, पैंसठ रुपये का। आपकी फ़ीस भेजी है उन्होंने।'

राजेश्वर चकित होकर सुनता रहा।

डाक्टर ने हँस कर कहा—'यू आर वेरी लकी! मित्र हो तो ऐसा हो और भाई, आपकी 'वाइफ़' भी बड़ी सती स्त्री है। कितनी मेहनत की है उसने आपकी बीमारी में! मैं उससे बहुत खुश हूँ।'

राजेश्वर ने कुछ न कहा। जाने क्या सोच रहा था। सहसा याद आया कि डाक्टर साहब ने अभी भोजन नहीं किया है, तो उठ खड़ा हुआ

और बोला—'आज्ञा दीजिये। अब चलूँ।' फिर झेंपते-झेंपते कहा—'मैं जल्दी ही आपके बाक़ी रुपये देने की कोशिश करूँगा।'

डाक्टर भी उठ कर खड़े हो गये थे। आँखें चौड़ी करके बोले—'कौन-से रुपये?'

'फीस के बाक़ी रुपये। आपने मेरे ऊपर बहुत दया की है। कोई भी डाक्टर फ़ीस उधार नहीं मानता। बिना पैसा लिये आप रोज आये। मुझे जीवन-दान दिया है आपने।'

डाक्टर ने शान्त भाव से कहा—'यह सब आप कह क्या रहे हैं? मैंने क्या किया है भाई! और मेरी हस्ती ही क्या है! करने वाला सब भगवान् है। मैं तो एक नाचीज हूँ। और देखिये, अब आप और रुपये मत लाइएगा। पहिले तो जानता न था। अब जान कर भी अगर आँखें मूँद लूँ तो मुझ-सा पापी कौन होगा? आप आज गर्दिश में हैं। औरत आपकी फटी धोती पहिने चौका-बरतन करती है। बच्चे ऐसे जाड़े-पाले में फटे कपड़े पहिने घूमते-फिरते हैं। आपके पास अगर पैसा होता तो बच्चे यों न रहते। दुनिया का कोई भी बाप अपने बच्चों को जाड़े से काँपता नहीं देख सकता। अगर पास में पैसा हो तो कोई आदमी अपनी औरत को फटी धोती पहिने बरतन साफ करते देखना बरदाश्त नहीं कर सकता। और फिर ऐसी सती औरत, ऐसे मासूम और प्यारे बच्चे!...आधी फ़ीस आपके दोस्त ने भेज दी है। अब बाक़ी मैं एक पैसा न लूँगा आपसे। जाइये, उन रुपयों के फल खाइये आप। नमस्ते!'—कह कर डाक्टर घर के भीतर घुस गये।

राजेश्वर के गले में रुदन् आकर रुक गया। चलने लगा तो क़दम भारी लग रहे थे।

मरियल टट्टू वाला एक इक्का शहर की ओर जा रहा था। उसी पर बैठ गया विचारों में डूबा-डूबा।

डाक्टर की मनुष्यता याद आती, मित्र का स्नेह याद आता, पत्नी की

सेवा याद आती, बच्चे याद आते और फिर अपनी दरिद्रता याद आती, चारों ओर मँडराती। विचारों का यही क्रम चलता रहा रास्ते भर। यहाँ तक कि चौराहे पर पहुँच कर खड़खड़ा कर इक्का रुक गया और पैसे दे-देकर लोग उतरने लगे।

राजेश्वर ने भी छः पैसे दिये और वह भी औरों की तरह अपने घर की ओर चला कि सामने नज़र गई। चकित होकर रुक गया वहीं सड़क के किनारे।

दोनों बच्चे नदी वाली राह से चले आ रहे थे सामने। दोनो के चेहरे मुरझाये हुए थे और धूप से सुर्ख़ हो रहे थे। पैरों पर धूल चढ़ी थी। एक दूसरे का हाथ पकड़े इक्कों-ताँगों से बचते किनारे-किनारे चले आ रहे थे थके पैरो से, धीमी चाल से।

अचरज और दुख से भरा राजेश्वर सड़क पार करके आगे आया तो बच्चे उसे देख पाये। छोटे ने भाई का हाथ छोड़ कर चट पिता का हाथ पकड़ लिया और बड़ा मुरझाई हँसी हँसकर खड़ा हो गया पास।

दुख में डूबे पिता ने पूछा—'कहाँ गये थे?'

तब वहीं सड़क के किनारे खड़े-खड़े सब किस्सा सुनाया मुन्ना ने। फिर करुण स्वर में बोला—'यह थक गया है, बाबूजी। इसे गोदी ले लो।'

राजेश्वर ने रामू को गोद में उठा लिया और बड़े का हाथ पकड़ कर सवारियों से बचता चलने लगा।

रास्ते में और बात न हुई। घर से बीस क़दम इधर भुरजी की दूकान पड़ती थी। वहाँ आकर रुके। बाप ने जेब से पैसे निकाले। पाँच पैसे की पाव-भर शकरकन्द ख़रीदी भाड़ की भुनी और घर चले आये।...

दिये जल गये और फिर दो घण्टा और निकल गये। तब नन्दिनी कीर्त्तन से लौटी। तीनो बाप-बेटे एक ही खाट पर लेटे थे। बच्चे सो गये थे और राजेश्वर आँखें खोले अन्धकार की ओर देख रहा था।

नन्दिनी ने अचरज से कहा—'ये कब आ गये? लल्ला तो अभी

तक नहीं आया है कोठी से। क्या तुम जा कर लिवा लाये ? कुछ खाया भी तो न होगा। भूखे ही सो गये दोनों।'

राजेश्वर ने धीरे से कहा—'शकरकन्द खिला दी थी दूध में मिला कर।'

नन्दिनी क्षण भर सोये हुए बच्चों के मुख देखती रही। छोटे का सिर तिरछा हो गया था। उसे ठीक कर दिया। फिर पति से पूछा—'यह प्रसाद खाओगे ? लड्डू बाँटे हैं बीबीजी ने। मोतीचूर के हैं। खाओगे ?'

राजेश्वर ने उदास भाव से कहा—'रख दो। बच्चों को देना सुबह। प्रभात का ट्रांसफर हो गया।'

'हे राम ! कहाँ को हुआ, किस शहर को ?'

राजेश्वर ने कहा—'पीछे सुनना। मेरे लिए कुछ खाना तो बनाओ। सुबह की खिचड़ी खाये हूँ।'

नन्दिनी व्यग्र भाव से नीचे उतर गई।...

रात को रोशनी बुझाकर जब नन्दिनी दोनों बच्चों को लेकर लेट रही तो राजेश्वर ने अपनी खाट पर लेटे-लेटे सब सुनाया धीरे-धीरे।

नन्दिनी ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—'डाक्टर साहब तो देवता हैं। देवता और कैसे होते हैं ? प्रभात बाबू तुम्हारे मित्र नहीं, नारायण हैं स्वयं। मित्र बनकर, मित्र का रूप धर कर नारायण तुम पर, मुझ पर अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं। जो कभी किसी दिन ये लड़के किसी क़ाबिल हुए तो इनसे सब कहूँगी। इनसे कह जाऊँगी मरते-मरते कि ऋण उतारना हमारा। अपनी जान देकर भी चाचाजी की सेवा करना।'—रोने लगी, कहते-कहते।

राजेश्वर ने धीरे-धीरे कहा—'आज आख़िरी रुपया भी भुन गया। अब कल कैसे काम चलेगा ? पैंतालीस रुपये दवा के लिए चाहिए।'

नन्दिनी ने ढाढ़स के स्वर में कहा—'दो जेवर अभी और हैं मेरे

पास। तुम चिन्ता क्यों करते हो? अम्माँ मरती बेला अपने ये दो ज़ेवर दे गई थीं। उनकी निशानी समझ कर रक्खे रही। बेचते मोह लगता है। गिरवी रख दूँगी। सब ठीक है। भगवान् दया करें, तुम तन्दुरुस्त हो जाओ। कल मैं बीबीजी के पास ये ज़ेवर ले जाऊँगी। बड़ी आदमिन हैं, सौ-दो सौ उनके लिए खेल हैं। रहमदिल भी हैं। वे ज़रूर गिरवीं रख लेंगी।'

तभी किसी ने नीचे से बन्द किवाड़ें भड़भड़ा कर आवाज की।

राजेश्वर ने स्वर पहिचान कर कहा—'अरे, चाचा जी आ गये! जाओ जल्दी किवाड़ खोलो।' ..

नन्दिनी सबेरे हमेशा जल्दी उठती है। वह उठी तो जाने कैसे दोनों लड़के भी जाग गये। झुटपुटा था। पौ फट रही थी और सामने आँगन के ऊपर शुक्रतारा अपना मद्धिम आलोक फैलाये था।

हँसते-खेलते रहे दोनों, लिहाफ़ में दुबके। फिर सिर निकाल-निकाल कर बातें करने लगे।

रामू बोला—'मैं बड़ा हो जाऊँगा, तो एक कार लूँगा।'

मुन्ना ने कहा—'मैं मोटर-साइकिल लूँगा।'

रामू बोला—'कार पर जाया करूँगा घूमने, सर्रर्र!'

'मेरी मोटर-साइकिल चलेगी, फट्-फट्-फट्-फट्!'

'कार बहुत तेज़ चलती है।'

'वाह, मोटर-साइकिल चलती है तेज!'

'मेरी कार बहुत तेज चलेगी!'

'मेरी मोटर-साइकिल तुमसे आगे निकल जायगी!'

रामू क्षण भर चुप रहा। फिर सोचकर कहा उसने—'साथ-साथ चलाना!'

मुन्ना ने हँस कर कहा—'नहीं, हम आगे रहेंगे।'

रामू ने विनय के स्वर में कहा—'साथ-साथ चलाना दादा!'

मुन्ना ने हँस कर कहा—'नहीं, हम नहीं रुकते।'

रामू ने और गिड़गिड़ा कर कहा—'अरे दादा, साथ-साथ ही चलने दे! मान जा, दादा!'

पास वाली कोठरी से चाचाजी ने चिल्ला कर कहा—'अरे नालायको, क्यों शोर मचा रहे हो? सोने भी न दिया दुष्टों ने! मुन्ना रामू, यहाँ आओ।'

बाबा की आवाज सुनकर, दोनों डर कर चुप हो गये थे। फिर जब उन्हें बुलाते सुना तो खुश-खुश भागे, लिहाफ छोड़ कर।

बाबा ने कहा—'हम तुम्हारे लिये गंगाजी से एक-एक बाँसुरी लाये हैं। इलायची-दाने लाये हैं।'

रामू बोला—'कहाँ है बाँसुरी?'

मुन्ना ने पूछा—'बाबा, तुम क्यों गये थे गंगाजी?'

बाबा ने कहा—'तुम्हारा लल्ला भैया अच्छा हो गया। उसी का प्रसाद बाँटने गये थे। तुम लोग उसे 'लल्ला' मत कहा करो। तुमसे बड़ा है। दद्दा कहा करो। समझे?'

रामू ने कहा—'दद्दा ने कल हमारे सिर पर थप्पड़ मारा था बड़े ज़ोर से।'

बाबा ने कहा—'तुमने कुछ शैतानी की होगी।'

मुन्ना ने प्रसंग बदल कर, कहा—'बाबा, कब आये तुम?'

'हम तो आठ बजे ही आ गये थे। सो रहे थे तुम दोनों। इतनी बड़ी रात होती है, पर तुम लोग शाम से ही पड़ रहते हो। पढ़ना-लिखना कुछ नहीं। सारे दिन ऊधम। दिन निकलते ही ऊधम। यह क्या अच्छे लड़कों की बातें हैं?'

मुन्ना चुप रहा। पर रामू ने उत्साह से कहा,—'हम भी पढ़ा करेंगे, बाबा! तुम हमें छोटे 'अ' की किताब ला देना।'

'पढ़ोगे नहीं बेटा, तो फिर करोगे क्या, खाओगे क्या?'

रामू ने कहा—'रोटी खायेंगे, दाल खायेंगे।'

बाबा ने समझाया—'पढ़ो-लिखोगे तभी तो रोटी-दाल मिलेगी। नहीं तो भीख माँगोगे सड़क पर। तुम्हारे बाप पढ़-लिख गये, तो नौकरी मिली। अब तुम सब को पाल रहे हैं। तुम्हें तो ढग से रोटी मिलती है। वह तो बेचारा भूखा रह रहकर, एक जून खा-खाकर पढ़ा था। इतनी ग़रीबी में उस ने समय काटा है।'

मुन्ना ने उत्सुकता से पूछा—'क्या बाबूजी पहिले बहुत ग़रीब थे, बाबा?'

'हाँ। तभी तो तुमसे कह रहे हैं कि पढ़ो-लिखो खूब। पढ़-लिख जाओगे तो नौकर हो जाओगे।'

मुन्ना चुप रहा। रामू ने सोचकर कहा—'बाबा, लल्ला बड़ा बुरा है। वह सारे दिन खेलता है। पढ़ता नहीं।'

बाबा ने हँसकर कहा—'उस के लिए क्या है! न पढ़ेगा तो भी कुछ नहीं। उसके घर में ढेरों रुपये हैं।'

'क्यों बाबा, एक सन्दूक भर?'

'एक सन्दूक भर नहीं रे, एक कोठरी-भर।'

'एक कोठरी-भर रुपये! बाप रे, एक कोठरी भर!'

'क्यों बाबा, फूफाजी बहुत अमीर हैं?'

'और क्या!'

'बाबा, हम ग़रीब हैं?'

तभी नन्दिनी ने किवाड़ की ओट से पुकारा—'मुन्ना!'

वह जाने कब से खड़ी सुन रही थी। जब रहा नहीं गया, तो बच्चे को पुकार लगाई।

मुन्ना छलाँग मार कर, सामने आ खड़ा हुआ। पूछा—'क्यों जीजी, क्या है?'

कुछ कारण तत्काल याद न आया। बच्चे के सिर पर हाथ फिराने

लगी खड़ी-खड़ी। फिर सोचकर कहा—'चलो, हाथ-मुँह धोओ। दूध ले आओ ग्वाले के यहाँ से।'

—११—

राजरानी पति को पान के बीड़े देने आई, तो धीरे से कहा—'राजू की बहू दो सौ रुपये माँग रही है।'

भगवानदीनजी ने चारों बीड़े मुँह में ठूँस कर कहा—'ये साले नाते-रिश्तेदार किस क़दर वेहया होते हैं! रुपये माँगते जरा संकोच नहीं, ज़रा झेंप नहीं। इसी से तो मैं किसी साले से ज़्यादा बात नहीं करता। तुम ने उस की बहू को मुँह लगा लिया है। सो कर दी उसने रुपयों की फ़रमाइश!'

राजरानी ने नाराजगी से कहा—'यों ही थोड़े ही माँग रही है। जेवर गिरवी रखना चाहती है।'

'यह एक और रही! रुपये भी दो और कहने को भी हो जाय, कि बहिन होकर जेवर रख लिये!'

'तो यों उधार तो मैं हरगिज न दूँगी। उसका क्या ठिकाना? कल को बिस्तर बाँध कर नौकरी पर चल देगा। रुपये तो उस से वसूल होने से रहे।'

भगवानदीनजी ने हँसकर, कहा—'न वसूल होंगे तो क्या हो जायगा? दो सौ रुपये रह ही जायँगे तो क्या तुम ग़रीब हो जाओगी? आख़िर है तो तुम्हारा भाई ही।'

'ऐसे भाई गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। इस तरह ऐरे-ग़ैरे नत्थू ख़ैरों को भाई बनाने लगूँ तो तन के कपड़े न बचें।'

पर भगवानदीन जी ने ध्यान न दिया। ज़ोर से पुकार लगाई—'भगतसिंह! जूता साफ़ हो गया?'

और नौकर ने जोड़ा सामने ला रक्खा, तो उसमें लापरवाही से पैर घुसेड़ कर, चर्र-मर्र करते, मस्तानी चाल से झूमते बाहर चले। चौखट

के पार भगतसिंह साइकिल पकड़े खड़ा था। उधर न गये। इधर चले आये बैठक में, जहाँ मास्टर बच्चों को पढ़ा रहा था।...

मास्टर साहब हाथ पीछे किये खड़े थे। और तीनों लड़के दबी निगाहों से बाबूजी की ओर देखते हुए, अपनी-अपनी कापियों पर क़लम चला रहे थे।

...मास्टर ने आँख से मुन्ना की ओर इशारा करके धीरे से कहा—'यह लड़का बहुत तेज है।'

'मेरा भी यही ख़्याल है।'

'जब से यह आया है, आपका पुत्र 'डल' होता चला जा रहा है। आश्चर्य की बात है।'

'मेरा पुत्र तो यों भी 'डल' है। हो सकता है, कि इस लड़के की तेज़ बुद्धि और कम उमर देखकर 'इन्फ़ीरियरिटी काम्पलेक्स' फ़ील करता हो।'

'मेरा भी यही ख्याल है।'

'तब आप इस लड़के को उसके साथ मत बिठाइये।'

'जी हाँ, इसको हटा देना चाहिये।'

भगवानदीनजी को यह कुछ अनुचित-सा लगा। बोले—'आप चाहें तो अलग से उसे कुछ टाइम दे सकते हैं। आपके द्वारा उसका उपकार हो जायगा।'

मास्टर ने हँसकर कहा—'इस तरह उपकार करूँ, तो भूखों मरने लगूँ।'

भगवानदीनजी ने ठहाका लगाया। फिर अचानक याद करके बोले—'कहना भूल गया। कल तशरीफ़ मत लाइयेगा। कल ये लोग कोठी जायँगे। वह सिक्रेटरी आ रहा है न। हमारे यहाँ कल शाम को उसकी दावत है।' और बच्चों की ओर देखकर बोले—'सुना तुम लोगों ने, कल तुम्हारी छुट्टी। कोठी पर आना। मुन्ना, तुम भी जरूर आना। अच्छा!'

मुन्ना ने प्रसन्न होकर, स्वीकृति में सिर हिलाया।

उस दिन वे बच्चे जो बिना सिनेमा देखे लौट आये इसका उन्हें मलाल था। मुन्ना से इसलिए ज़ोर देकर कह गये, 'ज़रूर आना।...'

चाचाजी दोपहर को अरहर की दाल से भात खाकर, गाँव चले गये एक बजे वाली गाड़ी से। नन्दिनी ने काम-धन्धा समेट कर, अपने बाल ठीक किये। फिर बच्चों के फटे कपड़े लेकर सींने आ बैठी ऊपर पति के पास।

राजेश्वर लेटा-लेटा, अख़बार पढ़ रहा था। हँसकर बोला—'जान पड़ता है कि तीसरा महायुद्ध होकर रहेगा।'

नन्दिनी कपड़ा सींती रही। राजेश्वर ने रुक कर कहा—'यह लड़ाई होगी अमीरों और ग़रीबों की, पूँजीवाद और कम्यूनिज़्म की। नाश हो जायेगा पूँजीवाद का। कम्यूनिज़्म दुनिया में फैल कर रहेगा।'

नन्दिनी ने टाँका मारते-मारते कहा—'कब फैलेगा कम्यूनिज़्म?'

राजेश्वर फिर अख़बार में लीन हो गया। पर नन्दिनी की विचार-धारा बहती रही। कब फैलेगा कम्यूनिज़्म? कब यह ग़रीब और अमीर का भेद दूर होगा दुनिया से? और जैसे याद आया कि वह ग़रीब है। उसके बच्चे ग़रीब हैं। आज सुबह चाचाजी बच्चों को समझा रहे थे। बच्चे तो नहीं जानते। मुन्ना कितने भोलेपन से पूछ रहा था, 'बाबा, क्या हम ग़रीब हैं?' क्यों चाचाजी सुझा रहे थे कि वह ग़रीब है? बच्चों से क्या ऐसी बातें कहनी चाहिये? और जैसे अनजाने ही उसके मुँह से निकल गया—'बच्चों से क्या ऐसी बातें कहनी चाहिये?'

'कैसी बातें?'—राजेश्वर ने अख़बार नीचे करके पूछा।

नन्दिनी ने काम करते-करते कहा—'सबेरे चाचाजी बच्चों से जाने क्या-क्या बकते रहे। तुमने नहीं सुना था?'

'सुना तो था,' राजेश्वर ने हँसकर कहा—'बूढ़े आदमी हैं। उन से

क्या बहस करता ? उन्हें क्या इतनी अक़्ल है कि बच्चों से यह सब नहीं कहना चाहिये ?'

नन्दिनी से धीरे से कहा—'रामू तो छोटा है, कुछ समझता नहीं। पर मुन्ना के मन पर इन बातों का क्या असर हुआ होगा !'

—१२—

नन्दिनी ने बिलकुल ठीक कहा था। शाम को सूरज डूबे जब बच्चे ब्यालू करने बैठे, तो मुन्ना पूछने लगा—'जीजी, लल्ला के यहाँ कोठरी भर रुपये हैं ?'

रामू ने अपने दोनों हाथ फैला कर कहा—'इतने ?'

मुन्ना ने पूछा—'जीजी, हम लोग ग़रीब हैं ? जीजी, बाबूजी भूखे रह-रह कर पढ़े थे ?'

नन्दिनी ने डाँट कर कहा—'खाना खाओ !'

दोनों बच्चे चुपचाप खाने लगे।

नन्दिनी ने सोच कर कहा—'देखो, पैसे से आदमी बड़ा नहीं होता। समझे ? बड़ा वह होता है, जो अपने देश का भला करे, जो अपनी जाति का, अपनी बस्ती का नाम उज्ज्वल करे।'

बच्चे सुनते रहे और खाते रहे। नन्दिनी को लग रहा था कि उसका यह उपदेश बच्चे बिलकुल नहीं समझे। शायद यही वास्तविकता थी। अब कैसे समझाये ?

मुन्ना ने खाना रोक कर कहा—'जीजी, लेनिन बड़ा आदमी था। क्यों जीजी ?'

'हाँ बेटा ! और देखो, तुम्हारे देश में हुए हैं न महात्मा गांधी जी ? गांधी जी के पास पैसा थोड़े ही था। और गांधी जी से पहिले और भी ढेरों बड़े-बड़े आदमी हुए हैं, बहुत से ऋषि-महर्षि-मुनि हुए हैं। किसी के भी पास पैसा न था। जिसने देश की भलाई की, वही बड़ा हुआ।'

मुन्ना ने कहा—'जैसे लेनिन ने की। उसी ने तो अपने देश में ग़रीबों का राज क़ायम किया था। क्यों जीजी?'

'सो तो किया ही था।'

मुन्ना ने कहा—'हमारे देश में भी अब ग़रीबों का राज होने वाला है। क्यों जीजी? जवाहरलाल नेहरू अब ग़रीबों का राज कर देंगे हमारे यहाँ। जीजी, नेहरू जी ग़रीबों का राज कब क़ायम कर देंगे?'

नन्दिनी ने कहा—'रोटी ख़तम करो अपनी। तरकारी और लोगे?'

रामू ने पानी का गिलास गिरा दिया। नन्दिनी का जी जाने कैसा हो रहा था। आगे झुक कर उसकी पीठ पर एक थप्पड़ मारा और खिन्न होकर बोली—'बेशऊर!'...

...नन्दिनी का वह अनमनापन बना ही रहा। रात को ऊपर आ लेटी तो चुप थी। राजेश्वर ने पुकार कर कहा—'सो गईं क्या?'

'नहीं तो।'

'रुपये मिल गये जिज्जी से?'

'दे तो गया भगतसिंह।'

'कितने?'

'डेढ़ सौ।'

'तुम्हारे ज़ेवर कितने के होंगे अन्दाजन?'

'अन्दाजन क्या, तुले हुए हैं। साढ़े-तीन सौ का होगा सब सोना।'

राजेश्वर ने कहा—'एक बात सुनाऊँ तुम्हें?'

और सुनाया कि वह हीरालाल सर्राफ़ की दूकान पर बैठा था तीसरे पहर। तब भगतसिंह आया जिज्जी के यहाँ से। जेवर वे हाथ में थे। हीरालाल की दूकान से सटी छुग्गामल सर्राफ की दूकान पर दिखाने को लाया था। जोर से पुकार कर पूछ रहा था—'लाला, अच्छी तरह देख दो। सोना ही है न? और कुछ तो नहीं है?'

नन्दिनी ने सब सुन कर भी एक शब्द न कहा।

आँखें खोले लेटी थी और मन ही मन कह रही थी—'कब फैलेगा कम्यूनिज़्म ? कब ग़रीबों का राज होगा ?'

—१३—

दूसरे दिन कोठी पर सेक्रेटरी की दावत थी। फूफा जी आने को कह गये थे। मुन्ना जाने के लिए तैयारी करने लगा। नन्दिनी ने ध्यान न दिया। पर राजेश्वर ने देख कर कहा—'मत जाओ।'

मुन्ना रुँआसा होकर किवाड़ की आड़ में जा खड़ा हुआ। बाप से ज़िद न करता था। यों ही मन मारे खड़ा था। नन्दिनी ने काम करते-करते दो बार इधर आकर देखा तो तरस आ गया। पति की ओर बिना देखे धीरे से बोली—'जाने दो न ! उदास खड़ा है।'

राजेश्वर ने कहा—'नहीं, वहाँ जाने की कोई ज़रूरत नहीं है।'

फिर रसोईघर के आगे आकर उसने पत्नी को सिनेमा वाले दिन की बात सुनाई और फिर लड़के की ओर मुँह करके बोला—'इतनी जल्दी भूल गया उस बात को ?'

सुनकर नन्दिनी भी चुप रह गई और मुन्ना भी जैसे शान्त हो गया। किताब लेकर पढ़ने बैठ गया और शान्तभाव से माँ से पूछने लगा—'भूगोल सुनेगी मुझ से ? मैंने सब याद कर लिया है, नदियाँ, पहाड़, झीलें, सब। ले जीजी, पूछ ले।'

तभी भगतसिंह आ पहुँचा और मुन्ना की ओर देख कर बोला—'मुन्ना बाबू, चलो, सरकार ने तुम्हें बुलाया है। लल्ला और सुरेश तैयार खड़े हैं। चलो जल्दी।'

नन्दिनी क्षण भर सोचती रही, फिर लड़के से उसने जाने को कह दिया।...

कोठी के सामने सड़क के उस पार एक बहुत बड़ा फ़ील्ड ख़ाली था। उसी फ़ील्ड में दूसरी कोठी के बनाने का सामान जमा हो रहा था। गाड़ियों बालू पड़ी थी एक ओर। पास ही मसाले के लिए ईंटों के टुकड़ों

का ढेर लगा था। और आज सारी कोठी, कोठी के बरामदे और सहन, सब ख़ाली किये गये थे।

ठेकेदार को साथ लिये भगवानदीनजी कोठी में सीटों का अरेंजमेंट करवा रहे थे। बालकों को वहाँ से भगा दिया गया था। तीनों लड़के फ़ील्ड में थे, साफ़-सुथरे और दावत खाने की ख़ुशी दिलों में छिपाये। खेल चल रहा था उसी शुभ्र वालुका-राशि के ऊपर। कभी गहराई तक पैर घुसेड़ देते तो कभी टीला बना देते पैरों से।

अचानक सुरेश ने पीछे होकर मुन्ना को हलका-सा धक्का दे दिया। हाथ दोनों उसके जेबों में थे। फौरन लुढ़क गया बालू पर। सुरेश और लल्ला खिलखिलाकर हँस पड़े। मुन्ना को भी ख़ूब हँसी आई। हँसता-हँसता उठा और बालू झाड़कर सुरेश की ओर भागा उसे गिराने। सुरेश दूर तक दौड़ गया। मुन्ना हँसता हुआ फिर बालू के ढेर पर लौट आया। लल्ला अपनी जगह ही खड़ा था और सड़क की ओर मुँह किये जाने क्या देख रहा था कि मुन्ना ने पीछे से उसे धक्का दे दिया। सो लल्ला लुढ़क गया मुँह के बल। मुन्ना और सुरेश ताली पीट कर हँसे। पर लल्ला न हँसा। उसने चुपचाप उठकर अपने कोट से बालू झाड़ी और रूमाल से मुँह पोंछा। फिर मुन्ना की ओर देख कर बोला—'अभी तुम्हारी अक़ल ठिकाने करूँगा!'

मुन्ना भागने लगा। पर लल्ला न भागा उसके पीछे। शान्त रहा। मुन्ना और सुरेश पहिले दूर खेलते रहे फिर धीरे-धीरे लल्ला के पास तक आ गये। लल्ला भी खेलने लगा उन्हीं के साथ।

आख़िर जब उस खेल से तबीयत भर गई, तो सुरेश ने नया खेल खोज निकाला। तीनों साथी पास वाली लारी पर चढ़ गये और 'वन्, टू, थ्री' करके कूद गये बालू के ढेर पर।

दो-तीन बार उसी तरह किया, फिर वहीं लारी पर खड़े होकर कोठी की ओर देखने लगे। शायद कलक्टर साहब आये थे अपनी कार पर।

मुन्ना इस किनारे खड़ा था। खड़ा-खड़ा पलक रोके कलेक्टर साहब की पोशाक देख रहा था। लल्ला चुपके से उसके पीछे आ खड़ा हुआ। लल्ला ने मौक़ा देखा और दोनो हाथो से धक्का देकर मुन्ना को नीचे गिरा दिया।

लारी के ऊपर से इतनी ऊँचाई से गिराया—बालू के ऊपर नहीं, ईंटों के टुकड़ो पर! कैसा बदला लिया!

झुक कर नीचे देखा, लारी से नीचे मुन्ना औंधे-मुँह पड़ा था उन ईंटों के टुकड़ों पर और हिलता-डुलता न था और न चिल्ला ही रहा था। देखकर डर-सा लगा। क्या हो गया इसे?

दूर बरगद के नीचे कार पोंछ कर छोटेलाल ड्राइवर बैठा था। उसने लल्ला को धक्का देते और मुन्ना को लारी से गिरते देखा तो दौड़ा आया बेतहाशा। आकर क्षिप्रगति से मुन्ना को गोद में उठाया। मुन्ना के ओठ नीले पड़ गये थे, नयन मुँद गये थे। शायद बेहोश हो गया है। छोटे-लाल ने जल्दी जल्दी अपने कुर्त्ते से उसका मुख पोंछा और कुर्त्ते से ही हवा करने लगा मुख पर।

लल्ला और सुरेश लारी से नीचे उतर आये थे और सहमे खड़े थे एक ओर।

छोटेलाल ने लल्ला से कहा—'जाओ, जल्दी से पानी तो लाओ कुल्हड़ में दौड़कर!'

लल्ला दौड़कर पानी ले आया। छोटेलाल ने मुन्ना के मुख पर पानी के छींटे दिये फिर थोड़ा-सा पानी उसके ओठों में डाला। मुन्ना को चेतना आई। आँखें खोली और फूट-फूट कर रोने लगा, दायीं बाँह को बाँये हाथ से पकड़ कर। दायीं बाँह में सख्त चोट आ गई थी।

छोटेलाल उसे प्यार से पुचकारता रहा। फिर किसी प्रकार उसने मुन्ना को उठा कर खड़ा किया। उसकी धूल झाड़ी और दुलार से बोला—'चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ बेटा!'

जब तक छोटेलाल मुन्ना को लिये जाता दीखा दोनों लड़के टकटकी बाँधे उधर देखते रहे चुपचाप। फिर लल्ला ने डरे स्वर में सुरेश से कहा—'बाबू जी से मत कहना, अच्छा! पूछें तो कह देना कि अपने आप गिरा था मुन्ना। बाबू जी से नहीं कहोगे न ?'

'नहीं कहूँगा,' सुरेश ने सहमे स्वर में कहा—'मुन्ना के बहुत चोट आ गई है।'

लल्ला ने कुछ न कहा।...

···नन्दिनी आँगन में बैठी पालक का शाक बीन रही थी कि मुन्ना आँसू बहाता आया और उसकी गोदी में गिर कर बिलख कर रोने लगा—'हाय जीजी!'

माँ का कलेजा हिल उठा। बच्चे को छाती में दबा कर रुदन-भरे गले से पूछा—'क्या हो गया रे? क्या हुआ बेटा? अरे, बोल तो लालन!'

मुन्ना ने सिसकते-सिसकते माँ की गोदी में आँसू गिराते-गिराते किसी प्रकार कहा—'मुझे लल्ला ने लारी से ढकेल दिया। मेरी बाँह टूट गई है।'

'हाय लल्ला! हाय हत्यारे!'—नन्दिनी ने रोकर कहा—'दिखा तो, कहाँ चोट लगी है?'

बच्चे का करुण क्रन्दन सुनकर राजेश्वर ऊपर से दौड़ा आया। नन्दिनी ने रोकर कहा—'इसकी बाँह तो देखो ज़रा।'

मुन्ना बिलख रहा था। राजेश्वर ने किसी तरह उसका कोट निकाला फिर कमीज़ ऊपर को समेटी बाँह की।

माँ-बाप ने अब देखा—कुहनी की हड्डी मांस काटकर बाहर निकल आई है।

नन्दिनी ने काँपते ओठों से कहा—'हाय भगवान्!'

रामू पास खड़ा दादा की ओर देख-देखकर रो रहा था। राजेश्वर ने उससे कहा—'तू क्यों रोता है?'

फिर वह उसी हालत में बच्चे को उठा कर डाक्टर के यहाँ ले चला?...

स्क्रीनिङ्ग हुआ, एक्स-रे हुआ, दवाइयाँ लगीं, फिर पट्टी बाँधी गई। बीस रुपये बात करते उठ गये। फिर सारी रात दोनों स्त्री-पुरुष बालक की खाट पर जागते बैठे रहे। मुन्ना को तेज़ बुख़ार चढ़ा था।

ग़नीमत थी कि हड्डी नहीं टूटी, नहीं तो हाथ ही बेकार हो जाता जिन्दगी भर को। ईश्वर के सामने सिर झुकाया और सब सह लिया चुपचाप, बच्चे ने भी, माँ-बाप ने भी।...

दूसरे दिन दोपहर को अचानक भगवानदीनजी यहाँ आ खड़े हुए। बहुत अफसोस जाहिर किया और अन्त में बोले—'इतने ऊपर से कूदा, कितनी नादानी की! क्या किया जाय? बालक है। शैतानी करता ही है।'

किसी ने कुछ प्रतिवाद न किया।

पन्द्रहवें दिन जा कर बाँह की पट्टी खुली। राजेश्वर ने फिर मुन्ना को लल्ला के साथ पढ़ने न जाने दिया।...

महीने पर महीने बीतते गये। जाड़ा चला गया। गरमी की ऋतु आ गई। राजेश्वर पहिले वह 'पाउडर' खाता रहा, फिर केवल सीरप पीता रहा और फिर सीरप भी बंद हो गया। ऐसा ही हाल खाने-पीने का भी हुआ। मक्खन बंद हुआ, फल बन्द हुए, फिर दूध की मात्रा भी क्रमशः घटने लगी। देखकर नन्दिनी दुखी होती और कहती—'खाओगे नहीं तो फिर शरीर कैसे रहेगा?' सुनकर राजेश्वर चुप रहता। इस चुप्पी का अर्थ नन्दिनी जानती थी। और अब उसके पास कुछ भी न था, जिसे बेचकर फल खिलाती, मक्खन खिलाती। मन ही मन व्याकुल होती थी और अकेले में रोती थी।

राम-राम करके राजेश्वर को छुट्टी का आधा वेतन मिला। और राम-राम करके जिस-तिस का आधा-तिहाई कर्जा निबटाया। और राम-राम करके अब किसी प्रकार महीना पूरा करके पहिली तारीख़ पकड़ मिलती थी।

वही पहिली तारीख़ आई थी और रुपये लेकर राजेश्वर अपने स्कूल वाले शहर को जा रहा था कि गरमी की छुट्टियों से पहिले चार दिन हाजिरी दे आये, नहीं तो ढाई महीने का वेतन फिर आधा कट जायेगा।

नन्दिनी बोली—'शुक्लाजी की पत्नी को मैंने चिट्ठी भेज दी है। उन्हीं के यहाँ रहना-खाना। तुम्हें वे तकलीफ न होने देंगी और जल्दी ही चल देना। रुकना मत ज़्यादा।'

राजेश्वर ने कहा—'रुककर क्या करना है मुझे? अभी ब्रजनन्दन मिले थे। वे कह रहे थे कि रात वाली ट्रेन बंद हो गई है बरेली से। अब सबेरे वाली से जाऊँ तो ठीक रहे।'

नन्दिनी ने दुखी होकर कहा—'मैंने तो दाल भिगो दी है, दही-बड़ों के लिए।'

राजेश्वर ने हँस कर कहा—'मुझे तो दही-बड़े खाने नहीं हैं। जिज्जी के यहाँ भिजवाने हैं। सो चाचा जी आ तो गये हैं, उन्हीं से भिजवा देना।'

नन्दिनी ने दुखी होकर कहा—'तुम अपने हाथ से जाकर देते। तुम्हीं से तो कहा था दादाजी ने। ख़ुश होते तुम से।'

राजेश्वर ने कहा—'अब मुझे मत रोको इतनी-सी बात के लिए, नहीं तो रात भर बरेली में पड़ा रहूँगा।'

नन्दिनी चुप हो गई। पिछली बार जब भगवानदीनजी ने दावत की थी अपने दोस्तों की तो दही-बड़े नन्दिनी ने बनाये थे। उन दही-बड़ों की सब ने बहुत तारीफ़ की थी। यहाँ तक कि एक दिन भगवानदीन जी ने स्वयं राजेश्वर से हँसते-हँसते कहा था कि 'भाई, किसी दिन अपनी

श्रीमतीजी से दही-बड़े फिर से बनवा कर खिलाओ। हमें तो आज तक उनका स्वाद याद आता है!'

तब से तो पैसे ही नहीं थे। अब रुपये मिले थे तो नन्दिनी ने दादाजी को दही-बड़े खिलाने की सोची थी और पति के हाथों ही भिजवाना चाहती थी बीबीजी के यहाँ क्योंकि उन्हीं से तो फ़रमाइश की थी दादाजी ने।...

राजेश्वर सुबह की गाड़ी से चला गया। नन्दिनी ने तन-मन जुटा कर दही-बड़े बनाये। दोनों लड़के पास खड़े होकर दौड़-दौड़ कर चीजें ला-लाकर सहायता करते रहे और ख़ुश होते रहे।

पाँच बजे भगवानदीनजी घर आकर खाना खाते हैं। नन्दिनी ने तीन बजते-बजते सब निबटा लिया। फिर बड़े जतन से कलईदार भगौने में एक-एक दही-बड़ा सजाकर चुना, फिर उन पर मसाला छिड़का, फिर पानी से सब किनारी पोछकर दूसरे बरतन में सोंठ भर दी। फिर मुन्ना से पुकार कर कहा—'बुला अपने बाबा को।'

चाचाजी दो दिन पहिले आये थे और आज फिर गाँव को लौटे जा रहे थे किसी सवारी पर। मुन्ना उन्हें ऊपर से बुला लाया तो नन्दिनी ने घूँघट काढ़ कर भगौना उनके आगे रख दिया और मुन्ना से बोली हौले से—'कहो, 'बाबा, तुम भी खाना दही-बड़े।'

चाचाजी ने सुन कर हँसकर कहा—'अच्छा-अच्छा, खा लूँगा। ले सोंठ तू उठा ले।'

रामू कूद कर बोला—'बाबा, हम भी चलेंगे।'

'चल, तू भी चल भाई!'

ये तीनों चले गये तो नन्दिनी ने मुँह खोलि कर पसीना पोंछा। फिर वह वहीं धरती पर लेट कर बयार करने लगी पंखे से।...

राजरानी ने भगौना खोला। इतने सारे दही-बड़े देखे तो बहुत प्रसन्न हुई। पिता से पूछा—'बप्पा, तुम बनवा कर लाये हो?'

बप्पा खड़े हँस रहे थे।

रामू ने चट कहा—'नहीं, हमारी जीजी ने भेजे हैं।'

बप्पा ने उसकी ओर अँगुली उठा कर कहा—'यह लौंडा कितना चालाक है!'

रामू हँसने लगा।

राजरानी ने सब बात समझ कर मुँह सिकोड़ कर कहा—'कौन खायेगा इन्हें? हम लोगों की तो आज दावत है।'

बप्पा ने पूछा—'क्या सरकार भी जायँगे?' वे भगवानदीनजी को सरकार कहा करते थे।

राजरानी ने हँसकर कहा—'उन्हीं के लिए तो दावत की है ठेकेदार साहब ने। वे न जायँगे?'

बप्पा गाँव जाने की तैयारी करके आये थे। अपना सामान और सोटा एक किनारे रख कर बोले—'अच्छा, ला, मुझे तो नमूना दिखा दे थोड़ा-सा। ज़रा चक्खूँ तो।'

और चार दही-बड़े खाकर बोले—'हैं तो ज़ायकेदार। और दे चार।'...

लल्ला ने जिद करके ढाई सौ रुपये में 'हिज मास्टर्स वायस' का ग्रामोफ़ोन ख़रीदा था। चार दिन से लगातार बजा रहा था। अब तबीयत ऊब गई थी। इसलिए सुरेश को इजाज़त दे दी थी बजाने के लिए जरा देर तक। सो वही बाजा लिये बैठा था। और उसने इन दोनों भाइयों को पास बैठा लिया था। लल्ला भी पास खड़ा था और चिलगोजे छील-छील कर खा रहा था। सुरेश ने नया रिकार्ड चढ़ाया। तवा घूमने लगा और यह गाना बजने लगा—

'मेरे घूँघरवाले बाल,
चुटीला लम्बो लइयो...

लल्ला नाचने लगा। नाचते-नाचते उसने पीछे से आकर चुपके से रामू के बाल खींच दिये और हट गया शीघ्रता से। झटका खाकर रामू ने

पीछे घूम कर देखा। लल्ला खड़ा हँस रहा था और चिलगोज़े खा रहा था। रामू फिर गाना सुनने लगा—'*चुटीला लम्बो लइयो*'...

लल्ला ने फिर चुपके से बाल खींच दिये। फिर झटका लगा और फिर रामू ने घूम कर देखा। लल्ला हँसता हुआ चिलगोज़े खा रहा था। रामू फिर गाना सुनने लगा—'तुम शहर बनारस जइयो...'

फिर लल्ला ने बाल खींचे और रामू ने घूम कर देखा। एक छोटा-सा डंडा पास पड़ा था। रामू ने चट वह डडा उठा लिया। लल्ला सिर झुकाये चिलगोज़ा छील रहा था। रामू ने पास आकर ज़ोर से वह डडा लल्ला की बाँह पर मारा।

'अरे, मर गया रे!'—कहकर लल्ला वहीं ज़मीन पर बैठ गया। फिर दूसरे हाथ से वह बाँह पकड़कर चिल्लाकर रोया—'अरे, मार डाला! अरे, मर गया रे!' और लोटने लगा ज़मीन पर।

चाचाजी दही-बड़े खाकर हाथ धोने बैठे थे। राजरानी पानी लेने गई थीं। झपट कर चाचाजी यहाँ आये, घसीट कर रामू को आगे खींचा और पूरी ताक़त से उसके मुँह पर एक झापड़ मारा फिर दूसरा, तीसरा। फिर उसे ऊपर उठा कर पटक दिया और बोले उसे झकझोर कर—'और मारेगा? बोल, और मारेगा?'

लल्ला चिल्लाकर रो रहा था। रामू भी चिल्ला कर रोया। चाचाजी ने एक बार अपने बेवते की ओर देखा, फिर रामू को दोनों हाथों से उठाकर आँगन में पटक दिया और उसके पास लम्बा डग रखकर आये और झकझोर कर बोले—'और मारेगा? बोल, और मारेगा?'

'अब नहीं मारूँगा बाबा! अब नहीं मारूँगा!'—रामू ने करुण स्वर में रोते-रोते कहा।

पर बाबा को सन्तोष न हुआ। फिर से उठाया और पटक दिया। फिर उठाया और तिदरी की ओर फेंक दिया। फिर लपक कर उठाया और आँगन के बीच पटक दिया। फिर उठाया पटकने को कि राजरानी ने आकर

बप्पा का हाथ पकड़ लिया और चिल्लाकर बोलीं—'अरे, मार डालोगे क्या ? अरे, अब मत पटको ! मर जायगा ! अरे, मर जायगा !'

बप्पा का चेहरा सुर्ख़ था और हाँफ रहे थे क्रोध से। राजरानी ने बाप का हाथ छोड़कर बच्चे को पकड़ा।

रामू की साँस रुक रही थी। रो न पाता था। और उसके मुँह से, नाक से ख़ून निकल रहा था।

मुन्ना अवाक् खड़ा था। बाजा रुक गया था और लल्ला चुप हो गया था आँसू पोंछ कर।

राजरानी ने जल्दी-जल्दी अपनी धोती से बच्चे के मुँह का ख़ून पाछा और दुखी होती बोलीं—'चुप हो जा ! चुप हो जा !'

विधवा जिठानी काम छोड़कर दौड़ी आईं और भगतसिंह भी बाहर से दौड़ा आया कुहराम सुन कर। सब स्तब्ध खड़े थे। केवल रामू सिसक रहा था।

चाचाजी ने अपना सामान और सोटा उठाया और बिना एक शब्द बोले धीर गति से गाँव को चल दिये। जब वे आँखों से ओझल हो गये तो राजरानी ने भगतसिंह से कहा—'ले रे, इसे पहुँचा आ।'

भगतसिंह ने आगे बढ़कर रोते-सिसकते बच्चे को गोद मे उठा लिया। मुन्ना भी मुँह सिंये उसके पीछे-पीछे चला।...

घर में सन्नाटा छा गया। राजरानी ने अपनी ख़ून से रँगी धोती को दिखाकर जिठानी से कहा—'सारी धोती रँग गई। राम रे, बप्पा ने आज गजब कर दिया ! मैं तो डर गई भाई ! जो कहीं और दो-चार ठसकी दे देते तो मर ही जाता अभागा !'

जिठानी ने धीरे से कहा—'ऐसा भी क्या गुस्सा ? अबोध बालक को अधमरा कर गये !'

राजरानी ने कहा—'बच गया भाई ! आज वह मर ही जाता। हम तो कहीं मुँह दिखाने लायक़ न रहते।'

जिठानी चुप रहीं।

सुरेश ने तवा उतार कर बाजे का ढक्कन लगा दिया। लल्ला उठकर खड़ा हो गया था और फिर चिलगोज़े खा रहा था।

—१४—

नन्दिनी का बरतन समेटते-समेटते याद आया कि सारे के सारे दही-बड़े उसने भिजवा दिये, एक भी न रक्खा बच्चों के लिये, तो बड़ी कसक लगी। मन ही मन बोली, 'क्या हो गया था मेरी बुद्धि को? दो-चार तो रहने देती बच्चों के लिए।' फिर ख़्याल आया कि चाहे वहाँ खा आयें दोनों। पूरे भगौने भर हैं। बीबीजी बच्चों को बाँटेंगी तो इन्हें भी ज़रूर देंगी। फिर ख्याल आया कि ख़ुद भी तो चख कर देखती कि कैसे बने हैं तो हँसकर मन ही मन बोली, 'लो, तुमने न खाये तो क्या हुआ?' और सहसा ख़्याल आया कि 'तुम खातीं ही कैसे? उनके बिना कैसे खाती?' और तब उसका मन पति के चरणों में जा गिरा। सोचने लगी, 'गाड़ी में बैठे चले जा रहे होंगे। अकेले चले जा रहे होंगे। कहीं हवा न लगती हो खिड़की से। कहीं बुख़ार न आ जाय। कहीं बीमार न पड़ जायँ! इतना कमज़ोर शरीर है...'

तभी किसी के सिसकने की आवाज़ सुन पड़ी। चौंक कर सिर उठाया तो भगतसिंह रामू को गोद में लिये खड़ा था। बच्चे का कमल-जैसा मुख कुम्हलाया हुआ था और आँखों से आँसू बह कर गालों पर जम गये थे। सनाका हो गया। घबरा कर दौड़ी। बच्चे को शीघ्रता से लेकर छाती से चिपका लिया और काँपती ज़ुबान से बोली—'क्या हुआ?'

भगतसिंह चुप रहा।

मुन्ना ने सूखे मुँह से कहा—'इसे बाबा ने मारा है।'

रामू माँ के कन्धे पर सिर रखकर बिलखने लगा। इतना रोया—इतना रोया कि हिचकी बँध गई तो माँ की आँखों में भी पानी भर आया।

भगतसिंह से पूछा उन्हीं पानी-भरी आँखों से बालक की ओर देखते हुए—'क्यों मारा इसे चाचाजी ने ?'

भगतसिंह भी बहुत दुखी हो रहा था तब से। उसे यह घटना बिलकुल अमानवीय लगी थी। दर्दभरे कंठ से उसने सारा किस्सा नन्दिनी को सुनाया।

नन्दिनी ने घबरा कर बच्चे को और ज़ोर से छाती में कस लिया और आँखों से टप्-टप् आँसू गिराती बोली भरे गले से—'अरे राक्षस ! अरे हत्यारे !'

भगतसिंह ने लम्बी साँस खींच कर कहा—'भैना, इसे शायद टट्टी हो गई है। नेकर निकाल दो।'...

कपड़े बदलते समय चेहरा निकट से देखा तो कलेजा फटने लगा। दोनों कोमल गालों पर मोटी-मोटी अँगुलियों के निशान उभर आये थे। रोती गई और कपड़े बदलती गई। मुन्ना उदास मुख लिये पास खड़ा था। उससे रोकर बोली—'तू भी खड़ा देखता रहा नासपीटे !'

मुन्ना का चेहरा और भी उदास हो गया।

जल्दी से खाट बिछाई और रामू को पुचकार कर उस पर लिटाया तो वह दर्द-भरे स्वर में बोला—'सिर में पीर होली है जीजी !'

नन्दिनी पुचकार कर उसका माथा दबाने लगी। रामू ने माँ का हाथ पकड़ कर कहा—'यहाँ नहीं, यहाँ।' और माँ का हाथ सिर के पिछले हिस्से पर ले गया।

नन्दिनी ने धीरे-धीरे अँगुलियों से टटोला तो गूमड़ा निकल आया था बड़ा-सा। फिर दायें, फिर बायें। सब ओर बड़े-बड़े गूमड़े भरे हुए थे।

रामू कराह कर बोला—'बड़ी पीर हो रही है जीजी !'

नन्दिनी की आँखों से आँसू टपकने लगे। धोती से उन्हें पोछ कर बोली—'निर्दयी ने सारा सिर फोड़ दिया है !' और मुन्ना की ओर देखकर बोली—'बेटा रे, तू यहीं बैठा रह भैया के पास। हल्दी-चूना भून

वैसी बात नहीं है। दो दिन में खेलने-कूदने लगेगा। इस तरह घबरा जाती हो! तुम्हें तो मैं बहुत धैर्यशालिनी समझता था। मैं हूँ तो डरने की क्या बात है?'

नन्दिनी ने सन्तोष की साँस लेकर आँसू पोंछे।...

...उन्हीं वकील साहब की दवा देने लगी रामू को। दो-तीन दिन तो दस्तों का बहुत वेग रहा, फिर क्रमशः कमी होने लगी। बच्चा जैसे बिलकुल मुर्झा गया था। मुन्ना के चेहरे की भी हँसी उड़ गई थी। हर समय भाई की खाट के पास बैठा रहता। नन्दिनी उल्टा-सीधा खाने को बना लेती सो वह भी आधा पड़ा रहता। मुन्ना एक रोटी खाकर उठ जाता। नन्दिनी के मुँह में कौर न धँसता।

दस्त कम होने लगे पर बुख़ार बना ही रहा। नन्दिनी ने बराबर बहला-फुसलाकर रामू को रक्खा। पर उस दिन वह बहुत ज़िद पकड़ गया और रोटी के लिए रोने लगा तो तरस खाकर नन्दिनी ने उसे तरकारी के साथ रोटी खिला दी।...

शाम को वकील साहब देखने आये तो रामू की नब्ज़ खटाखट चल रही थी। क्या बात हुई? बुख़ार इतना तेज़ कैसे हो गया? मामाजी अचरज करने लगे तो नन्दिनी ने डरते-डरते कहा कि आज रोटी दे दी थी खाने को।

वकील साहब ने कहा—'ग़ज़ब कर दिया तुमने! नन्दिनी, पढ़ी-लिखी होकर तुमने ऐसी ग़लती कैसे कर डाली? यह तो 'टाइफ़ाइड' कर दिया तुमने बच्चे को!' नन्दिनी भय से थर्-थर् काँपने लगी।...

आठवें दिन राजेश्वर लौटकर आया तो बच्चा रोग-शैया पर पड़ा मिला। नन्दिनी की जान में जान आई। मुन्ना का चेहरा भी उस दिन खिला। और छोटी-सी खाट पर चादर ओढ़े लेटे रामू ने बुख़ार में ही कहा—'बाबूजी, तुम हम को ग्रामोफ़ोन ला दोगे?'

'ला देंगे बेटा', राजेश्वर ने उसके बालों पर हाथ फिरा कर कहा—'तुम अच्छे तो हो जाओ।'

'बाबूजी, मैं कब अच्छा हो जाऊँगा?'

'बहुत जल्दी अच्छे हो जाओगे बेटा!'

'तब तुम मुझे ग्रामोफ़ोन ला दोगे?'

'हाँ बेटा!'...

पर बुख़ार न उतरा बच्चे का। मियाद बढ़ती गई, बढ़ती गई। बिलकुल खाट से लग गया और आवाज़ तक कमजोर पड़ गई उसकी। देखकर नन्दिनी लम्बी साँसें खींचती, राजेश्वर आहें भरता।

बच्चे की औषिध और पथ्य में कुछ ख़र्च हो गया और कुछ घर में। हाथ ख़ाली हो गया तो फिर कर्ज़ लिया। फिर रुपये चुक गये तो फिर कर्ज़ लिया।...

राजेश्वर की दवा बन्द हो गई। दूध तक छूट गया। रोज़ सूखी खिचड़ी खाकर बच्चे की दवा-दारू के लिए भागता फिरा। रोज़ शरीर टूटता-सा लगता। खाँसी आने लगी रोज़। नन्दिनी दुखी होकर कहती—'अपनी ओर ध्यान दो। यों देही क्यों घुलाये डाल रहे हो?'

राजेश्वर मुँह सिये रहता।...

सनीचर की रात को सहसा रामू की साँस-सी चलने लगी। नन्दिनी ने घबरा कर पति को जगाया। राजेश्वर उसी समय वकील साहब के पास दौड़ा गया। वकील साहब सुन कर भागते आये। बच्चे को देखा तो बोले—'ठंड लग गई इसको। न्यूमोनिया के से लक्षण हैं। सुबह डाक्टर वर्मा को बुलाइये। शायद मेरा अनुमान सही न हो। उन्हें दिखलाना ज़रूरी है।'...

दिन निकलते ही राजेश्वर असिस्टेंट-सर्जन के पास दौड़ा। पर डाक्टर साहब न मिले। लखनऊ गये हुए थे। विवश होकर लौट चला। तेज़ चाल से गया था। खाँसी आने लगी। खाँसता गया, खाँसता गया।

फिर जैसे एकदम मुँह में बलग़म भर आया। राजेश्वर ने सड़क पर चलते-चलते ज़ोर से थूका .तो लाल ख़ून निकल पड़ा। कुछ ध्यान न दिया, कुछ परवाह न की।...

सूखे ओंठ लिये बच्चे की खाट के पास आ बैठा। नन्दिनी ने उत्सुकता से पूछा—'डाक्टर मिले ?'

राजेश्वर ने धीरे से कह दिया—'लखनऊ गये हैं।'

तब नन्दिनी ने बच्चे के तकिये के नीचे से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर पति को दिया और बोली—'अभी पोस्टमैन दे गया था।'

राजेश्वर ने शिथिल हाथों से लिफ़ाफ़ा फाड़ कर भीतर का कागज़ निकाला और ध्यान से पढ़ने लगा। स्कूल के सेक्रेटरी ने यह सूचना भेजी थी। लिखा था कि, अब उन्हें राजेश्वर की सेवाओं की जरूरत नहीं। जुलाई में आने का कष्ट न करें।

राजेश्वर ने शान्तभाव से उस चिट्ठी को जेब में रख लिया। फिर वह कमरे में घुस कर कपड़ों वाले बक्स में लौट-पौट करने लगा।

खटपट सुनकर नन्दिनी भी भीतर आ गई। उसे परेशान-सा देख, पूछा—'क्या खोज रहे हो ?'

'मेरी वह ऊनी अचकन कहाँ है ?'

'कौन-सी ? शादी वाली ?"

'हाँ, वही।'

नन्दिनी ने बक्स अपनी ओर खींचकर एक पुरानी धोती निकाली, फिर उसमें से तह करके सँभाल कर रक्खी हुई ऊनी अचकन निकाल कर पति के आगे रख दी।

राजेश्वर ने शीघ्रता से वह अचकन उठा ली और पैरों में जूते डाल कर घर से बाहर हो गया।...

आज उसके पास एक भी पैसा नहीं है, एक भी पैसा नहीं है। यह

अचकन बेचेगा किसी दर्जी के यहाँ। चाहे जितने में बिके, चाहे जो कुछ दाम मिले।...

घण्टे भर बाद वह घर लौटा तो वकील साहब बैठे हुए थे। राजेश्वर को देखते ही बोले—'अब ख़तरा जाता रहा। साँस इसकी ठीक चल रही है। कोई ज़रूरत नहीं है किसी डाक्टर को बुलाने की। लेकिन ज़रा सावधानी से रखिये। पैंतीस-छत्तीस दिन हो चुके। अब बुख़ार इसका उतरने ही वाला है। यही टाइम सबसे ज़्यादा 'क्रिटिकल' होता है। देखिये, यह दवा मैंने लिख दी है। इसे लें आइए किसी केमिस्ट के यहाँ से और इसे 'ख़मीरा मरवारी' दीजिये आज।'

राजेश्वर ने माथे का पसीना पोंछ कर धीरे कहा—'अभी लिये आता हूँ यह दवा।'...

सारे दिन राजेश्वर इसी प्रकार भाग-दौड़ करता रहा। रात को चकनाचूर देह लिये पड़ रहा खाट पर। नन्दिनी ने बहुतेरा कहा, पर वह न उठा भोजन करने। हार कर नन्दिनी ने भी दुख मना कर अन्न न छुआ। पानी पी कर उठ आई और बच्चे की खाट के पास ज़मीन पर ही गुड़ी-मुड़ी हो कर पड़ रही।...

...हाय, क्या हो गया? वकील साहब तो कह गये थे कि अब ख़तरा नहीं है। यह कैसी साँसें ले रहा है?

नन्दिनी ने काँपती ज़ुबान से कहा—'यह कैसी साँसें ले रहा है!'

राजेश्वर हाथ में लालटेन लिये बच्चे के मुख पर झुका खड़ा था। पत्थर की छाती करके बोला—'इसे ज़मीन पर उतारो! अब कुछ नहीं है इसमें!'

नन्दिनी ने बच्चे की खाट पर अपना माथा पटक दिया।

राजेश्वर पत्थर हो कर खड़ा था।

पड़ोसी का लड़का पास आकर बोला—'कफ़न ले आऊँ, भाई साहब?'

राजेश्वर ने चिल्लाकर कहा—'तुम अपने पास से ला सकते हो? मेरे पास एक पैसा नहीं है।'

'ईं ईं ईं!'...

पति के मुँह से ऐसी भयानक चिल्लाहट सुन कर नन्दिनी दौड़ी आई और सोते हुए राजेश्वर का कन्धा हिलाकर, भयभीत स्वर में कहा—'जागो...जागो...'

राजेश्वर घबरा कर खाट पर उठ बैठा। उसने स्वप्न से जाग कर पत्नी की ओर आँखें फाड़ कर देखा और जाने कैसा स्वर करके पूछने लगा—'रामू कहाँ है?'

नन्दिनी ने सान्त्वना के स्वर में कहा—'वह सो रहा है, खाट पर। क्यों?'

राजेश्वर शीघ्रता से बच्चे की ओर दौड़ा, फिर उस के मुख पर अपना मुख कर फूट कर रो उठा।

नन्दिनी ने भागे आकर पति को पकड़ा और रोकर बोली—'यह क्या कर रहे हो?'

राजेश्वर ने बच्चे की छाती टटोलकर कहा उसी तरह रोते-रोते—'मेरा रामू चला जायगा, तो मैं क्या करूँगा?'

नन्दिनी ने रोकर कहा—'ऐसी अशुभ बात न सोचो। वह चंगा हो जायगा। मामा जी कह गये हैं।'

पर राजेश्वर ने न सुना। उसी तरह रोते-रोते कहा—'अब मुझ से सहा नहीं जाता नन्दिनी!'

जाने कैसे मुन्ना की आँख खुल गई। माँ-बाप को यों रोता देख कर वह भी पास आकर रोने लगा।

राजेश्वर ने रोते-रोते कहा—'अब ज़हर खा लो, नन्दिनी! चारों जने ज़हर खा लो!'

मुन्ना बाप के गले में बाँहें डाल कर कातर स्वर में रोता-रोता बोला—'रोओ मत, बाबू जी !

नन्दिनी ने स्वामी का हाथ पकड़ कर कण्ठ को दृढ़ करके कहा—'कैसी बातें कर रहे हो ? तुम इन्सान हो ! इस तरह धीरज न छोड़ो ! भगवान् पर विश्वास करो। यह ग़रीबी हमेशा न रहेगी। तुम्हारे भी दिन फिरेंगे। वह दिन दूर नहीं है। सब के दुख मिटेंगे। और मैं कहती हूँ, तुम्हारे बच्चे का अमंगल न होगा। तुमने कोई पाप नहीं किया है। तुम्हारा अमङ्गल न होगा, मैं कहती हूँ...'

छोटा डाक्टर

कम्पाउंडर श्यामसुन्दर शर्मा डिस्पेन्सरी से बाहर निकला तो धूप ढल रही थी। उसने एक बार कोट की जेब में हाथ डालकर इन्जेक्शन का डिब्बा देखा फिर तीनों सीढ़ियाँ पार करके लपकता चल दिया।

बात की बात में बाज़ार में आ पहुँचा। पर आज उसने नज़र न डाली तमोली की दूकान पर। लम्बे डग भरता आगे बढ़ा जा रहा था कि जाने किस प्रिय बन्धु ने पुकार कर कहा—'डाक्टर, पान खाते जाओ।'

श्यामसुन्दर ने सिर घुमा कर पीछे देखा। गंभीरता से बोला—'फ़ुरसत नहीं है।' और आगे बढ़ गया।

हलवाई की दूकान आ गई। हलवाई कढ़ाही आगे रक्खे बैठा किसी गाहक से हँस रहा था। उसने कम्पाउण्डर को कतरा कर जाते देखा तो गरदन ऊँची करके चिल्लाया—'डाक्टर, ताज़ा खोआ भुना है। खाते जाओ थोड़ा।'

श्यामसुन्दर ने बिना उधर देखे शान्त स्वर में कहा—'फ़ुरसत नहीं है।' और आगे बढ़ गया।

लाला की बैठक आ गई। मजमा इकट्ठा था वहाँ। एक जवान साधु खंजड़ी बजा कर भजन सुना रहा था। कैसी मोहक तर्ज़ है! पर श्यामसुन्दर न रुका।

ननकू सुनार ने सामने से राह रोक ली और बंडी में हाथ डालता बोला—'भैया डाक्टर, सदर से यह कागज़ आया है। ज़रा पढ़ कर बताओ कि क्या लिखा है।'

श्यामसुन्दर ने स्वर को तीव्र करके कहा—'मुझे फ़ुरसत नहीं है।' और आगे बढ़ गया।

अखाड़ा आ गया। तीन चार मस्त, कसरती जवान तेल-फुलेल लगाये बीड़ी पी रहे थे। उनके बीच में एक साथी लाल लँगोटा कसे, नङ्ग-धड़ंग बैठा, तेजी के साथ लोढ़ा चला रहा था। भंग घुट रही थी। उसी ने कम्पाउण्डर को लपक कर जाते देखा तो खड़ा हो गया उठकर और छाती पर हाथ रख कर झूम कर बोला—'गुइयाँ, जवानी की किसम है तुझे जो बिना चढ़ाये जाय!'

पर श्यामसुन्दर ने कसम का ख़्याल न किया। आगे बढ़ता-बढ़ता चिल्ला कर कहता गया—'फ़ुरसत नहीं है गुइयाँ।'

बाज़ार ख़तम हो गया। श्यामसुन्दर दस-बारह क़दम और अधिक तेजी से बढ़ा था कि अचानक उसकी नज़र दाहिनी ओर गई। ठिठक गया। चाल एकदम धीमी पड़ गई। फिर अनायास ही उसके पैर उधर को मुड़ गये।

राह से दस-ग्यारह गज़ के फ़ासले पर पक्का कुआँ था, जिसके चारों ओर गोलाकार चौतरा बना था। चौतरे के नीचे से एक सँकरी पगडंडी दूर तक चली गई थी और इस ओर एक कनेर खड़ा था, जिसकी लम्बी शाखाएँ हमेशा कुएँ पर छाया किये रहती थीं और जिससे दिन-रात पीले, बाजेनुमा फूल झरते रहते थे।

श्यामसुन्दर पैरों की चाप दबाता उसी कनेर तले आ खड़ा हुआ। एक बार चारों ओर दृष्टि डाली और धीरे से खाँसा।

तब जो एकाकिनी अपना घड़ा भर रही थी, चौंक कर उधर देखने लगी। उसके ओठों पर मुसकान खिल उठी। पर उसने अपने को हँसने न दिया और गोल बाँहें फ़ुर्ती से रस्सी को ऊपर खींचने लगीं।

श्यामसुन्दर फिर खाँसा, शायद गला ठीक करने के लिए, और मुदित मन से हौले-हौले गाने लगा—

'हम से न भरा जाय रे
राजा, तोरा पनिया...'

परन्तु पानी भरने वाली ने क़तई ध्यान न दिया। रस्सी इकट्ठी की और पलक मारते भारी घड़ा कमर पर रख लिया।

तब श्यामसुन्दर स्वर को और मधुर करके गाने लगा—

'पतली कमरिया, भारी गगरिया,
तिरछी नजरिया, सूनी डगरिया,
अरे, हम से न भरा जाय रे, राजा...'

तब रोकते-रोकते भी गगरिया वाली की नज़र उधर आ गई। और उस भोली नज़र ने देखा कि श्यामसुन्दर अपनी पतली कमर पर अदृश्य भारी गगरिया और तिरछी नज़रिया लिये खड़ा है। तब हँसी रोके न रुकी। और सहसा बिजली-सी कौंध गई कुँए के किनारे।

तभी एक बड़ी रूखी आवाज़ सुन पड़ी—'डाक्टर!' और एक महा-बलिष्ठ, लम्बा-चौड़ा, प्रौढ़ व्यक्ति आ धमका, लट्ठ हाथ में लिये।

डाक्टर को कनेर की डाल पकड़े देखा उसने तो अजीब-सी टोन में पूछा—'क्या कर रहे हो यहाँ?'

डाल पर नज़र जमाये श्यामसुन्दर सहमी-सी आवाज़ में बोला—'ज़रा दातून तोड़ रहा था।'

लट्ठ वाले ने सिर हिला कर कहा—'दातून फिर तोड़ लेना भतीजे। दया करके भजनलाल के यहाँ हो आओ पहिले। समझे? वहाँ तुम्हारा इन्तज़ार हो रहा है।'

श्यामसुन्दर ने डाल फ़ौरन छोड़ दी और हाथ झाड़ कर बोला—'भाड़ में जाय दातून चचा! मैं चला—'

और चलते-चलते उसने एक बार दबी निगाहों से उधर देखा। दूर, सँकरी पगडंडी पर एक सुगठित देह, पानी-भरा घड़ा लिये, मन्दगति से चली जा रही थी।...

इंजेक्शन लगा कर श्यामसुन्दर ने हाथ धोये। फिर अँगौछे से हाथ पोंछता-पोंछता भजनलाल की लड़की से अकड़कर बोला—'यहाँ खड़ी-

खड़ी मेरा मुँह क्या देख रही है ? चूहेखानी, जा, पान लगा कर ला जल्दी से !'

लड़की हँस कर भीतर भाग गई।

बड़ा लड़का मदरसे से पढ़ कर उसी दम लौटा था। अपना बस्ता रख कर कुम्हलाया मुख लिये माँ को पुकार रहा था। श्यामसुन्दर ने खटिया पर बैठ कर उसकी ओर हाथ हिला कर कहा—'इधर आ रे !'

लड़का सहम कर पास आ खड़ा हुआ तो श्यामसुन्दर ने आँखें चमका कर कहा—'अबे उल्लू, पैर क्यों नहीं छूता मेरे ?'

तभी माँ निकल आई भीतर से पान लिये।

श्यामसुन्दर ने फ़ौरन कहा—'भाभी, यह गधा मेरे पैर नहीं छू रहा है।'

भाभी ने लड़के को पुचकार कर कहा—'छू लो बेटा ! अपने चाचा के पैर छू कर पालागन करो।'

आख़िर लड़के ने पैर छू लिये।

श्यामसुन्दर उसकी पीठ ठोंक कर बोला—'जीते रहो !' फिर भाभी की तरफ़ मुख़ातिब होकर कहा—'सिर्फ़ सन्तरे का रस देना आज दद्दा को, और कुछ नहीं। समझीं ?'

भाभी ने समझ कर कहा—'देवर, सन्तरा कहाँ पाऊँगी मैं ?'

श्यामसुन्दर ने झट जेब में हाथ डाल कर चार सन्तरे निकाले और भाभी के आगे करके लापरवाही से बोला—'लो, थामो। 'कहाँ पाऊँगी !' मैं मर गया हूँ क्या ? ज़रा माँग कर तो देखो ! ख़ून माँगो शरीर का तो ख़ून निकाल दूँ अपना। मैं किस लक्ष्मण से कम हूँ ?'

भाभी की आँखें सजल हो गईं।

श्यामसुन्दर ने सन्तोष के साथ कहा—'आज बाग़ का माली दे गया था ये सन्तरे। उसकी सरहज बीमार होकर आई है। और किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो बतलाओ भाभी !'

भाभी काँपते कंठ से बोलीं—'मैं तुम से कभी उरिन नहीं हो पाऊँगी देवर !'

श्यामसुन्दर ने मानों सुना ही नहीं। भजनलाल ने करवट बदल ली थी। श्यामसुन्दर ने उनसे धीरे से कुछ कहा और पैर छू कर भाभी से बोला उठते-उठते—'अब चल दिये भाभी, सलाम !'...

...फिर वही कुआँ और कनेर सामने आ गया। सूरज का गोला नीचे उतर गया था, और गाँव का चरवाहा पशुओं का झुण्ड हाँकता चला जा रहा था पीछे धूल-गुबार छोड़ता। श्यामसुन्दर घड़ी भर रुका। रुक कर सुनसान पड़े कुएँ को ताकता रहा। और गाना ओठों पर आ गया उसके—'सूनी पड़ी रे सितार !'

फिर सहसा ख़्याल आया कि सितार और कुएँ से कोई सम्बन्ध नहीं है तो चुपचाप चल दिया।...

अखाड़ा आया सामने। भङ्ग छन चुकी थी और एक जोड़ छूटा था कुश्ती का। श्यामसुन्दर कूद कर चौतरे पर चढ़ गया और अपने साथी को पहिचान कर उल्लास से बोला—'शाबाश! उल्टी पटकन दे बेटा को !'

दूसरा आदमी एक पुरबिया था। यहाँ बड़े लाला के यहाँ नौकरी करता था। वह भी श्यामसुन्दर को भली भाँति जानता था। बहुत तगड़ा शरीर था। श्यामसुन्दर की बात से जल कर उसने जो ताक़त लगाई तो श्यामसुन्दर का साथी पड़ाक-से चारों खाने चित्त जा पड़ा। पुरबिया ने उसे वहां छोड़ श्यामसुन्दर के आगे आकर डाँट कर कहा—'हम का तोहार दुश्मन हई सरऊ ? तनी एहर आवा। तोहू का मजा चखाय देई बेटा !' और वह लपक कर श्यामसुन्दर का हाथ पकड़ने लगा।

श्यामसुन्दर छलाँग मार कर भाग खड़ा हुआ।...

लाला की बैठक के आगे ताश जम रहा था। श्यामसुन्दर चुपके से एक किनारे बैठ गया और बाज़ी देखने लगा। वह ऐसे कोने पर था जहाँ

से दो आदमियों के ताश दीख रहे थे। एक के ताश देख कर दूसरे के पास सरक कर बोला—'कर दे तुरुप चाल! छोड़ इक्का!'

देखते-देखते आनन-फ़ानन उसने बाज़ी जिता दी।

लाला ख़ुश हो कर बोले—'इधर आओ डाक्टर!'

पर श्यामसुन्दर ने कहा—'जनाब, अब नहीं खेलते हम। हार हो गई तुम्हारी।' और चल दिया।...

हलवाई सुखराम अपनी दूकान पर पीनक का मज़ा ले रहे थे। आँखें बन्द थीं और सिर दीवार के सहारे टिका था।

श्यामसुन्दर ने एक बार अच्छी तरह उनकी परीक्षा की। बिलकुल चैतन्यहीन लगे। जूते उतार कर भीतर घुसा और एक दोने में चार पेड़ा लेकर बाहर सुखराम के पास आ बैठा। आनन्द से पेड़े खा लिये और दोना दूर फेंक दिया। फिर हलवाई को झकझोर कर बोला—'सुक्खू चाचा! ए सुक्खू चाचा!'

सुखराम ने पीनक से चौंक कर आँखें चीरीं, ज़ोर लगा कर। श्याम सुन्दर ने सिर हिला कर कहा—'अरे, ज़रा पानी तो पिलाओ। बड़ा प्यासा हूँ।'

हलवाई ने होश में आकर कहा—'कुछ मीठा दूँ? पेड़ा दूँ? ताज़े बने हैं।'

श्यामसुन्दर ने लापरवाही से उत्तर दिया—'आज एकादशी है चाचा! निर्जला व्रत हूँ।'

लोटा भर पानी पीकर तमोली की दूकान पर आ खड़ा हुआ। दो बीड़े दाबे ठाठ से, सुरती डाली चार पत्ती, और कैंची की सिगरेट सुलगा कर तमोली से बोला—'तुम्हारी जोरू तो अब ठीक है न?'

तमोली हाथ जोड़ कर बोला—'सब आपकी दया है सरकार! चूना और दूँ?'

श्यामसुन्दर ने ज़रा-सा चूना और चाटा। फिर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता अपनी कोठरी में जा पहुँचा।...

डिस्पेंसरी का नौकर लालटेन जला कर देने आया तो श्यामसुन्दर खुरदरी खाट पर टाँगें पसारे लेटा था। नौकर बोला—'बिस्तर बिछा दूँ, मालिक! दूध आ गया है आपका। गरम हो रहा है।'

श्यामसुन्दर ने अनमने भाव से कहा—'रहने दो भाई! मजे में लेटा हूँ। दूध आज नहीं पिऊँगा। बच्चों को पिला देना।'

नौकर क्षण भर खड़ा रहा। फिर डरता-डरता बोला—'नये डाक्टर साहब आये थे अभी। आप को पूछ रहे थे।'

श्यामसुन्दर चुप रहा।

नौकर बोला—'बड़ा तेज़-मिज़ाज लगता है मालिक! कह रहे थे, 'यह घुइया क्यों बो रक्खी है यहाँ? यह क्या तुम्हारा खेत है?'

श्यामसुन्दर ने हँस कर पूछा—'तुमने क्या जवाब दिया?'

'क्या जवाब देता मालिक? सिर झुकाये सुनता रहा। पुराने डाक्टर साहब मुझे बेटे की तरह मानते थे। इनका अभी से यह हाल है। कैसे पार लगेगा?'

श्यामसुन्दर ने अँगड़ाई ले कर कहा—'तू क्यों मरा जाता है रे? मैं तो हूँ ही। जा, भगवान् का नाम ले। खा-पी। चिन्ता मत कर लछ-मना! कुछ डर नहीं है।'

पर श्यामसुन्दर स्वय चिन्तामग्न हो गया। पुराने डाक्टर नौकरी छोड़ कर काशीवास करने चले गये। अब नये डाक्टर आये हैं। कल से वे ही डिस्पेंसरी में बैठेंगे। ज़िन्दगी का रवैया बदलना चाहता है क्या? कैसा व्यवहार करेंगे नये साहब? क्या बहुत सख़्त तबीयत के हैं? क्या किसी दिन अपमानित भी करेंगे? क्या गाली देने की भी आदत है? होगा जी! ईश्वर पर छोड़ो सब। एक शैर याद आ गया—

'एहसान नाख़ुदा का उठाये मेरी बला,

किश्ती ख़ुदा पै छोड़ दूँ, लंगर को तोड़ दूँ ।'

श्यामसुन्दर ने दो बार इस शेर को दोहराया फिर करवट बदल कर सोने की चेष्टा करने लगा...।

नींद का झोंका आया ही था कि जाने कौन पुकार कर जगाने लगा।

यह पटवारी हरिद्वारीलाल का भतीजा था। हाथ में लालटेन और लाठी लिये सिरहाने खड़ा-खड़ा बोला—'दाऊ के पेट में बड़े ज़ोर का दर्द उठा है। आपको बुलाया है।'

श्यामसुन्दर बड़ा खिन्न हुआ। फिर कुछ दवा शीशे के गिलास में डाल कर उदास स्वर में बोला—'चलो।'

पटवारी का घर बस्ती के उस छोर पर था। जुलाहों के मुहल्ले से होकर जाना पड़ता था। चारों ओर गन्दगी थी। श्यामसुन्दर लालटेन की रोशनी में ज़मीन देखता आगे बढ़ने लगा।

सहसा एक टूटे-फूटे दरवाज़े पर उसकी दृष्टि आप ही आप जा पहुँची। अँधेरे में वह घर यों खड़ा था मानों कोई भिखारी हो, जिसके तन पर चीथड़े लटक रहे हों और हड्डियों का ढाँचा उन चीथड़ों के बीच जहाँ-तहाँ चमक रहा हो। श्यामसुन्दर अँधेरे में उस चौखट को लाँघता आगे बढ़ने लगा तो एक बार फिर उसकी आँखें पीछे को लौटीं।

पटवारी के भतीजे ने आगे से चिल्ला कर कहा—'डाक्टर साहब, गड्ढा है यहाँ। सँभल कर आइये।'...

पटवारी जी दर्द की बेचैनी से बुरी तरह छटपटा रहे थे। श्यामसुन्दर उनके पास मूढ़े पर आराम से बैठ गया। शान्तभाव से पूछा—'क्या खाया था आज? सुअर का गोश्त?'

पटवारी ने क्रुद्ध कर कहा—'क्या बकते हो डाक्टर? हमने तो आज सिर्फ़ खिचड़ी खाई थी।'

श्यामसुन्दर ने कहा—'ख़ैर, जो कुछ भी खाया हो, दवा मैं ले आया हूँ। अस्पताल की नहीं, अपनी प्राइवेट है। दाम लगेगा इसका। अस्पताल

की भी लेता आया हूँ। ये रहीं मुफ़्त की गोलियाँ।' फिर गोलियों की पुड़िया दिखा कर बोला—'बोलो, कौन-सी खाओगे, मुफ़्त की या पैसों वाली? पैसों वाली में गारंटी है। चार मिनिट लगेंगे दर्द हवा होते। मुफ़्त वाली का राम मालिक है। फायदा कर भी सकती है, नहीं भी। बोलो, कौन-सी दूँ?'

पटवारी ने तड़प कर कहा—'अरे ज़ालिम, पैसे वाली दे।'

श्यामसुन्दर ने भतीजे से पानी मँगवाया और शीशे का गिलास गोद में रख कर बोला—उठिये साहब, लीजिये यह गिलास पकड़िये और तैयार रहिये। ज्यों ही पानी डालूँ, फौरन मुँह लगा दीजिए गिलास में और गटागट्ट पी जाइए।'

मालकिन भी कोने में आधा घूँघट काढ़े खड़ी देख रही थीं। और भतीजा भी नज़र जमाये देख रहा था। श्यामसुन्दर ने कहा—'रेडी!' और ज़रा-सा पानी गिलास में छोड़ा कि भर्र-भर्र करता वह गिलास झागों से भर उठा। 'पियो जल्दी!' श्यामसुन्दर ने चिल्ला कर कहा और पटवारी जी गटागट्ट पीने लगे उन झागों को।

ठीक चार मिनिट लगे। हरिद्वारीलाल का दर्द ग़ायब हो गया। शिथिल हो कर पड़े थे अब, गद्‌गद थे और टुकुर-टुकुर डाक्टर को देख रहे थे।

श्यामसुन्दर ने शान्तभाव से कहा—'लाओ, निकालो। दो रुपये निकालो। तुम अपने आदमी हो, ग़ैर से चार लेता। पान-वान कुछ है कि नहीं घर में? तुम बड़े कंजूस हो। अरे, ब्राह्मण दरवाज़े पर आया है, कुछ तो सेवा-सत्कार करो!'...

भतीजा थोड़ी दूर तक साथ-साथ आया। श्यामसुन्दर ने उसे लौटा दिया और जाने क्या सोचता जुलाहों के मुहल्ले में आ पहुँचा, जहाँ वह घर खड़ा था भिखारी जैसा। क्षण भर वह उस टूटे दरवाज़े पर ठिठका रहा। फिर मुनिया को आवाज़ देता अँधेरे में भीतर घुस आया।

एक कोने में मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी और ओसारे में बैठी मुनिया निःशब्द रो रही थी। उसके शान्त, सौम्य, सलोने मुख पर आँसुओं की धारें बह रही थीं और सारे घर में उदासी साँसें खींच रही थी दुखभरी।

श्यामसुन्दर मानों पाताल लोक में खड़ा था। मुनिया को पुकार कर बोला—'इधर आ।' और उसका आँसुओ से धुला मुख नज़दीक से देख कर कलेजे पर चोट खाकर बोला—'रो क्यों रही थी चुड़ैल ?'

बूढ़ा बाप दिन भर मज़दूरी करके जो पैसे लाया था, वे कहीं राह में गिर गये। कुरते की जेब फटी थी, सो पता नहीं चला अभागें को। कल दोपहर की खाये हैं। आज सारा दिन निराहार बीता और अब कल भी निराहार बीतेगा। रोती रोती बोली—'मैं तो भूखी रह लूँगी, पर अब्बा से कैसे रहा जायगा ?'

श्यामसुन्दर ने पूछा—'हैं कहाँ बड़े मियाँ ?'

आँसू पोंछती बोली—'पानी भरने गये हैं। रात में मुझे अकेली जाने नहीं दिया।'

फ़र्लाङ्ग भर पर कुँआ था। वहीं से सारे जुलाहे पानी लाते थे। श्यामसुन्दर लम्बी साँस खींच कर बोला—'थोड़ी देर पहिले आ जाता तो उन्हें न जाने देता। यह ले।' और दो रुपये का नोट मुनिया की हथेली पर रख कर बोला—'पटवारी को ठग कर लाया हूँ। इनसे काम चला। मैं फिर आऊँगा।'

मुनिया फूट-फूट कर रोने लगी। दो क्षण श्यामसुन्दर स्तब्ध खड़ा रहा फिर प्यार से उसके आँसू पोंछ कर गद्‌गद स्वर में बोला—'इस तरह दिल छोटा न कर, इस तरह आँसू न बहा। तू तो उस दिन कहती थी कि 'भैया, मैं दुख में भी हँसती रहती हूँ।' भूल गई चुड़ैल ? अब मत रो, अच्छा !'

जुलाहों के मुहल्ले से निकलते-निकलते श्यामसुन्दर को एक गाना याद आया तो स्वर से गाने लगा—'मुर्दादिल मत रो, यहाँ आँसू बहाना है मना।'

यही एक मिसरा वह बराबर अपने डेरे तक गाता चला आया।

× × ×

सुबह तड़के ही नये डाक्टर ने अपनी कुरसी पर बैठ कर यहाँ का रगढंग देखा तो उन्हें बड़ा अजीब-सा लगा। सब कुछ जैसे अस्त-व्यस्त था। यहाँ तक कि रोगी भी नहीं आ रहे थे, हालाँ कि दिन काफ़ी चढ़ आया था।

उस छोटी-सी, पुरानी, धूल-भरी .डिस्पेंसरी में बैठे-बैठे उन्हें उस विशाल, स्वच्छ अस्पताल की याद आ गई, जहाँ कुछ दिन पहिले वे सरकारी डाक्टर थे।

एक अँग्रेज़ से झगड़ा हो गया था उनका। उसने कुछ अपशब्द कहे तो इन्होंने भी कुछ ऐसा कहा जो आपत्तिजनक था। उसी बात को लेकर केस चला। यदि उस अँग्रेज़ से वे माफी माँग लेते तो शायद नौकरी न जाती। पर माफ़ी न माँगी उन्होंने और नौकरी चली गई। राजा साहब के सामने सारी घटना हुई थी। राजा साहब ने दाद दी और यहाँ इस डिस्पेंसरी में बुला लिया।

यह डिस्पेंसरी सरकारी न थी। राजा साहब के पिता के नाम पर ग़रीब प्रजा के हितार्थ इसे इस कस्बे में खोला गया था। यह कस्बा राजा साहब की रियासत में ही.था और पाँच हजार से ऊपर आबादी थी इसकी।

नये डाक्टर को रहने के लिए मकान मिला था.और एक नौकर भी दिया गया था सेवा करने को। बैठे-बैठे सोचते रहे, 'यहीं रहना है मुझे! आत्म-सम्मान का यही पुरस्कार है?' सिर को एक झटका दिया और अपने से ही बोले, 'ख़ैर, मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा।'

तभी श्यामसुन्दर ने खाँस कर उनका ध्यान भंग कर दिया। हकला कर बोले—'क्या है ?'

श्यामसुन्दर ने आगे बढ़ कर कहा—'साहब, चन्दन लाया हूँ।'

'चन्दन ?'

'जी, असली मलयागिरि का है। लगा दूँ साहब ?'

डाक्टर साहब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उन्होंने शायद ही कभी माथे पर चन्दन लगाया हो। यह आदमी बड़ा अजीब है!

श्यामसुन्दर और पास आकर अदब से बोला—'पुराने साहब रोज यहाँ चन्दन लगा कर बैठते थे। भगवान् का प्रसाद है यह। लगा दूँ साहब ? दिन भर तरावट देता रहेगा।'

डाक्टर साहब ने कुढ़ कर कहा—'लगा दो।'

तब श्यामसुन्दर ने बहुत सँभाल कर उनके माथे पर एक सफ़ेद चन्दन का टीका लगा दिया। फिर शीघ्रता से अपनी जेब से पुराना मटमैला दो आने वाला शीशा निकाल कर डाक्टर साहब के मुँह के ठीक सामने करके खड़ा हो गया।

'यह क्या ?'

'शीशा है साहब! देख लीजिये चन्दन।'

डाक्टर साहब ने श्यामसुन्दर के हाथ से वह शीशा छीन लिया और दूर कोने में उसे फेंक कर अति खिन्न होकर कहा—'आइन्दा ऐसी हरकत न होनी चाहिये। समझे ?' और दोनों हाथों से सिर पकड़ कर बैठ रहे।

श्यामसुन्दर थोड़ी देर स्तब्ध खड़ा रहा। फिर उस टूटे शीशे को उठा कर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।...

अपनी जगह पर लौट आकर वह छोटी-बड़ी शीशियों के बीच गुम-सुम होकर बैठ गया। जेब से टूटे हुए शीशे को निकाल कर देखा। जैसे कलेजा ही चिर गया हो बीच से। एक लम्बी साँस ली और निरीह भाव से सामने राह की ओर देखने लगा।

तभी पाठशाला के पंडितजी आ गये तो प्रणाम करके श्यामसुन्दर ने कुशल पूछी।

पंडितजी के मुख में सुरती भरी थी। नीचे के ओठ को ऊपर की ओर खींच कर विचित्र स्वर में बोले—'मुझे प्रतिश्याय की सम्भावना है। श्रीमान् के यहाँ कोई 'नस्य' है?'

श्यामसुन्दर ने हाथ जोड़ कर कहा—'पंडितजी, मैं कुछ समझ नहीं पाया। हिन्दी में कहिये।'

पंडितजी ने कहा—'नस्य का अर्थ नहीं जानते? नस्य अर्थात् हुलास।'

श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा—'समझ गया।' और पुड़िया में हुलास देकर कहा—'श्रीमान्, इसे यहाँ न सूँघें। छींकें आयेंगी तो यहाँ भी इस रोग के कीटाणु फैलने की आशंका है।'

पंडितजी हँसते हुए चले तो दरवाज़े पर बहेरे जी से टक्कर खा गये। उसने झट चरण-स्पर्श कर लिया तो शान्त होकर बढ़ गये।

बहेरेजी मारवाड़ी बनिया था। जाने कब यहाँ आकर जम गया था। उसकी लेन-देन की कोठी थी। ज़ेवर गिरवी रखता था ग़रीब गृहस्थों के, दीन किसानों के।

सेठजी श्यामसुन्दर के अति निकट आकर हाथ जोड़ कर बोले—'म्हारी घरवाली का पेंडू दरद करे जी, डाक्टरजी! कोन्हो चोखी-सी दवा दो।'

श्यामसुन्दर ने गम्भीर होकर कहा—'सेठजी, मुझे दीखता है कि भगवान् ने तुम्हारे ऊपर कृपा-दृष्टि की है। समझे?'

सेठ जी गद्गद हो गये। शायद आँखों में आँसू आ गये। भगवान् को स्मरण करके सिर हिला कर रुद्ध कंठ से बोले हाथ जोड़े—'समझ गयो जी। ब्राह्मण को आशीर्वाद ब्रह्मा को वचन है।' और पास आकर

बोले—'अब क्या करूँ डाक्टर जी ? म्हाने कहो न, खरचा की चिन्ता न करो।'

श्यामसुन्दर ने कहा—'सुनो, मैं एक लेप देता हूँ। इसे कड़ुये तेल में मिलाकर लगवा देना, जहाँ तकलीफ हो। फिर मिलते रहना मुझ से। खूब सावधान रहने की जरूरत है सेठ जी, समझे ? इसमें जान-जोखिम भी है औरत को।'

सेठ का चेहरा एकदम उतर गया। व्यस्त, करुण दृष्टि से श्यामसुन्दर को ताक कर बोले—'थारी सरन हूँ डाक्टर।' फिर काँप कर बोले—'परदेश माँ पड़या हूँ, महाराज! म्हारी रच्छा करो।' और जल्दी से ब्राह्मण के पैर छू कर डबडबाई आँखें लिये खड़े हो गये।

श्यामसुन्दर ने डिबिया में लेप दिया और सेठ की पीठ ठोंक कर कहा—'कोई डर नहीं है सेठ जी! मैं जिस का रक्षक हूँ, उसका यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लाओ, दाम निकालो। यह तो प्राइवेट दवा है। छिपाकर रखनी होती है।'

'क्या दूँ ?'—सेठ अंटी टटोल कर बोले।

श्यामसुन्दर ने अँगुलियाँ हिला कर कहा—'पाँच रुपये। ज़्यादा नहीं लूँगा।'

फिर क्रमशः रोगियों का ताँता लग गया। उसके हाथ फुरती से चलने लगे। दवायें देता गया, पट्टियाँ बाँधता गया। हँसी-मज़ाक करता गया हर-एक से। रह-रह कर सारा कमरा अट्टहासों और खिलखिलाहटों से गूँजता रहा।...

ग्यारह बजे डिस्पेंसरी बन्द हो जाने का समय था, पर यह नियम शायद ही कभी पूरा हो पाता हो। अक्सर बारह बज जाते, श्यामसुन्दर को काम निबटाते-निबटाते। वही आज भी हुआ। नये डाक्टर साहब ठीक समय पर हैट लगाकर चले गये। पर श्यामसुन्दर की छुट्टी न हुई। स्टूल से उठते-उठते, बूढ़ा कुन्दन भुराव लँगड़ाता-लँगड़ाता सामने आ खड़ा

हुआ। उसकी 'परिया' पकी थी। खूब गहरा घाव हो गया था। श्याम-सुन्दर ने बड़ी सफ़ाई से मलहम लगा कर नयी पट्टी बाँध दी और उन्मुक्त प्रसन्नता से बोला—'दाऊ, दो दिन और आओ। बिलकुल सुखा दूँगा इस घाव को।'

बूढ़ा मुराव लाठी लेकर लँगड़ाता चला। पर उससे चला न गया। किसी तरह दो क़दम घिसट कर बाहर वाला थमला पकड़ कर खड़ा हो गया। उसका वह पैर थर-थर काँप रहा था।

श्यामसुन्दर भीतर से लपक कर आया और बिना कुछ बोले उस बूढ़े को अपने कन्धों पर लादने लगा तो मुराव घबरा कर 'नाहीं, नाहीं' करने लगा। श्यामसुन्दर ने एक न सुनी। हनुमान की तरह दौड़ता चला गया, मुराव को कन्धों पर लादे।...

जवान लड़का शरम से मुँह छिपा कर भीतर घुस गया। बुढ़िया यह दृश्य देख कर 'हाय-हाय' कर उठी। बूढ़े ने सिर झुका लिया। श्यामसुन्दर ने कमर पर हाथ रख कर कहा—'दादी, यह सामने वाली लौकी मुझे तोड़ दे। आशीर्वाद दूँगा कि नाती-पोता हो तेरे।'···

लौकी झुलाता चला आ रहा था। अपना डेरा दस क़दम रहा होगा कि एक अति प्रिय मुखड़ा राह के किनारे चमक उठा। धीरे-धीरे धूल में नंगे गोरे चरण रखती चली आ रही थी नज़र नीची किये, लाज का आवरण ओढे।

श्यामसुन्दर ने आगे बढ़ना रोक दिया। चारों ओर देख कर खाँसा, और सिर हिला कर गा उठा—

'अकेली मति जइयो राधे,
जमुना के तीर...'

राधा ओठों में मुसकान छिपाये आगे बढ़ती आई और बिना इधर देखे श्यामसुन्दर की कोठरी में जाने लगी तो उसने स्वर को तीव्र करके गाया—

'जमुना किनारे चोर बसतु है, श्यामसुन्दर अहीर।
अकेली मति जइयो राधे, जमुना के तीर...'

और वह दौड़ता आया अपनी कोठरी की ओर। राधा किवाड़ पकड़े खड़ी थी।

आनन्द में डूब कर बोला—'धन्य भाग्य मेरे! चलिये, तशरीफ़ रखिये।'

राधा ने किवाड़ों की ओर देखते हुए तनिक हँस कर कहा—'हम चोर के घर में काहे को बैठें? अहीर के घर में! कब से हो गये अहीर?'

श्यामसुन्दर ने आँखें फैला कर कहा—'ख़ुदा की क़सम, तुम अगर मुसलमान होतीं तो मुसलमान हो जाता। अहीर होने में क्या जाता है मेरा!'

राधा ने हँस कर कहा—'सिवाय बातें बनाने के तुम्हें और कुछ भी आता है? यह लो अपने रुपये।'

'काहे के रुपये लाई हो राधे!'

हँस कर बोली—'मेरा नाम मत लिया करो इस तरह। तुम कौन होते हो मुझे इस तरह पुकारने वाले? रुपये अम्माँ ने भेजे हैं। कहा है, हम मान्य का पैसा नहीं रक्खेंगे। धोती के दाम भेजे हैं। साढ़े-सात रुपये हैं। गिन लो अच्छी तरह।'

श्यामसुन्दर हथेली फैलाये क्षण भर रुपयों को देखता रहा फिर सिर उठा कर बोला—'ढाई रुपया और दो। तुमने तेल मँगाया था। ढाई रुपये की शीशी थी। लाओ, निकालो!'

हँस कर बोली—'वह नहीं मिलेगा। मुझे देवर की चीज़ लेने का अधिकार है। एक पैसा न दूँगी।'

श्यामसुन्दर सिर खुजलाने लगा।

हँस कर बोली—'रात उस मुसल्लिया को दो रुपये यों ही थमा आये

और मुझ से तेल के दाम माँग रहे हो! शरम नहीं लगती तुम्हें ढाई रुपल्ली माँगते ?'

श्यामसुन्दर जल्दी-जल्दी सिर हिलाता बोला—'अब नहीं सहा जाता! अब नहीं रहा जाता!' और अति शीघ्रता से छाती के बटन खोल कर नयन मूँद कर बोला—'लो, निकाल लो कलेजा! मारो खंजर! मुनिया को बहिन मानता हूँ, सो दो रुपये दे आया। तुम्हें कलेजा दे रहा हूँ। मारो खंजर!'

किसी प्रकार हँसी रोक कर बोली—'मैं क्या करूँगी कलेजे का ? मैं कौन हूँ तुम्हारी, जो कलेजा दिये दे रहे हो ? अभी तो तेल के दाम माँग रहे थे मुझ से!'

तभी खट-से आवाज़ हुई। श्यामसुन्दर ने घबरा कर अपना सीना ढँक लिया। देखा, नये डाक्टर साहब बरामदे में खड़े हैं।

राधा तनिक घूँघट खींच कर एक किनारे से निकल गई।...

साहब सामने के नीम पर जाने क्या देख रहे थे। श्यामसुन्दर अकारण ही हाथ मलता पास खड़ा था।

साहब ने उधर मुँह किये-किये ही पूछा—'यह औरत कौन थी ?'

'जी', हाथ मलता बोला—'जी, इसी गाँव की लड़की है।'

'तुम्हारे पास क्यों आई थी इस वक्त ? उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? मैं जानना चाहता हूँ।'

श्यामसुन्दर ने संक्षेप में बतलाया कि यहाँ से बहुत दूर, उसकी ननिहाल वाले गाँव में इस लड़की की शादी हुई थी। पति से श्यामसुन्दर का बचपन का परिचय है। पति के चाचा को छोड़कर और कोई न था। सन्तानहीन और विधुर चाचा ने पुत्र की तरह उसे पाला-पोसा, विवाह किया। जवानी के नशे में चूर होकर वह कृतघ्न चाचा को दुःख देने लगा। अन्त में एक दिन भारी उपद्रव मचा कर अपनी गृहस्थी अलग करने लगा तो इस मोहमयी राधा ने चचिया-ससुर का साथ छोड़ने से

साफ इनकार कर दिया। रामधुन क्रोध के वशीभूत होकर पत्नी के साथ चाचा के अकथनीय सम्बन्ध की बात कह कर उसी रात को गाँव छोड़कर कहीं चला गया। हतभागिनी हृदय पर पत्थर रख कर पितृ-तुल्य चचिया ससुर की सेवा में लगी रही। फिर एक और वज्रपात हुआ। अपनी सब स्थावर-जंगम सम्पत्ति स्नेहशीला पुत्र-वधू के नाम करके वे चाचा जी परमधाम सिधार गये। तब से यह अनाथिनी यहाँ माँ के पास रह रही है। कहानी पूरी करके श्यामसुन्दर ने कहा—'रामधुन मुझ से उम्र में दो-तीन मास बड़ा है। इसलिए गाँव का रिश्ता मान कर...'

नये साहब ने संतोष से सिर हिला कर कहा—'ओ, देवर-भौजाई का मामला है। तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारे बाल-बच्चे कहाँ हैं? गाँव में?'

'जी, मेरे गृहस्थी नहीं है।'

'क्या अविवाहित हो?'

'जी, रँडुआ हूँ।'

'रँडुआ' शब्द सुन कर नये साहब के ओठों पर हँसी आ गई। क्षण भर रुक कर बोले—'ज़रा हमारा वाला कमरा खोलना। कुछ ज़रूरी कागज़ यहाँ भूल गया था।'

× × ×

दुपहरिया में नये साहब की बातें और कहने का ढंग बार-बार याद आता रहा। 'यह औरत इस वक्त तुम्हारे पास क्यों आई थी? इसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है!' और जाने कैसी एक कष्टदायिनी अनुभूति मन को कुरेदती रही। कोठरी का वातावरण गम्भीर हो गया। उसी गम्भीरता में श्यामसुन्दर सो गया।

नींद टूटी तो धूप का नामोनिशान न था। तब वह भजनलाल के इंजेक्शन की याद करके द्रुतगति से भागा।...

दरवाज़े पर आकर उसने संतोष की साँस ली। एक बार पश्चिमाकाश को निहारा। 'अभी दिन डूबने में काफी देर है' सोचता हुआ जो वह

चौखट पर पैर रखने लगा तो किसी स्त्री-कंठ की आवाज सुन कर ठिठक रहा।

यह दरिद्रता के मारे, रोगग्रस्त, भजनलाल की तपस्विनी ब्राह्मणी का स्वर था। लड़के से समझा कर कह रही थी—'बहेरे जी से कहियो कि 'हमें अम्माँ ने भेजा है। ये लॅडुये हैं चाँदी के। इन्हें रख लीजिए और पाँच रुपये दे दीजिये। बहुत जरूरत है।' कहन ।'अम्माँ ने आप के हाथ जोड़े हैं।' कहना, 'पाँच न दें तो चार ही दे दें।' सँभाल कर ले जइयो बेटा! ले बग़ल में दबा ले पोटली।'

लड़का शायद बाहर को आ रहा है। श्यामसुन्दर एक क़दम पीछे हट कर, दीवार की ओट में खड़ा हो गया।...

थोड़ी देर बाद वह चित्त को स्वस्थ करके चेहरे पर मुसकान लिये घर के आँगन में जा पहुँचा और स्वर को तीव्र करके पुकारा—'कहाँ हो सुरेश की अम्माँ? ओ मेरे भाई की जोरू!'

सुरेश की अम्माँ ने भीतर कोठे से जवाब दिया, अति मीठी बोली में—'बैठो सुरेश के चाचा! अभी आई।'

छोटी लड़की कलावती कोने में बैठी अपनी गुड़ियों को सजा रही थी। श्यामसुन्दर उसी के पास जमीन पर जा बैठा और गुड्डे-गुड़ियों को निहार कर पूछने लगा—'इनमें तेरा खसम कौन-सा है री?'

'हट्!'—कह कर कलावती शरमा कर भागने लगी ·वहाँ से तो श्यामसुन्दर ने उसे प्यार से पकड़ लिया, फिर अपनी जेब से वे चाँदी वाले लॅडुये निकाल कर बालिका की गोरी-गोरी कलाइयों में पहिना कर सुख में डूब गया। कुछ कहना चाहता था, पर कुछ कह नहीं सका।

तभी भाभी आ गईं भीतर से और सूखे अधरों पर बरबस हँसी ला कर गुड़ियों को निहारती बोलीं—'कोई पसन्द आ गई हो तो जेब में रख ले जाओ। रात को अपने पास सुला लेना।'

श्यामसुन्दर ने कानों पर दोनों हाथ रख कर कहा—'शिव-शिव!

यह क्या कह रही हो भाभी ? मैं ब्रह्मचारी आदमी ठहरा। स्त्री-स्पर्श मेरे लिए पाप है। यह तपस्या-काल है मेरा।'

भाभी ने मानो दुखी होकर कहा—'एक की जान लेकर बैठे हो। कुढ़-कुढ़ कर मर गई शायद अभागिन। अब करना जीवन भर तपस्या !'

श्यामसुन्दर ने प्रसंग बदल कर कहा—'पानी गरम किया ?...ज़रा इधर आओ।' फिर जरा-सा आड़ में होकर बोला—'लो ये रुपये। बहेरे जी ने पाँच ही दे दिये। लेकिन साढ़े-पाँच आना सूद लेगा। समझीं ?'

भाभी ने सकपका कर पूछा—'तुम्हें सुरेश मिला था क्या ? कहाँ रह गया वह ?'

तभी कलावती आ खड़ी हुई दोनों के बीच और माँ को अपने खड़ुये दिखा कर अति प्रसन्नता से बोली—'चाचा ने मुझे दिये हैं। अब मत छीनना अम्माँ !'

श्यामसुन्दर ने साँस खींच कर कहा—'तुम इतनी दुष्ट हो भाभी, कि जी में आ रहा है मेरे कि अभी गरदन काट लूँ तुम्हारी। तुमसे मैंने कहा था कि किसी चीज़ की जरूरत हो तो बतलाना। औरत जात हो न ! औरत की बुद्धि हमेशा उल्टी चलती है। लड़की के हाथों से खड़ुये उतारते तुम्हें दया नहीं आई ? तुम बड़ी बेरहम हो !—चलो, पानी लाओ।'

भाभी ने सिर न उठाया। चुपचाप पानी लेने चली गई।...

इंजेक्शन लगा कर वह घर से निकलने लगा तो उसी दहलीज में भाभी ने उसका हाथ पकड़ लिया और वह पाँच रुपये वाला नोट जल्दी से उसके हाथ में ठूँसती, बोलीं—'यह लिये जाओ देवर ! यह मैं न ले सकूँगी !'

स्तब्ध खड़े श्यामसुन्दर ने बड़ी कठिनता से पूछा—'क्यों ?'

तब जाने किधर से आँखों में पानी भर आया। छर्-छर् करके आँसू बहाती भाभी ने काँपती वाणी में कहा—'इतना बोझ मुझ से नहीं

सहा जायगा देवर बाबू ! मैं बहुत दब गई हूँ। अब और मन भर का पत्थर रख के मेरी जान ले लोगे क्या ?'

श्यामसुन्दर स्तब्ध खड़ा रहा।

भाभी ने दीवार से सिर टेक कर छर्-छर् आँसू बहाते कहा—'मै पापिनी रोज़ सोचती हूँ कि आज अकेले में पैर पकड़ लूँगी देवर के और पैरों पर सिर रख कर पड़ी रहूँगी और तो कुछ नहीं है मेरे पास। कैसे मैं तुम्हारी पूजा करूँ प्राणदाता ?'

श्यामसुन्दर की पीठ पर जैसे किसी ने चाबुक मार दिया सपाक्-से। तिलमिला गया। पलक मारते उसके हाथ भाभी के चरणों से जा लगे। फिर चोट खाये हुए सीने को उभार कर मर्द होकर भरे गले से बोला—'आज माफ़ी देता हूँ। अब आगे अगर कभी इस तरह मेरे चोट मारी तो तुम्हारा मुँह न देखूँगा भाभी ! मेरा हृदय भी तुम्हारी तरह ही रक्त-मास का है। इस तरह अब कभी मत कुचलना इसे। रुपये रक्खो ये। तुम क्या समझती हो कि अपना पेट काट कर तुम्हें दे रहा हूँ ? अरे, ये रुपये तो आज मैंने उसी मारवाड़ी से ऐंठे हैं। ले लो, भाभी, तुम्हें मेरे सिर की क़सम !'

हार कर भाभी ने आँसू पोंछते हुए नोट ले लिया तो श्यामसुन्दर 'सलाम भाभी,' कह कर शीघ्रता से भाग निकला।...

फिर कहीं मन न लगा। जाने कैसी उदासी मन के चारों ओर घिर आई थी। अन्यमनस्क भाव से शिथिल पैरों से वह जैसे अनजाने ही मुनिया के आँगन में आ खड़ा हुआ।

बूढ़े बकरीदी मियाँ अभी-अभी काम पर से लौटे थे। डाक्टर को बाहर खड़ा देख घबरा कर भीतर से खटिया लेने दौड़े।

मुनिया रसोईघर में बैठी 'बेझर' की रोटी सेंक रही थी। रोटियों की मीठी-मीठी सुगन्ध छाई थी घर में। श्यामसुन्दर उसके पास आ खड़ा हुआ और आगे को झुक कर पूछने लगा—'क्या पकाया है कलमुँही ?'

मुनिया का गोरा मुख आँच के आगे बैठे रहने से लाल हो उठा था। अलकों पर हलकी-हलकी राख जमी थी। घुटने पर सिर रक्खे हौले-हौले दोनों सुन्दर हथेलियों से रोटी बना रही थी।

ओठों पर अति मन्द मुसकान ला कर विभोर होकर बोली—'बथुआ का साग राँधा है!'

श्यामसुन्दर ने धीरे से पूछा—'मुझे खिलायेगी?'

स्नेह से आर्द्र स्वर में बोली—'खा लो भैया!'

बकरीदी मियाँ खाट बिछा कर खड़े थे। विनय से बोले—'आओ, बेटा! इधर आ जाओ।'

श्यामसुन्दर ने खाट पर बैठ कर एक अँगड़ाई ली। बोला—'बड़े मियाँ, कुछ हुक्का-उक्का पिलाओ न!'

बड़े मियाँ हैं-हैं करके नीचे ज़मीन पर बैठ गये तो जैसे श्यामसुन्दर ने याद करके कहा—'रस्सी-बाल्टी कहाँ है? लाओ, पानी भर लाऊँ।'

मुनिया ने वहीं से मीठी बोली में कहा—'मैं भर लाई हूँ भैया!'

बड़े मियाँ ने आगे सरक कर डाक्टर के पैर पकड़ लिये कस कर। फिर सूखे, खुरदरे हाथों से उन पैरों को सहलाते बोले धीरे से—'इंसान और फ़रिश्ते में फ़रक रहने दो बेटा! दोनों को एक ज़मीन पर मत खड़ा करो। ख़ुदा ताला मुझे हरगिज़ माफ़ नहीं करेंगे। तुम पानी भरोगे मेरा? या परवरदिगार!'

पर श्यामसुन्दर ने ध्यान न दिया। वह फिर मुनिया के पास आ खड़ा हुआ और धीरे से बोला—'तू ने राधा से क्यों कहा कि मैं तुझे दो रुपये दे गया था? क्यों कहा, चुड़ैल?'

मुनिया हँसती-हँसती बोली—'कहने को तबियत हुई। बस, कह दिया।'

'कहने को तबियत हुई!' श्यामसुन्दर ने मुँह टेढ़ा करके कहा—'चुग़लख़ोर!'

मुनिया उसी तरह हँसती रही।

तभी बाहर से शोरगुल की आवाज सुन पड़ी, जैसे बहुत से आदमी एक साथ दौड़ते चले जा रहे हैं।

बड़े मियाँ और श्यामसुन्दर दोनों एक साथ बाहर को लपके।

कुछ लोग बातें करते आगे बढ़ गये थे। कुछ दौड़ते आ रहे थे पीछे से। श्यामसुन्दर ने राह में खड़े होकर एक आदमी को कन्धा पकड़ कर रोक लिया और पूछा—'क्या बात है? क्या हुआ?'

उस आदमी ने त्रस्तभाव से कहा—'ज़मींदार हरसहाय के बाग़ में फ़ौजदारी हो गई। दो क़त्ल हुए हैं।'

'किसका क़त्ल हुआ है?'

आदमी ने कहा—'यह मुझे नहीं मालूम।' और वह भीड़ के साथ दौड़ता चला गया।

श्यामसुन्दर क्षण भर अवाक् खड़ा रहा फिर जैसे चौंक कर बोला—'बड़े मियाँ, तुम घर जाओ।' और लम्बे डग भरता वह भी बाग़ की ओर चल दिया।...

+ × +

रात को दस बजते-बजते एक आदमी की जान निकल गई। दूसरा सिसक रहा था। श्यामसुन्दर पसीने से तरबतर होकर लगा रहा।

जाने किसने राय दी कि सदर ले चलो। वहाँ थाने में रिपोर्ट भी लिख जायगी, ज़ुबानी बयान भी हो जायँगे और डाक्टर मुखर्जी हैं वहाँ, बड़े होशियार डाक्टर हैं।

बात कहते बीस लठैत चल दिये, मरणोन्मुख व्यक्ति को खाट समेत उठाये।

श्यामसुन्दर अवसन्न-सा होकर तमोली की दूकान पर आ बैठा और बारह बजे तक वहीं गुमसुम होकर धोक दिये रहा।

बहुत देर तक उसे नींद न आई और फिर सोया तो सपना देखने लगा। इतनी वर्षों के बाद जाने कैसे उस दिन, उस रात को स्वर्गीया

पत्नी पास आ खड़ी हुई घूँघट डाले! श्यामसुन्दर विभोर होकर उसका घूँघट हटाने लगा। लेकिन यह क्या!—यह तो राधा है!...

सबेरे भगवान् की पूजा करके वह चन्दन वाली कटोरी सामने रक्खे बैठा रहा। पुराने वृद्ध डाक्टर की याद आ रही थी। आज इस चन्दन को कौन लगायेगा? कितनी सरलता से उसके 'स्नेह का बन्धन' टूट-टूट गया है। और तब अचानक पत्नी की याद ताज़ा हो उठी। रात का स्वप्न याद आया और तब उसे एक गाना भी याद आया और अनजाने ही गा उठा—

'रँडुआ तो रोवे आधी रात,
सपने में देखी कामिनी...'

गा ही रहा था कि 'सुर में सुर' मिलाकर एक आदमी और कान के पास आकर गाने लगा। यह अखाड़े का वही साथी था, जिसे उस दिन पुरबिया पहलवान ने पटक दिया था। श्यामसुन्दर उसे अपलक ताकने लगा। पर उसने आँखें मूँद ली थीं और कान पर एक हाथ रख कर झुक कर गा रहा था—

'ना कोई पीसै वाको पीसनो,
अजी, ना कोई राँधे वाको भात री,
सपने में देखी कामिनी...'

यह साथी भी 'रँड़आ' था। जब गाने से जी भर गया तो सामने की मेज पर जम कर बोला—'गुइयाँ, रात से मेरा कान पिरा रहा है। कोई दवा डाल दो इसमें।'

श्यामसुन्दर ने उसके कान में दवा डाली। फिर वह चन्दन भी उसी के माथे पर लगा दिया।

तभी लछमना ने पुकार कर कहा—'मालिक, आपको नये साहब बुला रहे हैं।'

नये डाक्टर की बड़ी मेज पर तीन-चार नुस्ख़ों के कागज़ फैले हुए

थे और रोगी सामने खड़े थे। नये डाक्टर ने रोगियों को हटा दिया और एकान्त करके श्यामसुन्दर से पूछा—'ये प्रिसक्रिप्शन्स्' तुम्हीं ने लिखे हैं न ?'

'जी,' श्यामसुन्दर ने काग़ज़ों को देखते हुए कहा।

नये डाक्टर ने पीछे को धोंक लगा कर पूछा—'तुमने डाक्टरी की शिक्षा कहाँ पाई है ?'

श्यामसुन्दर मुँह देखने लगा।

नये डाक्टर ने एक परचा उठा कर कहा—'इस मरीज को पेचिश है। तुमने जो दवा लिखी है वह जुलाब की है !'

दूसरा परचा उठा कर बोले—'इस आदमी को खाँसी है। तुमने इसके लिए जो दवा लिखी है वह सिर-दर्द की है।'

तीसरा परचा उठा कर बोले—'इस औरत को 'ल्यूकोरिया' है; यह शायद 'प्रिगनेण्ट' भी है। तुमने इसे जो दवा दी है उससे इसे 'गर्भपात' हो सकता है।'

श्यामसुन्दर सुन्न खड़ा था।

नये डाक्टर ने कहा—'मैं नहीं जानता था कि तुम इस क़दर मूर्ख हो।'

श्यामसुन्दर अवाक् खड़ा था।

नये डाक्टर ने अपनी क़लम उठा कर कहा—'गो आउट !'...

उस दिन फिर उसके कमरे में हँसी के फव्वारे नहीं छूटे और जल्दी-जल्दी दवायें तैयार करते श्यामसुन्दर के कानों में बराबर एक ही आवाज़ गूँजती रही—'मैं नहीं जानता था कि तुम इस क़दर मूर्ख हो।'—मूर्ख ! बार-बार यही एक शब्द याद आता रहा। श्यामसुन्दर ने खिन्न होकर खाना नहीं बनाया।

फिर दुपरिया लचते ही वह शिथिल गात लेकर भजनलाल के यहाँ चल दिया। सारे बाजार में वही कल वाली फौजदारी और क़त्ल की बात चल रही थी। सुना कि वह दूसरा आदमी भी सदर पहुँचते-पहुँचते मर गया।

श्यामसुन्दर राह में कहीं न रुका। यहाँ तक कि बाजार समाप्त हो

गया और वह जगह आई जहाँ पक्का कुँआ था, कनेर का पेड़ था और नीचे सँकरी पगडंडी दूर तक चली गई थी।

श्यामसुन्दर नज़र दौड़ा कर देखने लगा और रात के स्वप्न की तरह देख पाया कि कंधे पर रस्सी लटकाये, ख़ाली घड़ा लिये राधा चली आ रही है उसी पगडंडी से।

पूरब की ओर किसी मुराव की झोपड़ी थी। उसकी एक दीवार छाया लिये थी। श्यामसुन्दर उसी जगह जा खड़ा हुआ और सामने से आती गरम धूल में सँभल-सँभल कर कोमल चरण रखती राधा ने पास से गुज़रते हुए बिना उससे दृष्टि मिलाये ही पूछा—'यहाँ क्यों खड़े हो बाबूजी ?'

बाबूजी न बोले। राधा ने अपना घड़ा कुँए पर रख कर इधर बिना देखे ही कहा—'गाना नहीं गाया! कोई गाना याद नहीं आ रहा है क्या ?'

बाबूजी न बोले।

राधा ने घड़े में रस्सी का फंदा लगा कर हौले से कहा—'क्या कहीं से पिट कर आये हो बाबूजी ? क्यों खड़े हो यहाँ छिपे-छिपे ?'

तब जाकर बाबूजी ने एक बार खाँस कर हाथ उठा कर तर्ज़ से कहा—'सुनिये राधा रानी—

ज़ेरे दीवार खड़े हैं, तेरा क्या लेते हैं ?

देख लेते हैं, तपिश दिल की बुझा लेते हैं !'

राधारानी ने शायद सुन लिया। घड़ा भर कर बोली—'दिल की तपिश मिट गई हो तो कुछ काम की बात कहूँ ?'

'फ़रमाइये !'

थिर बाले-डाले घड़े से रस्सी खोलती बोली—'रङ्गरेज़ों के घर एक बच्चा अभी छत से गिर पड़ा है। पैर टूट गये हैं उसके। बेहोश है तब से। जा सको तो उसके घर तक चले जाओ !'

श्यामसुन्दर ने चमक कर कहा—'मैं अभी जा रहा हूँ। इतनी देर बाद कह रही हो!' और वह रंगरेजों की ओर भाग निकला।

× × ×

भोर की बेला जब वह आलमारी से शीशियाँ निकाल कर मेज़ पर रख रहा था, नये डाक्टर ने अपने कमरे से आवाज़ दी—'शर्मा!'

श्यामसुन्दर हाथ का काम छोड़ कर भागा आया। नये डाक्टर ने अत्यन्त शान्त स्वर में पूछा—'पाठशाला के पण्डितजी तुम से क्या दवा ले गये थे?'

'जी, हुलास।'

'वह हुलास था?'

श्यामसुन्दर सिर डाल गया। नये डाक्टर ने सिर हिला कर कहा—'काली मिर्चों की बुकनी थी न?—और उस मारवाड़ी सेठ को तुमने क्या 'लेप' दिया था? सच-सच बोलो।'

श्यामसुन्दर ने हकला कर कहा—'जी, ब्लूब्लैक की स्याही थी।'

'कड़ुये तेल में मिला कर, जिससे कभी न छूटे रोशनाई, क्यों?'

श्यामसुन्दर मेज़ पर हाथ टेंके खड़ा था।

नये डाक्टर ने कहा—'और तुमने उस सेठ से कह दिया कि उसकी औरत 'प्रिगनेण्ट' है। क्या उस मोटी औरत के इस जन्म में कभी बच्चा हो सकता है? क्या लिया था तुमने उससे, सच-सच बोलो!'

'जी, पाँच रुपये। साहब, वह···'

'मै अब कुछ नहीं सुनना चाहता।'—नये डाक्टर ने शीघ्रता से कहा—'गो आउट्!'

श्यामसुन्दर अपनी जगह आ कर बिलकुल शिथिल होकर बैठ गया। पर कब तक? धीरे-धीरे रोगी आने लगे और धीरे-धीरे वह अपने में गति पैदा करने लगा।

देश और काल का भान भूल कर वह सिर झुकाये काम करता रहा कि समय पूरा हो गया। नये डाक्टर ने हैट उठाया और बाहर बरामदे में जा खड़े हुए तो फिर एक बार शर्मा की बुलाहट हुई। इस बार क्या सुनने को मिलेगा?

पूछने लगे—'तुमने कल लम्बरदार से यह कहा था कि डिसूपेन्सरी में इजेक्शन नहीं हैं?'

'जी।'

'लेकिन, इजेक्शन्स तो रक्खे हैं, अभी मैंने देखे हैं। क्यों मना किया तुमने? क्या इसमें भी कोई साजिश है?'

'जी, एक भजनलाल मुदर्रिस हैं। बहुत ग़रीब हैं। मैंने उनके लिए रख छोड़े हैं।'

'भजनलाल तुम्हारा रिश्तेदार है न! भाई लगता है?'

'जी, नहीं, वे तो गौड़ ब्राह्मण हैं।'

नये डाक्टर ने क्षण भर रुक कर कहा—'लेकिन यह नियम के विरुद्ध है। किसी एक आदमी को दवा दी जाय और किसी दूसरे को वही दवा न दी जाय, आख़िर क्यों?'

'जी, लम्बरदार…'

'उसने तुम्हें कभी घूँस नहीं दी, यही न?' नये डाक्टर ने शीघ्रता से कहा—'तुम यह रवैया छोड़ दो। जाओ…!'

उसकी मेज़ के सामने अभी तक तीन-चार आदमी और खड़े थे, दवा लेने को। उनकी ओर जलती आँखों से देख कर चिल्लाया—'भाग जाओ सब! नहीं दूँगा दवा।'

और फड़ाक्-फड़ाक् सब खिड़कियाँ दरवाज़े बन्द करके अपनी कोठरी में आ लेटा…।

भरी दुपहरिया में, जब कि ज़मीन तवे की तरह तप रही थी, गोरे मुख पर पसीने की बूँदें लिये और मैला दुपट्टा ओढ़े मुनिया उस कोठरी

के द्वार पर आ खड़ी हुई और आधी किवाड़ खोल कर उल्टे पड़े श्यामसुन्दर को निहारती हौले से बोली—'भैया, सो रहे हो क्या ?'

'नहीं, सो नहीं रहा हूँ मुनिया ! तू इस कुबेला कैसी आई ?'—श्यामसुन्दर ने बिना हिले कहा।

मुनिया हौले से बोली—'रात अब्बा के साढ़ू आये थे। बदायूँ के पेड़े दे गये हैं। मैं तुम्हारे लिए लाई हूँ।'

श्यामसुन्दर उठ कर बैठ गया। उस के ओठों पर हँसी आ गई। मुनिया को पास बुला कर उसने गठरी खोल ली और एक पेड़े का टुकड़ा मुँह में डाल कर आँखें मूँदे बोला—'हैं तो बढ़िया ! तूने खाये ?'

मुनिया हँस कर बोली—'लो, कह तो रही हूँ कि मैंने छुये नहीं।'

श्यामसुन्दर ने एक पेड़ा उसे देकर कहा—'ले खा कर देख।' और ख़ुद भी खाता गया।

फिर श्यामसुन्दर ने जैसे याद करके कहा—'मुनिया, तरकारी लेगी ? और फ़ौरन उस ओर जाकर तरकारी का बरतन उठा लाया और इधर-उधर देखकर बोला—'दूँ किस में ?'

मुनिया एलोमोनियम का कटोरा आगे करके बोली—'लो, इसमें दे दो भैया ! मै कडुआ तेल लेने आई थी। अब फिर ले जाऊँगी।'

तरकारी देते समय अचानक श्यामसुन्दर का पात्र मुनिया के पात्र से छू गया तो जैसे नाराज़ होकर बोला—'अरी दुष्ट, मेरा कटोरा छू दिया !'

मुनिया भी मानो नाराज़ होकर बोली—'क्यों झूठ बोल रहे हो भैया ? मैं तो हाथ नीचा ही किये रही, तुम्हीं ने छुला दिया !'

श्यामसुन्दर प्रसन्न भाव से बोला—'अच्छा-अच्छा, भाग यहाँ से। मुझे सोने दे।'

पर उसे फिर नींद न आई। चित्त जैसे बहुत शान्त हो गया था और कोई चिन्ता-फ़िक्र न रह गई थी उसे।

× × ×

फिर रात हुई और फिर दिन निकला। और नयी घटनाएँ चलीं।

बाग़ के माली की सरहज बिलकुल चंगी हो गई थी। उसी की ख़ुशी में माली एक बड़ा-सा कटहल तोहफ़े में ले आया।

श्यामसुन्दर नये साहब के पास था। माली ने वहीं दोनों के सामने वह कटहल रख दिया और सलाम करके बाहर जा बैठा।

नये साहब क्षण भर उस लम्बे-चौड़े कटहल को देखते रहे। फिर पूछा—'यह क्या है?'

'जी, कटहल है।'

'यह तो जानता हूँ। मैं पूछ रहा हूँ, यह आदमी इसे यहाँ क्यों रख गया है?'

श्यामसुन्दर ने डरते-डरते कहा—'जी, उसका मरीज चंगा हो गया है। शायद आपको भेंट देने लाया है।'

नये साहब ने सिर हिला कर कहा—'हरगिज़ नहीं, मैं इस तरह की चीज़ लेना क़तई पसन्द नहीं करता। इसे वापस कर दो।'

श्यामसुन्दर ने माली के दुख की बात सोच कर डरते-डरते कहा—'जी, यहाँ के लोग पुराने डाक्टर साहब को···।'

नये डाक्टर ने बीच में ही उसे रोक कर कहा—'पुराने डाक्टर नीच थे, इसीलिए मैं भी नीच हो जाऊँ? हटाओ इसे। रिश्वत की चीज़ें लेते तुम्हें शरम नहीं आती? तुम नाहक़ ही ब्राह्मण हुए। ख़ूब पाप कमा रहे हो!'

श्यामसुन्दर ने अपनी सारी ताक़त लगा कर सिर्फ़ यही कहना चाहा कि पुराने डाक्टर नीच नहीं थे। और वह कहने भी लगा—'जी, पुराने डाक्टर...'

पर नये डाक्टर ने और बोलने न दिया, काग़ज़ों पर पेंसिल मार कर बोले—'शट् अप!'

श्यामसुन्दर ने घबराकर अनजाने ही कह दिया—'जी।'

'जी क्या?'—कुढ़कर साहब ने पूछा।

श्यामसुन्दर और घबराया। घबरा कर जल्दी से बोला—'जी, शट् अप्।' और फिर अपने मुँह पर हाथ रख कर तत्काल भागा।

शायद नये साहब थोड़ा-सा हँसे।...

फिर वही सुनसान दुपहरिया आ पहुँची।

श्यामसुन्दर जैसे थक कर चकनाचूर हो गया था। सब जगह जैसे पीड़ा हो रही थी। नीच, बेशरम, पापी!—क्या!—क्या वह सचमुच ही ऐसा है? क्या नये साहब ठीक कह रहे थे?

जाने कहाँ-कहाँ मन भटकता फिरा, जाने क्या-क्या याद आता रहा।

इस तरह जब वह स्वप्न और जागरण के बीच की स्थिति में नयन मूँदे एकाकी पड़ा था, एक अति स्निग्ध वाणी ने पैरों के पास पुकार कर कहा—'सरकार जाग रहे हैं कि सोये हैं?'

श्यामसुन्दर तन्द्रालस होकर उठ बैठा और बिना राधा की ओर देखे पूछने लगा—'कहो, क्या बात है?'

मीठी बोली ने कहा—'सरकार के लिए 'षट्रस व्यंजन' लाई हूँ। आपकी सासजी ने भेजा है। क्या सरकार का जी कुछ ख़राब है?'

श्यामसुन्दर ने फीकी हँसी हँस कर कहा—'लाओ, सामने रक्खो। क्या लाई हो?'

एकादशी को व्रत का 'उद्यापन' करके राधा की माँ ने थाल भर खाद्य पदार्थ भेजे थे। श्यामसुन्दर उन मिष्टान्नों पर, पूरी-कचौड़ियों पर, दही-रायते पर, एक नजर डालकर हँसता-हँसता कहने लगा—'अम्माँ से कहना, क्यों इस तरह बीच-बीच में मेरी ज़ुबान ख़राब कर रही हैं? सूखी रोटी और बिना छौंकी दाल-तरकारी खाने वाला आदमी एक दिन ये तर माल खा लेगा। उस के बाद?'

राधा ने धोती से अपने चेहरे का पसीना पोंछा। धूप में चलने से उसका शुभ्र मुख बिलकुल सिन्दूरिया हो उठा था। पतले, लाल ओठों पर मीठी मुसकान लाकर बोली—'सरकार क्यों इस तरह तकलीफ़ उठा रहे

श्यामसुन्दर चुप हो गया। कोने में पानी का बाल्टा रक्खा रहता था। साहब ने उधर देखकर पूछा—'इस में आज पानी कौन डालेगा?'

'जी, मैंने भर लिया है।'

तब साहब की नज़र फ़र्श की ओर गई। और पूछा—'यहाँ झाड़ू किसने लगाई है?'

'जी, मैंने लगा दी है।'

साहब घड़ी भर चुप रहे। फिर स्वर को थोड़ा नीचे उतार कर बोले—'लेकिन यह सिद्धान्त के विरुद्ध है। जाओ।'

एक घटे बाद फिर पुकार सुनाई दी—'शर्मा!'

फिर श्यामसुन्दर दौड़ा आया। साहब आज फिर तीन-चार नुस्ख़े फैलाये बैठे थे। धोक .लगाकर बोले—'सुना तुमने? इन जाहिलों को जो मैंने सही दवायें लिख कर दी हैं, उनसे फ़ायदा नहीं हो रहा है। कहते हैं, वही पहिले वाली दवा दीजिये!'

श्यामसुन्दर क्या जवाब दे, समझ नहीं पा रहा था। साहब ने तनिक हँसकर कहा—'यहाँ के आदमी, दुनिया के और आदमियों की तरह नहीं हैं शायद। शायद इन लोगों का दिल दाहिनी तरफ़ होता है। तभी न पेन्चिश में जुलाब की दवा फायदा करती है, खाँसी मे बदहजमी की दवा लाभदायक होती है।...आल राइट!' श्यामसुन्दर को वे पर्चे देते हुए कहा—'जाओ, वे ही उल्टी दवायें दो, इन उल्टी खोपड़ी वालों को।'

श्यामसुन्दर शान्त भाव से वे काग़ज़ लेकर चल दिया तो किवाड़ के पास से सुन पाया नये डाक्टर धीरे-धीरे कह रहे हैं—'कैसा अजीब मुल्क है! कैसे अजीब आदमी हैं यहाँ के!'

× × ×

इसी तरह सुख-दुख, मान-अपमान, हर्ष-विषाद और भलाई-बुराई के बीच दिन उभरते गये और रातें डूबती गईं।

और श्यामसुन्दर की हालत धीरे-धीरे ऐसी होती गई कि अकेला है

तो अकेला है, कोई खींचकर ले गया तो चला गया। जाने क्यों उसका मन सुन्न-सा हो गया था। हँसता न था, रोता भी न था।

इसी तरह दो पखवारे बीत गये कि एक दिन फिर विचित्रता हो गई। भजनलाल मुदर्रिस रोगमुक्त हो गये थे। उनका लड़का सुरेश सुबह तड़के-तड़के ही आकर कह गया कि आज चाचाजी वहीं भोजन करें। उनके यहाँ कथा है सत्यनारायण की। दवाख़ाना बन्द होने पर सीधे वहीं चले आयें।

पर श्यामसुन्दर को बिलकुल ही याद न रही। हाथ से दो रोटियाँ सेक कर खाने बैठा था कि चिलचिलाती धूप में वह सुकुमार बालक दौड़ा हुआ आया और बोला—'चलिये चाचाजी, पिताजी और अम्माँ आपके इन्तज़ार में भूखे बैठे हैं। आप खा लेंगे तो हम लोग खायेंगे।'

श्यामसुन्दर ने हाथ का ग्रास रख दिया और अपराधी की तरह पूछने लगा—'मेरे लिए सब भूखे बैठे हैं? तूने भी अभी नहीं खाया है रे?'

लड़के ने धीरे से सिर हिला दिया। श्यामसुन्दर ने लछमना को बुलाकर कहा—'यह सब खाना उठा ले जाओ।' और अति शीघ्रता से कपड़े पहिन कर वह बालक की अँगुली पकड़ कर लपक चला।...

दुपहरिया वहीं बीती, उसी आनन्द और हर्ष से भरी गृहस्थी में तीन बार पान खाये और दो बार सुरेश दौड़-दौड़ कर चाचाजी के लिए सिगरेट ख़रीद लाया।

आज उसका हृदय बहुत प्रफुल्लित हुआ। इतने हँसी के चुटकुले उसने सुनाये कि भाभी की आँखों में आँसू आ गये और सौम्य, शान्त, अध्यापक भजनलाल ने धीरे से कहा—'तुम बड़े भारी मज़ाकिया हो। अगर किसी नाटक कम्पनी में होते तो नाम कमा लेते।'

छोटी लड़की बराबर चाचा की गोदी में लेटी रही।...

धूप उतरती बेला वह उस घर से चला तो गाने को तबीयत हो रही थी। तभी नितान्त अप्रत्याशित रूप से उसने देखा कि तीसरे मकान से

राधा निकल रही है। मकानों की यह पूरी क़तार राधा के घर के पिछवाड़े पड़ती थी।

श्यामसुन्दर उमग में भर कर आगे लपका। राधा सिर झुकाये चली जा रही थी। पलक मारते श्यामसुन्दर उसके निकट जा पहुँचा और सुन-सान पाकर पीछे-पीछे चलता आनन्द से गाने लगा—

'गोरी, पिछवाड़े का जाना छोड़!
ओ गोरी, पिछवाड़े का...'

जैसे चोट खा कर राधा ने पीछे घूम कर देखा और भवें सिकोड़ कर बोली—'धिक्कार है तुम्हें!'

श्यामसुन्दर हक्का-बक्का रह गया।

पर राधा ने उसी भाव से कहा—'लानत है तुम्हारी जवानी को!'

श्यामसुन्दर ने हकला कर केवल इतना कहा—'क्या हुआ?'

राधा ने कहा—'इधर आओ ज़रा।'

वह आड़ में उसे ले गई और सुनाया कि पुलिस चौकी का सिपाही मुबारक अली मुनिया के पीछे पड़ा है। मुनिया छोटे लाला के यहाँ दाल दलने का काम करने आती है तो यह पाजी सिपाही हर रोज़ राह में उससे भद्दे मज़ाक करता है। कल शाम को मुनिया को वहाँ से लौटते अबेर हो गई। मोड़ पर अँधेरा पड़ता है। यह पापी वहाँ छिपा खड़ा था। सो मुनिया को पकड़ लिया—'

कहते-कहते राधा रुक गई। श्यामसुन्दर को काटो तो ख़ून नहीं। राधा ने फिर रुक-रुक कर कहा—'आज वह दुखियारी मेरे पास बैठी आँसू बहाती रही। मेरा ख़ून खौल रहा है तब से। मैं तो तुम्हारे पास ही जा रही थी। तुम तो उसके भैया हो न? बहिन की इज्ज़त-आबरू लुटती है तो लुटने दो! तुम अपनी जवानी पर क्यों आँच आने दोगे?'

श्यामसुन्दर थर-थर काँपने लगा।

राधा ने कहा—'कुछ कर सको तो हामी भरो नहीं तो मैं इसका बदला लेकर तुम्हें दिखा दूँगी, मुनिया मेरी सखी है !'

श्यामसुन्दर ने अति कठिनता से कहा—'मैं आज जान दे दूँगा !' और पलक मारते भाग चला।

नागिन की तरह फुंकारती राधा पलक रोके श्यामसुन्दर की ओर देखती रही, जब तक वह दीखा।...

× × ×

अखाड़े में भग छन चुकी थी और पहलवान लँगोट कस रहे थे। तभी जाने किसने दौड़े आकर ख़बर दी कि छोटा डाक्टर चौकी पर मुबारक अली सिपाही को जूतों से मार रहा है। तब सब से आगे वह भागा, वह पुरबिया पहलवान।...

पुरबिया ने श्यामसुन्दर को पीछे खींच कर मुबारक अली को हाथों से ही जो धुनना शुरू किया तो उसकी साँस रुकने लगी। यह देखकर एक समझदार साथी ने पहलवान को छुड़ा लिया।

श्यामसुन्दर हाथ में जूता लिये अभी तक खड़ा बुरी तरह हाँफ रहा था। उसके सम्पूर्ण चेहरे पर रक्त उभर आया था और आँखें जलरही थीं।

मुबारक अली अर्ध-मृत होकर ज़मीन पर पड़ा था, और उसके मुँह से और नाक से ख़ून निकल रहा था।

पुरबिया पहलवान ने उसके आगे खड़े होकर आँखें चढ़ा कर कहा—'खबरदार सरऊ, अब जो कभी 'बहिनिया' की ओर ताक्यो! जौन पटाका देब हरामी, कि तोरे आँखी के पुतरी निकसि के नाचै लागी!'

और फिर उसने अपना चौड़ा पंजा फैलाया तो ज़मीन पर पड़े घायल सिपाही ने हाथ जोड़ कर कहा—'पनाह माँगता हूँ! ख़ुदा के वास्ते अब मत मारो पहलवान! मैं मर जाऊँगा।'

पहलवान मुबारक अली को घसीटता ले आया। पूरी भीड़ के सामने पहलवान ने उस पापी से मुनिया के पैरों पर सिर रखवाया।

पूरी भीड़ उस डगमग होकर जाते सिपाही के पीछे-पीछे चली गई तो श्यामसुन्दर भीतर घर में घुस आया। मुनिया का चेहरा फक हो रहा था। चौखट पकड़े खड़ी थी। बड़े मियाँ डाक्टर के लिए खाट लेने दौड़े।

श्यामसुन्दर लाल आँखें लिये आँगन में खड़ा था। उसका ऐसा रूप देख कर मुनिया काँप उठी। श्यामसुन्दर उसी पर नज़र जमाये था। सहसा कठोर स्वर में बोला—'इधर तो आ!'

सहमी-सी मुनिया उसके पास आ खड़ी हुई। श्यामसुन्दर ने पलक मारते उसका जूड़ा पकड़ लिया और चिल्ला कर बोला—'तू लाला के यहाँ क्यों काम करने गई?'

फल्-फल् करके मुनिया की आँखों में आँसू भर आये। पर श्यामसुन्दर ने ज़रा भी दया न खाई। ताक़त लगा कर जूड़ा खींचता चिल्ला कर बोला—'जवाब दे हत्यारिन, तू क्यों काम करने गई?'

मुनिया की आँखों से आँसू टपकने लगे। करुण स्वर में रोती-रोती बोली—'अब्बा की नौकरी छूट गई।'

श्यामसुन्दर का हाथ ढीला हो गया। उसने धीरे-धीरे मुनिया का जूड़ा छोड़ दिया और वहीं ज़मीन पर सिर पकड़ कर बैठ गया।

मुनिया की आँखों से उसी तरह आँसू टपक रहे थे। वह श्यामसुन्दर से सट कर बैठ गई और झर्-झर् आँसू बहाती श्यामसुन्दर की बाँह पकड़ कर टूटी वाणी में कहने लगी—'मुझे माफ़ कर दो भैया! मैं अब कभी बाहर न जाऊँगी। चाहे अब्बा भूखे रहें, चाहे इनकी जान निकल जाय मैं तुम्हारी बात रक्खूँगी भैया! मुझे माफ कर दो तुम्हारे पैरों पड़ूँ!'—कह कर भैया के चरणों पर अपना अधम सिर झुकाने लगी तो भैया ने उस सिर को दोनों हाथों से रोक लिया और ज़ोर से चीत्कार करके कहा—'मुनिया!' और दुखियारी को छाती से चिपका कर फूट कर रो उठा।...

पुरबिया पहलवान जाने कब लौट आया था। उसने यह दृश्य देखा

तो गद्गद होकर श्यामसुन्दर के आँसू पोंछता और ख़ुद आँसू बहाता बोला—'गुइयाँ, हमार जियरा टूक-टूक...' तभी उसका हाथ मुनिया के सिर पर जा पड़ा तो बिलकुल पागलों की तरह कह उठा—'हाय मोर बहिनिया! हाय मोर चिरैया!'...

वह पुरबिया पहलवान उसी दिन बूढ़े बकरीदी को अपने साथ ले गया और बड़े लाला के यहाँ स्थायी रूप से एक ऐसी नौकरी दिलवा दी जिसमें काम नहीं के बराबर करना पड़ता था।...

× × ×

दो दिन हुए, नये डाक्टर ख़ास इस्टेट में गये हुए थे। राजा साहब के बड़े भाई सख़्त बीमार थे और वहाँ डाक्टरों का जमघट लगा था।

सूरज डूबते-डूबते एक चपरासी आकर ख़बर दे गया कि नये डाक्टर सनीचर तक न आ सकेंगे। आप सब काम सँभाले रहें।

श्यामसुन्दर अवसन्न होकर पड़ा था। न उसने फिर कुछ खाया, न बिस्तर बिछाया। अचेतन-सा हो गया था। उसी हालत में पड़े-पड़े जाने कब उसे नींद आ गई।

पौ फटने के समय किसी ने उसे कन्धा पकड़ कर जगाया। श्यामसुन्दर एक भयंकर सपना देख रहा था। वह घबरा कर उठ बैठा और आँखें मल कर चारों ओर निहारने लगा तो पाटी के पास राधा की अम्माँ को बैठी पाया।

राधा के टोले में जो डालचन्द मिस्त्री रहता था, उसका मँझला लड़का कलकत्ते में कहीं नौकरी करता था। वह लड़का बीस दिन की छुट्टी लेकर घरवाली से मिलने आया था। उसने कल शाम राधा की अम्माँ को यह विचित्र समाचार सुनाया कि राधा का पति रामधुन कलकत्ते में है। एक फ़ैक्टरी में नौकरी करता है। उसने एक बंगालिन रख ली थी। पिछले महीने वह बंगालिन झगड़ा करके भाग गई। रामधुन अब फैक्टरी की नौकरी छोड़ रहा है। वह किसी साथी के कहने से रंगून जाने की तैयारी कर रहा है।

बुढ़िया ने जल्दी-जल्दी पूरा क़िस्सा सुना कर कहा—'बेटा, मुझे रात भर नींद नहीं आई। बेटा, तुम से भीख माँगने आई हूँ। बेटा, अपने भाई को लौटा लाओ। बेटा, रधिया का सिन्दूर चमका दो। बेटा, कलकत्ते चले जाओ। यह मैं पता लेती आई हूँ उसका। मैंने उस अभागिन से नहीं कहा। तुम्हारे हाथ जोड़ूँ बेटा, और किसी से चर्चा मत करियो। राम जानें, क्या हो, क्या न हो।'

श्यामसुन्दर नीची नज़र किये बैठा रहा। उसने एक शब्द न कहा।

बुढ़िया गिड़गिड़ा कर पूछने लगी—'जाओगे बेटा?'

श्यामसुन्दर ने सिर उठा कर बुढ़िया की सजल आँखों को देखा और हँस कर बोला—'ज़रूर जाऊँगा। आज ही जाऊँगा। अभी, इसी गाड़ी से!'

बुढ़िया की आँखों से आँसू टपकने लगे।

श्यामसुन्दर ने उत्साह से कहा—'मैं उसे खोज निकालूँगा। मैं उसे साथ लेकर लौटूँगा। मैं उसे बाँध कर लाऊँगा। तू अब तनिक भी चिन्ता न कर अम्माँ! मैं तेरे चरणों की शपथ खाकर...'

बुढ़िया ने शीघ्रता से श्यामसुन्दर के मुख पर हाथ रख दिया और अपने अँचल से उसके पैर छू कर बोली—'पाप में मत डुबाओ बेटा!' और रोती गई, रोती गई। रोते-रोते ही उसने एक रुपयों की पोटली निकाली और आगे रखकर बोली—'मैं तुम से कभी उऋण नहीं हो पाऊँगी कन्हैया!'...

इस कस्बे से रेलवे स्टेशन पाँच मील दूर था। ट्रेन की सवारियों के लिए बराबर लारी आती-जाती थी। दस बजे वाली ट्रेन कलकत्ते की ओर जाती है। सोचता-सोचता श्यामसुन्दर शीघ्रता से अपना बिस्तर तैयार करने लगा। और लारी पर चढ़ने वाला वही सब से पहिला यात्री था। लछमना सामान लिये साथ-साथ आया। श्यामसुन्दर ने उस से कहा कि 'राजा साहब की बहिन के यहाँ जा रहा हूँ। एक बीमार को देखना

है।'......तीसरे दिन आधी रात को श्यामसुन्दर राधा के खोये पति रामधुन को साथ लिये यहाँ लारी से उतरा।

रामधुन को उसकी ससुराल तक पहुँचा कर श्यामसुन्दर हल्का मन लिये अपने डेरे पर पहुँचा तो शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा नीम के पेड़ की आड़ में छिपा था।...

बहुत गहरी नींद में सोया। यहाँ तक कि राह चलने लगी और धूप छा गई चारों ओर।

लछमना ने आकर उसे जगाया और कहा—'साहब परसों शाम ही आ गये थे।'

श्यामसुन्दर ने लापरवाही से कहा—'ठीक है। तेरी गाय बिया गई कि नहीं?'

लछमना प्रसन्न होकर बोला—'मालिक, आज खीस खाइये उसका। बछिया हुई है।'

श्यामसुन्दर ने कहा—'तू भाग्यवान है लछमना!' फिर याद करके बोला—'तू नहीं रे, तेरी घरवाली। वह बड़ी भाग्यवती है।' और तब याद करके अपने से ही मानो बोला—'वह भी भाग्यवती है। अभागा तो सिर्फ़ मैं हूँ, सिर्फ़ मैं!' और तब उसके शुद्ध मानव ने मानो अति शान्त स्वर में कहा, 'दूसरों के सुख से ही सुखी रहो, श्यामसुन्दर! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ मित्र, आदमी का अपना सुख कुछ नहीं है।' श्यामसुन्दर ने मानो श्रद्धा से सिर नत कर लिया।...

× × ×

आठ बजते-बजते नये डाक्टर ने उसे अपने पास बुला लिया और एकान्त करके लछमना से कहा—'किसी को भीतर मत आने दो।' फिर मेज़ के सामने खड़े श्यामसुन्दर से कहा—'बैठ जाओ। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

श्यामसुन्दर स्थिर-चित्त होकर बैठा था। तब नये डाक्टर ने अपने

ड्राअर से एक लम्बा कागज़ निकाला और श्यामसुन्दर को देकर शान्त स्वर में बोले—'इसे पढ़ लो।'

श्यामसुन्दर ने पूरा कागज पढ़ लिया और उसे लौटाने लगा तो नये डाक्टर ने वैसे ही स्वर में कहा—'मुझे बहुत अफ़सोस है कि मुझे तुम्हारे बारे में राजा साहब से सब कहना पड़ा। तुम यक़ीन रक्खो, तुम्हारी जगह अगर मेरा अपना लड़का होता तो उसकी शिकायत भी मैं मालिक से करता ही। यह 'कागज तुमने पढ़ लिया है। यह पूरी लिस्ट है, तुम्हारे बेजा कामों की। तुम्हें इसके बारे में कुछ कहना हो तो कह सकते हो। कोई बात अगर मैंने असत्य लिखी हो तो बतला सकते हो।' और वे श्यामसुन्दर की ओर प्रश्नमयी दृष्टि से देखने लगे।

तब श्यामसुन्दर ने धीमे स्वर में कहा—'मुझे कुछ कहना नहीं है। आपने जो कुछ लिखा है, वह सब सत्य है।'

नये डाक्टर ने क़लम आगे करके कहा—'इस पर हस्ताक्षर करो अपना।'

श्यामसुन्दर ने हस्ताक्षर कर दिया।

नये डाक्टर ने उस कागज़ को तह करके फिर ड्राअर खोला और एक दूसरा कागज़ निकाल कर बोले—'राजा साहब से आज्ञा पाकर ही मैं तुम्हें यह कागज दे रहा हूँ।' और चुपचाप वह दूसरा कागज़ उसके सामने रख दिया।

यह श्यामसुन्दर को नोटिस थी, जिसमें लिखा था कि 'कम्पाउंडर श्यामसुन्दर शर्मा को पहिली तारीख़ से नौकरी से अलग किया जाता है, इन दो महान् अपराधों के कारण—(१) यह कि बिना कोई सूचना दिये, बिना आज्ञा लिये, वह तीन दिन नौकरी से ग़ायब रहा। (२) यह कि जमीदार हरसहाय के फ़ौजदारी के केस में उसने ढाई सौ रुपया घूँस लेकर झूठी गवाही दी।'

श्यामसुन्दर ने वह कागज़ सँभाल कर जेब में रख लिया।

नये डाक्टर सिर झुकाये हुए बोले—'मुझे बहुत दुःख है कि मुझे तुम्हारे लिए यह काग़ज़ लिखना पड़ा। नियम के अनुसार, मैं तुम्हें दो मास का वेतन 'एक्स्ट्रा' दिलवाऊँगा। मैंने सदर को लिख दिया है। परसों नया आदमी आ जायेगा। यह टेम्परेरी प्रबन्ध है। तुम परसों से अपने कार्य से मुक्त हो।'

श्यामसुन्दर ने उसी धीमे स्वर में पूछा—'अब मै जाऊँ?'

'जा सकते हो।'...

बहुत समय के बाद, उस दिन फिर छोटे डाक्टर श्यामसुन्दर के कमरे में अट्टहास गूँजा। उस दिन वह हर एक मरीज़ से मज़ाक कर रहा था। बुढ़ियों तक को नहीं छोड़ा। एक साथी ने ऐसा रंग देख कर कहा—'आज क्या बात है डाक्टर, बड़े मस्त हो रहे हो! गहरी छानी है क्या?'

श्यामसुन्दर ने हँस कर कहा—'बस यार, कुछ पूछो मत!'...

× × ×

हमेशा की तरह उस दिन भी बड़ी घड़ी ने ग्यारह बजाये और नये डाक्टर ने अपना हैट उठाया। आश्चर्य की बात थी कि उस दिन श्यामसुन्दर भी रोगियों से ख़ाली हो गया ग्यारह बजते-बजते।

नये डाक्टर बरामदे में आ खड़े हुए और शायद अकारण ही श्यामसुन्दर के कमरे की ओर उनकी दृष्टि चली गई। जाने क्या देख रहे थे कि एक अजीब-सी आवाज़ ने उनको चौंका दिया।

यह दस कोस दूर के गाँव का हुलासी चमार था। नये डाक्टर के काले बूटों पर लोट कर बोला—'सरकार मेरे धुनुआ की जान बचाओ। माई-बाप, धुनुआ को कुछ हो गया तो मैं बेमौत मर जाऊँगा।'

पलक मारते दो आदमी धुनुआ को डोली पर लिये आ पहुँचे। डोली के साथ करुण क्रन्दन करती बुढ़िया चमारिन आई।

नये साहब ने एक बार ध्यान से चमार के जवान, इकलौते बेटे की

परीक्षा की फिर व्यस्तभाव से श्यामसुन्दर के पास आकर बोले—'शर्मा, ऑपरेशन वाली मेज़ ठीक करो। जल्दी!'

धुनुआ की कंठ-नली पर एक अन्तर्मुख गाँठ भयंकर रूप से फूली हुई थी। उसका श्वास बहुत धीरे-धीरे चल रहा था। मरणोन्मुख अवस्था तक उसका बाप गाँव के उपचार करता रहा। जब कोई आशा न रही तो यहाँ लेकर भागा आया।

नये डाक्टर ने बड़ी सावधानी से उस गाँठ का ऑपरेशन कर दिया।

श्यामसुन्दर दत्तचित्त होकर सहायता कर रहा था।

सहसा नये डाक्टर घबरा कर पुकार उठे—'शर्मा!'

'जी।'

नये डाक्टर ने घबरा कर कहा—'शर्मा, घाव का मवाद भीतर चला जा रहा है। यह मवाद फेफड़े में चला जायगा! मवाद से कंठ-नली भर गई है। अब इसकी साँस रुक जायगी।—शर्मा, यह तो गया!'

नये डाक्टर घबरा कर औज़ारों वाली आलमारी की ओर भागे। कोई ऐसा औज़ार है, कोई ऐसी पिचकारी है, कोई इस तरह की चीज़ है क्या?

वे अत्यन्त शीघ्रता से सब औज़ारों को उलटने-पलटने लगे। फिर जाने क्या हाथ में लिये आये ऑपरेशन वाली मेज़ की ओर।

और मेज़ से गज़ भर दूर खड़े रह गये। आगे पैर न बढ़े।

बिलकुल स्वप्न की तरह, बिलकुल 'उपन्यास' की तरह, नये डाक्टर ने देखा कि कम्पाउण्डर श्यामसुन्दर शर्मा धुनुआ के उस घाव पर ओठ लगाये मवाद को चूस रहा है! एक बार मुँह में भरा मवाद नीचे थूक दिया। फिर दुबारा ओठ लगा कर चूसा। फिर तिबारा।...

श्यामसुन्दर ने सँभाल कर पट्टी बाँध दी। फिर पसीने से तर मुख लिये नये डाक्टर के पास आकर बोला—'आप हाथ धो लीजिये।'

माथे का पसीना अँगुली से पोंछ कर तनिक-सा हँस कर बोला—'बच गया। अब कोई डर नहीं है।'

× × ×

सारे दिन श्यामसुन्दर इधर-उधर घूमता फिरा। शाम हो गई। रात पड़ गई तो भी भटकता रहा।

बारह बजे वह अपनी कोठरी में लौटा। चारों ओर शान्तिदायिनी चाँदनी छाई थी। नीम का पेड़ अपनी छाया में आँखमिचौनी खेल रहा था चाँद की किरणों से।

श्यामसुन्दर अपनी कोठरी के दरवाज़े पर आ लेटा। क्या हुआ? कहाँ से यह भाव उठा? उस पेड़ को, उस कोठरी को, उस चाँद को ताकते-ताकते मानो उस चाँद के कान हों, कह उठा—'कल मैं जा रहा हूँ! कल मैं चला जाऊँगा यहाँ से हमेशा के लिए!'

जीवन के दस साल इस कोठरी में, इस नीम की छाया में बीत गये। आज आख़िरी रात है। कल वह जाने कहाँ होगा!

एक भयंकर व्यथा से पीड़ित होकर वह उठकर बैठ गया। फिर टहलने लगा।

ज़रा दूर पर लछमना की टीन के आगे कुछ स्फुलिंग-सा चमक उठा। श्यामसुन्दर व्याकुल हृदय लिये उधर चला आया। लछमना की आँख खुल गई थी और वह उकड़ूँ बैठा चिलम पी रहा था। श्यामसुन्दर ने आधी रात में उसके आगे खड़े होकर कहा—'लछमना, मैं सबेरे चला जाऊँगा!'

'कहाँ मालिक?—' लछमना ने त्रस्तभाव से पूछा।

श्यामसुन्दर ने हँस कर कहा—'मुझे नये साहब ने निकाल दिया है। कल मैं यहाँ से हमेशा के लिए जा रहा हूँ।'

लछमना अँधेरे में गुम-सुम बैठा था।

श्यामसुन्दर ने प्यार के स्वर में कहा—'लछमना, तू ने मेरे ऊपर

बहुत एहसान किये हैं। तुझे कुछ भी बदले में नहीं दे जा रहा हूँ। भाई, जो कभी तेरे साथ बुरा व्यवहार किया हो, उसे याद मत रखना।'

लछमना रोने लगा।

श्यामसुन्दर ने दीर्घ श्वास खींच कर कहा—'सो जा। बहुत रात हो गई। रो मत लछमना!' ..

...उसके सयम का बाँध टूट-फूट गया। उसने किसी से भी अपनी इस यात्रा के विषय में न कहा था। वह बात उसने अब पेड़ से कह दी, कोठरी से कह दी, लछमना से कह दी, चाँद से कह दी!

और कहाँ गई श्यामसुन्दर की धीरता, कहाँ गई मर्दानगी? वह अपने आँसू न रोक सका। घुटनों से छाती दबा कर आँखों से गरम पानी बहा कर निःशब्द चीत्कार करके श्यामसुन्दर 'अगोचर' से कहने लगा—'मैं कल चला जाऊँगा!'

हाय, कहीं से सहानुभूति का एक शब्द नहीं, विदा का नमस्कार नहीं।

× × ×

...दूसरे दिन सबेरे नये डाक्टर अपेक्षाकृत जल्दी आ गये। अपना कमरा खुलवा कर भीतर आ बैठे। कुछ पढ़ रहे थे शायद कि बाहर दरवाज़े पर खड़े श्यामसुन्दर ने नम्रता से पूछा—'मैं अन्दर आ सकता हूँ?'

नये डाक्टर ने चौंक कर सिर उठाया। चेहरे पर प्रसन्न भाव आ गया। उसी भाव से बोले—'आओ, आओ।'

श्यामसुन्दर ने सामने वाली कुरसी पर बैठ कर नम्रता से कहा—'मैं आज ही जाना चाहता हूँ।'

नये डाक्टर ने कहा—'ठीक है। और कुछ?'

'एक प्रार्थना और है', श्यामसुन्दर ने एक पोटली सामने मेज पर रख कर विनम्रता से कहा—'यह मेरी पाप की कमाई है। जुलाहों के

मुहल्ले में कोई कुँआ नहीं है। उन्हें फ़र्लाङ्ग भर से पानी लाना पड़ता है। मेरी अभिलाषा थी कि जुलाहों के मुहल्ले में मसजिद के पास एक पक्का कुँआ बन जाता। इसी अभिलाषा को पूरी करने के लिये इतनी सालों से घूस ले रहा था पैसे वालों से और हर महीने अपनी तनख्वाह में से दस रुपये डाल रहा था। झूठी गवाही का ढाई सौ रुपया भी इसी पोटली में है। कुल नौ सौ अड़तालीस रुपया, पौने ग्यारह आना रक़म है। मेरी प्रार्थना है कि आप इसे स्वीकार करें। कभी कुँआ बन सके तो बहुत अच्छा होगा। न बन सके तो आप इस रक़म को चाहे जिस तरह ख़र्च कर दें।'

नये डाक्टर ने कहा—'ठीक है। और कुछ?'

श्यामसुन्दर ने अप्रतिभ हो कर कहा—'क्या मेरी बातों पर आप को विश्वास नहीं हो रहा है?'

डाक्टर ने गभीर होकर कहा—'मुझे विश्वास है, लेकिन शर्मा...'

'जी, साहब!'

नये डाक्टर ने उसकी आँखों में आँखें डाल कर अत्यन्त दृढ़ स्वर में कहा—'तुम यहाँ से जा नहीं सकते!'

'जी?'

'तुम नहीं जा सकते!'—नये डाक्टर ने मानो शिथिल होकर कहा—'मुझे बहुत अफ़सोस है शर्मा, कि मैं तुम्हें कल तक पहिचान नहीं सका। मुझे बहुत ख़ुशी है शर्मा, कि मैंने कल तुम्हें पहिचान लिया।'

श्यामसुन्दर ने कम्पित कंठ से कहा—'आप को धोखा हुआ है साहब! मैं सचमुच नीच हूँ, सचमुच पापी हूँ, सचमुच घूसख़ोर हूँ। मैं आपके साथ रहने के क़ाबिल नहीं हूँ। आप महान् हैं।'—कहते-कहते श्यामसुन्दर की आँखें सजल हो उठीं। उन्हीं जल-भरी आँखों से नये साहब को निहारता वह करुण स्वर में बोला—'अब मुझे जाने दीजिये।

और मुझे आशीर्वाद दीजिये कि कभी मैं भी आपकी तरह 'मनुष्य' बन सकूँ—'

श्यामसुन्दर का गला भर आया और दिल भर आया। वह उठ कर खड़ा हो गया और आगे को झुक कर नये साहब की चरण-रज लेने लगा तो नये साहब ने ताक़त लगा कर उसे रोक लिया। फिर उसके सामने खड़े होकर उसके दोनों हाथ पकड़ कर गद्गद स्वर में बोले—'मेरी ओर देखो!'

श्यामसुन्दर की आँखों से आँसू टपक रहे थे। उसने सिर न उठाया। नये साहब ने काँपती ज़ुबान से कहा—'मेरी ओर देखो शर्मा!'

तब श्यामसुन्दर ने अपनी आँसुओं में तैरती आँखें ऊपर कीं। उन आँखों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। तो भी श्यामसुन्दर जान पाया कि नये साहब की आँखों से टपाटप आँसू गिर रहे हैं। उन्हीं आँसुओं के बीच नये साहब ने किसी तरह कहा—'शर्मा, तुम्हारे बिना मैं अब ज़िन्दगी नहीं बिता सकूँगा। मैं तुम से विनय कर रहा हूँ शर्मा! मैं तुम से भीख माँगता हूँ! कहो, 'मैं नहीं जाऊँगा!' कहो शर्मा, 'मैं नहीं जाऊँगा!' कहो!'

तब श्यामसुन्दर ने मानो बिलकुल शक्ति खो दी। रोता-रोता बोला—'मैं नहीं जाऊँगा।'

नये साहब ने श्यामसुन्दर को कसकर छाती से लगा लिया।

———o———

नाक

विजयानन्द ने मेरे साथ मैट्रिक किया है। मेरी तरह वह भी रोटियों को मोहताज रहा है। इण्टर से दोनों की पढ़ाई छूट गई। मैं एक पत्रिका का एजेण्ट बना और उसने शहर में एक छोटी-सी दूकान किराये पर लेकर फ़ोटोग्राफी शुरू की।

इस कहानी से विजयानन्द का सम्बन्ध है। उसी के पास से इसका 'अथ' हुआ था...।

डेढ़ साल से ऊपर की बात है। पड़ोस के होटल में खाना खाकर उसकी दूकान में आराम करने चला आया था।

दरी पर एक किनारे लेट कर मैंने विजयानन्द से पूछा—'आमदनी कुछ हो रही है?'

उसने कहा—'आमदनी अभी भला क्या होगी; लेकिन हाँ, घाटा नहीं हुआ है।'

'तो भी ग़नीमत है। कितने फ़ोटो खींचे इस सप्ताह में?'

'इस सप्ताह में? आठ।'

'आठ! इतने आर्डर तुम्हें मिलने लगे?'

'हाँ, और तुम्हें सुन कर आश्चर्य होगा, सात आर्डर एक ही सज्जन के यहाँ से मिले हैं, रोज़!'

'रोज़! कैसे?'

विजयानन्द ने हँस कर कहा—'बहुत ही मज़ेदार बात है। मैं तुम्हें

सुनाने ही वाला था। इसी पिछली मई की बात है। एक भलेमानस यहाँ सामने सड़क पर बार-बार दूकान के सामने चक्कर काट रहे थे और हर बार मेरी ओर देख लेते थे। माजरा क्या है? मैं उठकर उनके पास गया। पूछा कि—क्या चाहते हैं। ठिठक कर उन्होंने मुझ से सब बात दरियाफ़्त की फिर अन्त में बतलाया कि फ़ोटो खिंचवायेंगे।

'ख़ैर, मैंने फ़ोटो खींच दिया। तीसरे दिन वे ख़ुद आकर तीनों कापी और प्लेट ले गये।'

'फिर?'

'सुने जाओ' चुपचाप। दूसरे दिन फिर वे यहाँ आये और ऊपर छत पर एकान्त में ले जाकर मुझ से कहा कि—'आप मेरे घर चलकर मेरा फोटो उतार सकते हैं?' मैंने कहा—शौक़ से। बस साहब, उसी दम दोनों जने ताँगा करके उनके घर पहुँचे।

'अच्छा-ख़ासा कमरा था। दक्षिण की ओर एक खिड़की थी। उसी के नीचे कुरसी डाल कर वे बैठ गये और मुझसे 'केमरा' ठीक करने को कहा। उस जगह 'लाइट्' ठीक तरह नहीं पड़ती थी। मैंने कहा—इधर बैठिए दरवाज़े के पास, इधर ठीक रहेगा। तो फ़ौरन घबराकर बोले—'नहीं, मैं इसी जगह फ़ोटो उतरवाऊँगा। आपकी मर्ज़ी हो तो उतारिये वरना मैं किसी और की तलाश करूँगा।' ख़ैर, मैंने मजबूर होकर उसी जगह से तसवीर ले ली और ताँगे के दाम लेकर चला आया।

'अब सुनिये, तीसरे दिन वे कापी लेने आये। तसवीर बहुत साफ़ न थी, फिर भी अच्छी आई थी। बड़े ग़ौर से वे उसे देखते रहे। अन्त में बोले—'जो मुझे खटका था, वही बात निकली।' मैंने पूछा—क्या हुआ, क्या बात निकली? बोले—'नाक!' मेरी समझ में नहीं आया, नाक क्या? तब इधर-उधर आँखें दौड़ाकर धीरे से मुझसे कहने लगे कि—'आप किसी से चर्चा तो नहीं करेंगे?' मैंने हामी भर दी। तब वे तसवीर को मेरे आगे रख कर बोले—'इसमें आप मेरी नाक देखिये!'

बड़ी देर तक मैं उनकी नाक देखता रहा, कोई ख़ास बात नहीं मालूम पड़ी। मैंने कहा—ठीक है, मुझे तो कोई बात नहीं जान पड़ती। काफ़ी साफ़ आई है। बोले—'जरा ग़ौर से देखिए, बायीं ओर!' बायीं ओर ? 'हाँ। बायीं ओर'—बोले—'ज़रा ग़ौर कीजिये।' कुछ भी नहीं जान सका। तब उन्होंने एक गहरी साँस लेकर तसवीर उठा ली। फिर अपनी नाक पर नज़र जमा कर दुखभरे स्वर में कहा—'अफ़सोस है, आर्टिस्ट होकर भी आप यह बात नहीं जान सके!' क्या बात है ? उन्होंने मेरे सामने फिर तसवीर रख दी और कहा—'जनाब, मेरी नाक बायीं ओर को मुड़ रही है!' नाक बायीं ओर को मुड़ रही है ? बोले—'जी हाँ, मुझे उसी दिन शीशे में देखकर पता लग गया था। अचानक ही पता लग गया। कमरे में ऊपर जाकर देखने पर नजर नहीं आता, लेकिन उस खिड़की के नीचे खड़े होकर शीशा में देखने पर साफ़ दीख जाता है कि नाक बायीं ओर को कुछ मुड़ गई है ···।'

'अरे!'—मैंने आश्चर्य में डूब कर कहा।

विजयानन्द ने हँसी रोककर कहा—'भाई, मैं तो उसकी बात सुनकर अवाक् रह गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। अच्छा-ख़ासा आदमी था, किसी भी बात से कोई पागलपन या बदहवासी नहीं जान पड़ी।

'तसवीर फिर उसने सामने को कर ली और थोड़ी देर तक देखकर कहा—'लेकिन अभी बहुत थोड़ी मुड़ी है, देखिये!' मैंने भी कहा—जी हाँ। बोला—'अब आप को नज़र पड़ी न ? ओ, साफ़ मुड़ान मालूम पड़ती है, यह इधर बायीं ओर को तिरछापन है न ?' मैंने कहा—जी हाँ। सन्तुष्ट हो गया, एक नोट निकाल कर मुझे दिया फिर बड़े प्रेम से मेरा हाथ पकड़कर कहने लगा—'भाई, तुम मेरा एक काम कर दो। बोलो, करोगे ?' कहिये, क्या आप की सेवा कर सकता हूँ ? बोला—'किसी ऐसे डाक्टर को बताइये जो इस बीमारी को रोक सके! वरना आप

ही सोचिये, अगर मेरी नाक इसी तरह बायीं ओर को मुड़ती गई—मुड़ती ही गई ···।'

मेरा हँसी के मारे बुरा हाल था। विजयानन्द भी हँसी नहीं रोक सका। फिर स्वस्थ होकर उसने सुनाया—'मैंने डाक्टर मुकर्जी का पता उसे लिखकर दे दिया। पता पढ़ कर बोला—'यह मेरी बीमारी को ठीक कर देंगे, आप को विश्वास है ?' मैंने कहा—बेशक़, वे बहुत अच्छे डाक्टर हैं। बोला—'फ़ोटो मैं उनके पास लिये जाऊँगा, इससे उन्हें रोग समझने में मदद मिलेगी। इस तरह चेहरे पर कुछ पता नहीं चलता।'

'ख़ैर साहब, डाक्टर मुकर्जी के पास वह गया और इलाज शुरू हो गया। भगवान् जाने, उन्होंने क्या दवा दी और क्या रोग समझा।

'आठ-दस रोज बाद अचानक वे जनाब फिर यहाँ आये। बोले—'आज आप को मेरे घर चलना होगा। फ़ोटो उतारिये। डाक्टर साहब की दवा से कितना फ़ायदा हुआ है, इसका पता लगाना है।' गये साहब, हम उनके घर फिर गये। फिर उसी खिड़की के नीचे, जहाँ पर उन्हें अपनी नाक मुड़ती मालूम पड़ती थी, फ़ोटो उतारा। फिर तसवीर लेने आये। बड़े ग़ौर से देखते रहे, फिर बोले—'कुछ-कुछ असर हुआ तो है। डाक्टर की दवा अच्छी है।' उस दिन फिर एक नोट दे गये ···।'

'फिर ?'—मैंने उत्कण्ठा से पूछा।

'फिर क़रीबन एक पखवारे तक नहीं आये। फिर सोलहवें-सत्तरहवें दिन मुझे बुला ले गये। फ़ोटो उतारा और पता चल गया कि नाक उनकी ठिकाने पर आ रही है। फिर नोट दे गये।'

'अच्छा फिर ?'

'फिर क़रीबन एक सप्ताह बाद आख़िरी तसवीर उतारी गई और बीमारी उनकी जाती रही। फिर वे यहाँ से पटना चले गये। तब के गये-गये अब आये हैं, अभी पिछली अट्ठाईस तारीख़ को।'

'अब क्या हाल है ?'

'सुनाता हूँ। जिस दिन लौटे उसी दिन फ़ौरन मेरे पास आये। बहुत दुबले हो गये थे। मैंने कहा—कहिये, क्या हाल है? बोले—'हाल बुरा हो रहा है भाई, बीमारी फिर लौट पड़ी है!' क्या फिर—? बड़े कातर स्वर से बोले—'हाँ भाई, बहुत ही परेशान हूँ। अब इस बार दायीं ओर को नाक मुड़ रही है। और बहुत तेज़ी से तिरछी होती चली जा रही है। इस बार तो चेहरे पर ही पता लग जाता है। चाहे कहीं देखो। आपको तो मालूम पड़ रहा होगा। इधर को, दायीं ओर को, तिरछापन है कि नहीं?' मैंने सोच कर कहा—कुछ-कुछ। 'कुछ-कुछ नहीं मिस्टर, खूब अच्छी तरह है, बहुत मुड़ गई है!' एक दुखभरी साँस लेकर बोले—'इसी तरह अगर मुड़ती गई, मुड़ती गई—भला सोचिये तो!' मैंने कहा—डाक्टर मुकर्जी ने पहिले आपको ठीक कर दिया था, उन्हीं के पास जाइये। तब उन्होंने आँखों में आँसू भर कर कहा—'डाक्टर मुकर्जी का पिछले महीने में देहान्त हो गया। वे अगर होते तो काहे की चिन्ता थी। मैंने प्रायः सभी अच्छे डाक्टरों को दिखलाया है। कोई भी इस रोग का निदान और चिकित्सा नहीं जानता, सब गँवार हैं!' मै भी चुप रह गया। उन्होंने कातर कण्ठ से कहा—'भला आप सोचिये तो, अगर इसी तरह मेरी नाक दायीं ओर को मुड़ती गई तो कहाँ पहुँचेगी?' कहाँ पहुँचेगी?—कौन जानता है? मैंने भी सोच प्रकट किया। बोले—'आप एक फोटो उतार कर अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर ग्रियर्सन के पास भेजिये। वे अपनी सम्मति देंगे।'

'उस दिन यहीं फ़ोटो उतारा गया। तसवीर देखकर वे व्यथित हो उठे। बोले, 'एकदम तिरछी आई है, देखिये!' मैंने कहा—जी हाँ। फिर वह तसवीर डाक्टर ग्रियर्सन के पास विवरण-सहित भेज दी गई। अभी उसका उत्तर नहीं आया है। उसी दिन से फिर मुझे वे प्रतिदिन घर पर बुला रहे हैं, प्रतिदिन एक तसवीर ली जाती है कि बीमारी बढ़ रही है या रुकी है। आज सात दिन हो चुके!'

मुझे एक बार उस विचित्र रोगी को देखने की इच्छा हुई। विजया-

नन्द ने कहा—'आज शाम को आ जाना, तीन-साढ़े तीन के क़रीब। उसका नौकर ताँगा लेकर आयेगा।'

× × ×

शाम को विजयानन्द के साथ उसके कमरे में पहुँचा। उस समय हाथ में शीशा लिये वह व्यक्ति एक कुरसी पर चुपचाप बैठा अपनी शकल देख रहा था।

विजयानन्द को देखते ही उसने कहा—'मिस्टर वर्मा, आज मुझे एक नई बात मालूम हुई है।'

'क्या बात है?'—विजयानन्द ने पूछा।

उसने कहा—'दिन के साथ-साथ मेरी बीमारी बढ़ती है और रात को घट जाती है। आप मेहरबानी करके कल दस बजे सुबह मेरे पास आयें, तब आप देख पायेंगे कि मेरी नाक किस क़दर दायीं ओर को मुड़ी रहती है। मिस्टर वर्मा, अगर इसी तरह नाक दायीं ओर को मुड़ती गई मुड़ती गई—अब मैं क्या करूँ! डाक्टर ग्रियर्सन के पास आप एक 'रिमाइण्डर' तो भेज दीजिये। मैं बहुत परेशान हूँ।'

मैं चकित होकर उस आदमी को देखता रहा। चिन्ता के कारण वह बहुत दुर्बल हो गया था। आँखों में जाने कैसा एक विचित्र भाव था और बात करते समय उसकी दृष्टि जाने कैसी फैल-सी जाती थी। एक अजीब-सी हरकत करके वह बार-बार हाथ के शीशे को देखकर गरदन मोड़ता था। देख कर दया लगी···।

कई महीने तक फिर विजयानन्द के पास नहीं जा सका। अचानक एक सन्ध्या को सिनेमाघर के आगे उससे भेंट हो गई। 'इण्टरवल' में उससे फिर उस विचित्र रोगी का समाचार पूछा।

विजयानन्द ने कहा—'उसकी वह भावना बुरी तरह बढ़ गई है।

शायद पागल हो जायगा। खाना-पीना छूट-सा गया है। दिन रात अपनी तसवीरें और शीशे में अपना मुँह देखता रहता है। मेरी उतारी हुई सब तसवीरों को सामने रख कर पैमाने से नाप-नाप कर उसने एक काग़ज पर 'तिरछेपन' के नम्बर लिखे हैं कि प्रत्येक दिन के हिसाब से उसकी नाक चावल बराबर मुड़ती गई है। उसने वे नम्बर और फोटो सब डाक्टरों को दिखलाये हैं। कुल मिलाकर उसकी नाक दायीं ओर को पौन इञ्च मुड़ गई है। पर डाक्टर मानते नहीं! वह लखनऊ, बनारस, इलाहाबाद, बम्बई, देहली सब जगह फ़ोटो लिये-लिये घूमता फिरा है।

'उसे रुपये की कमी नहीं है। लेन-देन के व्यापार में लाखों कमाया है। बहुत भारी 'सूदख़ोर' है। ज़िन्दगी भर ग़रीबों का ख़ून चूसा है उसने। ख़ूब धनी है। अब अमेरिका जाने को कहता है। डाक्टर ग्रियर्सन ने मेरे पास जवाब भेज दिया है कि—यह 'पागलपन' के सिवाय कुछ नहीं है। मैंने उसे दिखलाया नहीं।'

'क्या अब भी फोटो उतरवाता है?'

'नहीं, मैंने फोटो उतारने को ख़ुद मना कर दिया है। मुझसे नाराज़ हो गया है। परसों यों ही हाल-चाल लेने गया था। अब उसे एक नया शक पैदा हुआ है।'

'क्या?'

'कहता था कि—दिन में मेरी नाक दायीं ओर को झुक जाती है और रात में बायीं ओर को झुकती है।'

मुझे हँसी आ गई। विजयानन्द भी हँसने लगा। इस आदमी की कैसे बुद्धि पलट गई!

× × ×

गत मास में पत्रिका के काम से आगरा गया था। वहाँ एक मित्र के साथ पागलख़ाना देखने भी गया।

आख़िर वह आदमी पागल हो ही गया। पर अब इस समय की उसकी हालत बहुत ही दर्दनाक थी। परमात्मा किस अपराध पर, कब किस आदमी को क्या दण्ड देते हैं, कौन जानता है? कभी यह आदमी पूर्ण सबल और स्वस्थ था। आज वह जाने क्या हो गया है।

मैंने आगरे में उस दिन जब पागलख़ाने में उसे देखा तब वह नंगे बदन, निरी हड्डियों का ढाँचा लिये एक स्टूल पर सीधा-सतर बैठा था और लोहे की दो मोटी छड़ों से अपनी नाक को दोनों ओर से दबाये था।

पड़ोसी

गाँव के बीच से घूमती हुई कच्ची राह पच्छिम की ओर निकल गई थी। उसी राह के किनारे, जहाँ आबादी ख़तम होती थी, एक छोटा-सा घर खड़ा था। आगे राह थी और पीछे खेत थे। गाँव के छोर पर सन्तरी की तरह मिट्टी की दीवारें खड़ी थीं और उन पर फूस के छप्पर पड़े थे।

यह घर कसाइयों का था। घर में दो भाई थे, दो स्त्रियाँ थीं और एक बच्चा था। दोनों भाई बकरे-बकरियों को 'हलाल' करके मांस बेचते थे।

जब बाग़ों की ओट में सूरज डूबता होता और राह में गोधूलि उड़ती होती, तब दोनों भाई अपनी घोड़ियों पर खुट-खुट करते किसी दूर के गाँव के बाजार से लौटते। मांस बेच कर मिले हुए पैसों का अनाज पिछौरी में बँधा आगे धरा होता और पीछे छुरियाँ और बाँट-तराज़ू लटके रहते।

इसके बाद घर में चक्की चलती। सामने के ताक में ढिबरी टिम-टिमाती और उसके प्रकाश में छोटी बहू घोड़ियों का दाना भिगोती और बड़ी बहू अनाज पीसती। दोनों भाई घर के आगे खाट डाल कर बैठते और बारी-बारी से हुक्का पीते। और धीरे-धीरे रात डूबती जाती।

उस समय कहीं देश-परदेश से आता गाँव का हर आदमी जानता होता कि कसाइयों के यहाँ सब जाग रहे होंगे। और बहुत दूर से कसाइयों के घर की वह ज़रा-सी रोशनी दीख जाती और सामने आने पर चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते दोनों भाई बैठे मिलते। वे जैसे गाँव के हर आदमी की

पदचाप पहिचानते थे। फौरन अँधेरे में पुकार उठते—'भैया सलाम !' और आने वाला सलाम का उत्तर देकर गाँव में चला जाता। फिर दोनों भाई चुपचाप हुक्का पीते और अन्धकार की ओर देखते रहते।

आधी रात खिसकती तो घर में रोटियाँ सिकतीं। और एक घड़ी रात रहे चूल्हा बुझता।...

शायद ही कभी उनको गाँव वाले दिन में देख पाते। न स्त्रियाँ ही कहीं किसी के यहाँ आती-जातीं और न लड़का ही मुहल्ले के लड़कों के साथ बाहर खेलने निकलता। अछूतों की तरह अलग पड़े थे और पापी की तरह सब की नज़रों से छिपे रहते। राक्षसों के जैसा कर्म था और निशाचरों जैसी वृत्ति थी।

उन दोनों भाइयों से कभी किसी का झगड़ा न हुआ। न औरतें ही कभी किसी पड़ोसिन से लड़ीं और न लड़के ही ने कभी किसी लड़के को मारा-पीटा। ऐसी अस्तित्वहीन-सी उनकी हस्ती थी और ऐसी व्यक्तित्व हीन-सी हैसियत थी।...

जसवन्तसिंह की चौपाल पर दो दिन से चंग बज रही थी। एक साधू आ गया था। दिन में सुलफ़े के दम लगाकार मस्त पड़ा रहता। रात को नशे में चूर होकर तड़-तड़ करके चंग बजाता और 'ख़्याल' गाता। समाँ बँध जाता और सुनने वाले झूम-झूम पड़ते।

दम लगाने के लिए गाना रुका और छोटी-सी चिलम में हाथ भर ऊँची लपक चमक कर बुझ गई। उसका नीला धुआँ सिर पर मँडराया और साधू ने लाल आँखें लिये चिलम आगे बढ़ा दी। चिलम आगे बढ़ती गई, लपक उठती गई और धुआँ मँडराता गया।

मसाराम नाई जूतों के पास बैठा 'ख़्याल' सुनर हा था।

जसवन्तसिंह ने कहा, 'लो, मंसा को चिलम दो,' तो मसा हाथ जोड़ कर बोला—'सरकार, मैं नहीं पीता।'

जसवन्तसिंह ने घुड़क कर कहा—'तो फिर यहाँ क्या अपनी ऐसी-तैसी को आया है ?'

मसा हँस कर बोला—'सरकार, बुलौआ देने आया था। कल पंचायत है।'

किसी ने पूछा—'काहे की पंचायत होगी ?'

जाने किसने उत्तर दिया—'कसाइयों के यहाँ गाय पकड़ी गई है। काटने वाले थे, इसी की पचायत होगी।'

जसवन्तसिंह की आँखें लाल हो रही थीं। उन्हीं आँखों से मसा को ताक कर बोले—'क्यों रे मसा, क्या यही बात है ?'

मसा बोला—'हाँ सरकार, इसी की पंचायत होगी कि कसाइयों को गाँव से निकाल दिया जाय।'

जसवन्तसिंह ने लाल आँखें लिये कहा—'इसके लिए पंचायत होगी! उन दोग़लों को जूता मार कर अभी नहीं निकाला जा सकता ?'

पर साधू ने ध्यान न दिया। अँगुली में छल्ला पहिना और आँखें मूँद कर 'तड़-तड़' चंग बजा कर गा उठा—'सुना है तुमने हैं लाखों तारे...'

मसा नाई उसी गाने के बीच चुपके से उठ गया।

× × ×

पड़ोस में जो घर था, उसमें रामचन्द्र ब्राह्मण के गाय-बैल बँधते थे और भुस का कोठार था। उसी रामचन्द्र की पत्नी, पड़ोसिन बहू, अपनी बछिया को रोटी देने आई थी। वह नाँद पर खड़ी हो गई, और झुककर इधर देखने लगी। कसाइयों के घर में सन्नाटा छाया था और बड़ी बहू छप्पर की थुनिया के सहारे गुमसुम बैठी थी।

पड़ोसिन ने हौले से पुकारा—'चाची,' तो वह चौंक पड़ी। पुकारने वाली की ओर देखा और साँस खींच कर उठी और चुपचाप आ खड़ी हुई दीवार के नीचे और सिर झुका लिया और पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेदने लगी।

पड़ोसिन ने हौले से पूछा—'यह क्या किस्सा हो गया चाची ? काहे की पचायत हो रही है ?'

बड़ो बहू ने एक दुख की साँस ली और फिर धीरे-धीरे कहने लगी—'हमारे ऊपर विपदा आ पड़ी है। आज हमें गाँव से निकाल देंगे।'

पड़ोसिन ममता के स्वर में बोली—'कौन नासपीटा निकालेगा गाँव से ? काहे को निकालेगा ? ऐसी क्या ख़ता की है तुमने ?'

दुख की साँस खींचकर कहा—'सब गाँव वाले आज पंचायत करके निकालेंगे हमें। बमनपुरा के बाज़ार में गैया बिक रही थी, सो खरीद लाये इस सनीचर को पचास रुपये में। अक़ल पर पत्थर पड़ गये दोनों की। बिलकुल डाँगर गैया ख़रीद लाये और यहाँ लाकर मेरे सिर पै बाँध दी। पाँच सेर भुस खा गई तो घटी भर दूध दिया! मैंने तभी कहा था कि 'इस से पिंड छुड़ाओ। दाम तो पूरे मिलेंगे नहीं, घाटा उठा कर ही बेच दो।' पर दोनों में से एक ने भी न सुनी। गैया वह विपदा बन कर आई थी। आप तो चले गए पैंठ करने, पीछे यहाँ पाँच ज्वान लाठी लेकर आ खड़े हुए चौखट पै और चिल्ला कर बोले कि 'कहाँ है गैया! हम अभी गैया खोल ले जायँगे। इन लोगों के पख जम आये हैं क्या ? गाँव में गो-बध करेंगे ? कहीं अपना ही सिर न उड़ जाय!' बालक खड़ा था, वह क्या जवाब देता ? मुँह देखता रहा सब के और वे लोग गैया खोल ले गये।'

पड़ोसिन सुनती रही, मुँह देखती।

साँस खींच कर बड़ी बहू ने कहा—'अब आज पंचायत बैठ रही है। विपदा आ पड़ी है हम पै। कोई बचानेवाला नहीं। गाँव से बाहर कर देंगे हमें। मार-पीट कर निकाल देंगे।' कहते-कहते रोने लगी सिर झुका कर।

पड़ोसिन ने ढाढ़स बँधा कर कहा—'चाची, तुम चिन्ता न करो। और कोई तुम्हारी ओर न हो, भतीजे तो हैं तुम्हारे। मै अभी जाकर

कहूँगी। वाह, यह भी कोई इन्साफ है कि बिना अपराध सज़ा दी जाय! गाँव वालों की क्या आँखें फूट गई हैं, जो ऐसी बातें कहते हैं? गैया अपने घर के लिए लाये तो कह दिया कि वध करेंगे! किस हत्यारे ने यह बात उड़ाई गाँव में?'

आँसू पोंछ कर बोली—'राम जाने किसने हमारे साथ दुश्मनी बाँधी है। किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, किसी को दुख नहीं दिया। हम ग़रीब अभागे एक ओर पड़े हैं, अपने दिन बिता रहे हैं, सो भी नहीं देखा जाता। अब हमें गाँव से निकालने पै तुले हैं।'

पड़ोसिन ने सान्त्वना देकर कहा—'कौन मरा निकालेगा तुम्हें? तुम्हारे भतीजे के जीते जी किसकी हिम्मत है, जो तुम्हें बरबाद करे? बिलकुल मत डरो चाची! काहे को इतना रंज कर रही हो? मैं कहती हूँ, भगवान् क्या ऐसा जुल्म होने देंगे? भगवान् पर भरोसा रक्खो। हम तुम्हारे साथ हैं। तुम से पहिले हम निकल जायँगे गाँव से। मैं अभी जाकर कहूँगी। सब ठीक हो जायगा। चाचा क्या अभी नहीं लौटे पैंठ से?'

दुख में डूबी बोली—'आज पैंठ नहीं गये। जब से यह खबर सुनी है, दोनों जने बेहाल हो गये हैं। तब से भागते फिर रहे हैं, मिन्नतें कर रहे हैं। दिन भर हो गया, 'एक दाना किसी के मुँह में नहीं पड़ा।' कह कर वह फिर रोने लगी।

पड़ोसिन ने स्नेह से कहा—'रोओ मत, चाची! तुम देख लेना, पंचायत में कुछ नहीं होगा। मेरा दिल कहता है कि तुम पर आँच नहीं आयेगी। चूल्हा सुलगाओ, रोटी-पानी करो। हाय दैया! देखो तो साँझ होने को आई और अभी सब घर निराहार ही बैठा है!'

बड़ी बहू सिर झुकाये खड़ी रही।

दीवार पर यों उचके-उचके पैर पिराने लगे पड़ोसिन के। नीचे को उतरती-उतरती बोली—'मैं अब जा रही हूँ, चाची, तुम घबराओ मत। रामजी सब भला करेंगे।'

× × ×

उस साल जब शहर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था, तो ठाकुर जसवन्तसिंह के लड़के लक्ष्मण ने ठाकुरद्वारे में यह बात उठाई थी कि 'इन मुसल्लों को हम अपने गाँव से निकाल दें।' दीनानाथ पंडित ने इस पर कहा कि 'ठीक है, हम राम-भक्तों के बीच इन राक्षसों का क्या काम है? चांडाल का वास तो शास्त्र में सर्वथा निषिद्ध है।' और भी कई आदमियों ने यही राय दी कि इन कसाइयों को गाँव-बाहर कर दो। पर बड़े-बूढ़ों ने और पंच लोगों ने हामी न भरी। उन सब ने करुणा खाई, और यही कहा कि 'इन से भला हमारा क्या अनिष्ट होता है! एक किनारे पड़े हैं। जाने कब से रहते आये हैं। बिना किसी ख़ता के इन्हें गाँव से क्यों निकालें?'

अब आज वह बात समाप्त हो गई। चारों ओर से सब ने कहा कि 'इन कसाइयों की हिम्मत तो देखो, गाँव में हलाली की तैयारी की हरामियों ने! आस्तीन के साँप हो गये थे तो। बस, अब तो हो चुकी दया। अब रहने मत दो इन्हें इस भूमि पर।' सुन कर बड़े-बूढे चुप रहे।

गाय वह पकड़ी गई कसाइयों के घर में, और फिर पंचायत का बुलौआ घूमा गाँव में।...

हीरालाल दाढ़ीवाले का बड़ा दबदबा था। ब्राह्मणों में सिरताज थे और उनकी सब में चलती थी। मलखान सिंह अपने जीते-जी सरपञ्च रहे। तीन साल हुए उनको मरे। तब से सरपञ्च हीरालाल ही हो गये थे। एक तो ब्राह्मण, दूसरे ज़मींदार। भगवान् ने कुछ ऐसे गुण दिये थे कि किसी का उनके सामने मुँह न खुलता था। किसी में इतनी ताक़त न थी, जो हीरालाल की बात काट दे।

अब और कहाँ जाकर फ़रियाद करें? विपदा आ पड़ी, तो इन्हीं हीरालाल दाऊ के क़दमों में आ पड़े। क़दमों पर टोपी डाल दी, और लोट गये चरणों में। और आँखों में आँसू भर कर बोले—'रहम करो,

दाऊ, हम पै ! गाँव से मत निकालो हमें । तुम्हारे सिवाय हमारा और कौन है ?'

हीरालाल दाढ़ीवाले ने उनके सिर उठाये अपने चरणों से, टोपियाँ उठा कर झाड़ीं, और शान्त गम्भीर स्वर में बोले—'ऐसे दुखी क्यों हो रहे हो दोनों ? मेरे ऊपर भरोसा करते हो, तो फिर डर काहे का ? यह बतलाओ कि तुम्हें यह बेवकूफ़ी क्यों सूझी ? जानते हो, गाँव बाम्हन-ठाकुरों का है । उनकी आँखों के सामने उनके राज में तुमने गोवध करने की ठानी ! यह पाप करने पै तुले ! सो क्यों ?'

बड़ा भाई सख़ावत हाथ जोड़कर बोला—'दाऊ तुम्हारे चरन पकड़-कर कसम खाता हूँ, जो मैंने गैया हलाल करने की बात सपने में भी सोची हो । यक़ीन होता है दाऊ, कि तुम्हारा सख़ावत ऐसा पाप करेगा ?'

हीरालाल ने आँखें मींचकर कहा—'मुझे यक़ीन नहीं था बेटा, पर गैया तो तुम्हारे घर में पकड़ी गई और तुमने अपने मुँह से कहा कि 'हम इस गैया को ईद पर हलाल करेंगे, और इसलाम का सवाब लूटेंगे ।' कहा था तुमने ? देखो, मेरी ओर देखो । मेरे सिर की सौगन्ध खा कर कहो, नहीं कही थीं तुमने ये बातें ?'

सख़ावत ने तत्काल दोनों पैर कस कर पकड़ लिये दाऊ के और रो कर बोला—'झूठ है दाऊ, बिलकुल झूठ है । मैं तुम्हारे चरनों की कसम खाता हूँ, यक़ीन करो—'

छोटा भाई सिर झुकाये बैठा था । उसकी भी आँखें आँसुओं से भरी थीं । दाऊ के चरण पकड़े-पकड़े सख़ावत उसकी ओर देख कर बोला—'मुन्ना को ले आ अहमदी ! उसके सिर पै हाथ रख कर कसम खाऊँगा दाऊ के आगे । मेरे मुन्ना को ख़ुदा मुझ से छीन ले, अगर मैंने गैया हलाल करने की सोची हो । जा, ले आ मुन्ना को । दाऊ को यक़ीन दिला दे अहमदी ! जा भैया !'

अहमदी उठ कर चल दिया नीचे को।

तब हीरालाल ने शान्त स्वर में आज्ञा दी—'रुको!'

घर का नौकर सरजुआ चौपाल के नीचे बैठा, सन की रस्सी बँट रहा था। हीरालाल ने उचक कर उसे देखा और दाढ़ी पर हाथ फिरा कर बोले—'सरजुआ, जा तो रामचन्द्र को बुला ला। कहियो, अभी चलो। जरूरी काम है।'

...अँधेरा आ गया था। शकल साफ़-साफ नहीं दीखती थी। चारों आदमी, छाया-मूर्त्तियों की तरह, आमने-सामने बैठे थे। अभी-अभी रामचन्द्र ने कहा है कि उसकी औरत ने कसाइयों की ये सब बातें सुनी थीं। अपने कानों से गोबध करने की सुनी और यह भी सुना 'कि 'गाँव वाले हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हम सच्चे मुसलमान हैं, अपना धर्म पालन करने वाले। हम इसलाम के आगे किसी से नहीं डरते।'

कसाइयों ने पड़ोसी की बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया। बैठे रहे सिर झुकाये। हीरालाल ने भी कुछ न कहा उस समय। चारों आदमी छाया मूर्त्तियों की तरह आमने-सामने बैठे थे।

तभी चौपाल की सीढ़ियों पर कोई आदमी चढ़ता दीखा। हीरालाल ने गम्भीर स्वर में पूछा—'कौन?'

आने वाला अँधेरे में सिर झुका कर पालागन करके बोला—'मैं हूँ मंसा।'

'मसा!'

'सरकार!'

हीरालाल ने पल भर सोच कर कहा—'अभी पञ्चों को बुलाने मत जा। घंटा भर बाद। समझा?'

मंसा सिर झुकाकर बोला—'जो हुकुम सरकार!' और उलटे-पाँव लौट गया पीछे।...

'रामचन्द्र!'—दाऊ ने पुकारा।

'हाँ, दाऊ !'—रामचन्द्र ने झट कहा।

'तुम यहीं ठाकुरद्वारे पर रहो बेटा। कोई आये तो उसे बैठाना। मैं अभी आया। खँड़सार का एक चक्कर लगा आऊँ। मजूरा गये कि हैं, देख आऊँ ज़रा। सख़ावत, तुम लोग जाओ अभी। घण्टा भर बाद आ जाना यहाँ।'...

रामचन्द्र के घर की चौखट पर खड़े होकर, एक बार ज़ोर से खाँसकर दाऊ ने आवाज़ दी—'रामचन्द्र !'

कोई न बोला। केवल चूड़ियों की खनखनाहट सुनाई दी। दाऊ ने फिर खाँसा। खाँस कर भीतर घुस आये और आँगन में आ धीर-गम्भीर स्वर में कहा—'बेटी, कुछ बैठने को तो दो हमें। तुम से कुछ बात जानने आये हैं।'

तब अति शीघ्रता से, अति सावधानी से एक पीढ़ा दाऊ के निकट बिछा दिया लाकर और आप थमले की आड़ में जा खड़ी हुई घूँघट काढ़े। कलेजा धक्-धक् कर रहा था। ऐसी कौन बात है, जो आज दाऊ ख़ुद आये हैं उसके पास जानने को? ऐसी क्या बात है, राम!

दाऊ ने पीढ़े पर बैठ कर कहा—'इन कसाइयों का क़िस्सा तो तुम्हें मालूम ही होगा बेटी! तुमसे पूछने आये हैं कि क्या यह सच है कि ये लोग गैया को हलाल करने की बातें कर रहे थे और तुम सुन रही थीं गोठे की दीवार पर? रामचन्द्र ने अभी हमें बताया है कि तुमने इनकी सब बातें सुनीं। कसाइयों ने कहा कि 'गाँव वाले हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हम सच्चे मुसलमान हैं, अपना धर्म पालन करने वाले। हम इस-लाम के आगे किसी से नहीं डरते।' कहा था कसाइयों ने?'

बहू न बोली। थमले की आड़ में खड़ी थी घूँघट काढ़े और ज़मीन की ओर ताक रही थी। सब सुन लेकर ज़मीन को ताकती थी और खड़ी थी।

हीरालाल दाऊ ने प्यार से कहा—'बोलो बेटी! शरम न करो कुछ। मैं तुम्हारे पिता-तुल्य हूँ। पिता के आगे बोलने में काहे की शरम! बेटी,

चुप न रहो। देखो, पंचायत की बेला आती जा रही है। हमें इंसाफ़ करना है। तुम अगर कुछ न कहोगी, तो हमें सच-झूठ का पता कैसे चलेगा? कहो बिटिया, क्या-क्या सुना था तुमने?'

तब बहू ने पतली, काँपती आवाज में धीरे से कहा—'दाऊ!'

दाऊ ने कहा—'हाँ बेटी!'

बेटी बोली पतली, काँपती आवाज़ में—'मेरी ख़ता माफ़ करियो। ग़रीब बाप की ग़रीब बेटी हूँ। मुझ पर दया करके, आप मुझे इस घर ब्याह लाये। चच्चा आपका नाम सुनते हैं, तो माथा नमा लेते हैं, कि उद्धार कर दिया मेरा। मैं तो दासी हूँ आपकी। हुकुम दे रहे हैं, तो सच-सच ही कहूँगी। झूठ बोलना पाप समझती हूँ।'

'बेशक। सच ही कहना बेटी!'

वह बेटी बोली सच-सच। उस बेटी ने कहा—'दाऊ, आप ने जो कुछ सुना है, जो कुछ आप को बतलाया गया है, बिलकुल झूठ है। मैंने कसाइयों के मुँह से एक बात भी नहीं सुनी।'

× × ×

बूढ़े रामदीन चौधरी ने खड़े हो कर, पचायत का फ़ैसला सुना दिया। रामचन्द्र पडित पर तीस रुपया दड पड़ा और दस-दस रुपये दंड पड़े गाय खोल कर लाने वालों पर। लक्ष्मणसिंह सन्नाटे में आ गया जैसे। फिर उसने आगे बढ़ कर खन्न करके दस रुपये पञ्चों के सामने फेंक दिये और साँस खींच कर बैठ गया।

विजय पाल ने भी अपने दस रुपये जमा कर दिये। पर रामचन्द्र सिर झुकाये बैठा था, हिला-डुला तक नहीं। सब उसी की ओर ताक रहे थे कि दाऊ के इकलौते लड़के किशुनी ने भीड़ में से आगे बढ़ कर, बसनी खोल कर, रुपये गिराये। खनन्-खनन रुपये गिरते गये। आवाज रुकी, तो चौधरी की ओर इशारा करके धीरे से बोला—'रामचन्द्र दद्दा के रुपये हैं। गिन लो दद्दू!'

और दद्द ने सब रुपये बटोर कर खड़े होकर कहा—'पञ्चों की राय है कि ये रुपये सख़ावत कसाई को दे दिये जाएँ और गाय भेज दी जाय हरीपुरा की गोशाला में। किसी को कुछ उज्ज़र तो नहीं है ?'

'ठीक है, ठीक है !'—चारों ओर से आवाज़ें आईं।

और उन आवाजों के बीच ही चौधरी ने देखा कि दूर कोने में सख़ावत कसाई खड़ा है हाथ जोड़े। चौधरी ने हाथ से इशारा करके कहा—'आओ आगे। लो ये रुपये सँभालो अपने।'

सब की नजरें उधर गईं। पर सख़ावत कसाई आगे न बढ़ा। वहीं हाथ जोड़े खड़ा था और कह रहा था—'ग़ुलाम की एक अर्ज़ है।'

'क्या अर्ज़ है ?'

बोला—'ग़ुलाम यह कहना चाहता है कि रुपये ये गाय के साथ जायँगे। मुझ नाचीज़ की ओर से गोशाला के लिए यह ख़ैरात मान ली जाय।'

घड़ी भर पञ्चायत में सन्नाटा छाया रहा। फिर चौधरी ने उठ कर संक्षेप मे कहा—'पंचों को तुम्हारी बात मंज़ूर है।'

चंग बजाने वाला साधू दीवार की धोक लगाये बैठा था। वह पलक मारते उठ खड़ा हुआ और आदमियों के ऊपर से छलाँग मारता हुआ जा पहुँचा गोशाला को दान देने वाले कसाई के आगे और उसकी आँखों में आँखें डाल कर देखा और दोनों बाँहें फैला कर कस लिया साधू ने कसाई को कलेजे पर और आँखों से आँसू टपकाकर बोला—'प्रभु, तुम धन्य हो !'

× × ×

साधू इस दृश्य से इतना प्रभावित हुआ कि रात को जब दाऊ की चौपाल पर लोटा भर दूध पी कर लेटा तो फिर उसी घटना को बयान करके गद्गद हो उठा। दाऊ न बोले। साधू ने तनिक स्वर को सयत करके पूछा—'यह रामचन्द्र कौन है बाबा ?'

'भतीजा है मेरा।'—दाऊ ने धीरे से कहा।

'ग़लत!'—साधू ने मैंस्ती से कहा—'वह तुम्हारा भतीजा नहीं हो सकता। तुम तो ब्राह्मण हो बाबा! रामचन्द्र ब्राह्मण हरगिज़ नहीं है। वह तो कोई राक्षस-योनि का जीव है। छिः-छिः, कैसा बुरा आदमी है वह!'

दाऊ ने थोडा हँस कर कहा—'महाराज, स्वार्थ से आदमी की आँखें अन्धी हो जाती हैं। रामचन्द्र का वही हाल है। कसाई अगर आज गाँव से निकल जायँ तो उनका घर रामचन्द्र को मिल जायगा, उन का खेत भी रामचन्द्र के ही कब्ज़े में आ जायगा। इसी से उसकी यह दुर्बुद्धि है। कसाइयों का पड़ोस उससे सहा नहीं जा रहा है। पर अभागे को यह बात क्यों नही याद आती कि इन कसाइयों को उसके बाप के बाप ही ने यहाँ लाकर बसाया था और अपना घर दिया था रहने को और अपना खेत दिया था जोतने-बोने को।'

साधू उठ कर बैठ गया। अचरज करके बोला—'ब्राह्मण ने कसाई को पनाह दी! यह तो कोई रहस्य की कथा लगती है बाबा!'

दाऊ ने कहा—'महाराज, मैं आपको सुनाता हूँ। यह मेरे जन्म से भी पहिले की बात है। अठारह सौ सत्तावन के ग़दर के दिन थे। हमारे एक पूर्वज दुर्गा के भक्त थे। माई की विशाल मूर्त्ति घर में विराजती थी। ख़ुद तो हथियार चला नहीं सकते थे, पर प्रतिदिन अपने शिष्यों में जाकर ग़दर का मंत्र फूँकते थे। आधी रात को भक्तों का जमघट लगता। भगवती का खड्ग छू कर नौजवान प्रण करते कि फिरंगी को मारेंगे और देश को आजाद करेंगे। फिर वृद्ध ब्राह्मण अपनी भुजा में वही खड्ग भोंक कर लाल रक्त निकालते। उसी का लाल टीका लगाते एक-एक के माथे पर। आशीर्वाद देते, 'तुम्हारी विजय हो। जय भगवती!'

'जाने उन्हें क्या हो गया था। न खाने की सुधि थी, न पीने की। स्त्रियों और बच्चों को भक्त क्षत्रिय लोग अपने घर ले गये। वृद्ध ब्राह्मण दिन भर घर से बाहर रहते। रात पड़ती तो यह 'होम' होता।

'इसी तरह दिन बीत रहे थे। एक रात को जब वृद्ध ब्राह्मण देवी के आगे आसन जमाये बैठे थे, किसी ने दरवाजे पर चोट की। शायद कोई बुरी ख़बर है। दौड़ कर किवाड़ें खोलीं और अँधेरे में सामने खड़ी किसी छायामूर्त्ति को देख कर पूछा, 'कौन?'

'अँधेरे में सामने खड़ी छाया-मूर्त्ति ने मानो अति कष्ट से कहा, 'मैं एक सिपाही हूँ, बाबा! हमारी फ़ौज ने फिरंगियों का सफ़ाया कर दिया था और आगे बढ़ रही थी दिल्ली की ओर कि पीछे दुश्मन की तोपें आ पहुँचीं। सब तहस-नहस हो गया! मैं आफ़त का मारा गिरता-पड़ता निकल भागा फिरंगियों से बच कर। घायल हूँ। मुझे अपने घर में जगह दीजिए। फिरंगी हमें ढूँढ़ते फिर रहे हैं। सुनिये, कहीं गोली चल रही है। जल्दी कीजिये। मुझे भीतर आने दीजिए!'

'उस विद्रोही को भीतर ले आये सहारा दे कर। घर में अन्धा-कुप्प था। केवल देवी के आगे दिया टिमटिमा रहा था। वहीं ला बिठाया उसे। पर घायल सिपाही बैठा न रह सका। दर्द से कराहता लेट गया ज़मीन पर। देवी के आगे आँखें मूँद कर धीरे से बोला—'पानी!'...

'ब्राह्मण झट चरणामृत का पात्र उठा कर उसके मुँह के पास ले जाकर बोले—'आँखें खोलो भाई! लो जल पी लो।'

'ख़ून से आस-पास की ज़मीन लाल हो गई थी।। घायल ने कठिनता से आँखें खोल कर एक बार चारों ओर नजर घुमाकर देखा। सामने भगवती की मूर्त्ति खड़ी थी। फिर ब्राह्मण की ओर देखा, हाथों में पंचापात्र लिये खड़े थे। कातर हो कर बोला, 'मैं मुसलमान हूँ।'

'ब्राह्मण ने कहा—'तुम सपूत हो! लो, जल पियो!' घायल ने मुँह खोल दिया। ब्राह्मण चमची से चरणामृत पिलाने लगे उसे। तभी हड़-हड़ करते बीसियों नौ-जवान घुस आये वहाँ। पता चला कि फिरंगी सिर पर आ पहुँचे हैं।

'घायल मुसलमान ने साँस खींच कर कहा—'बापू, मैं बरेली ज़िले

का महमूदपुर का रहमान कसाई हूँ। मेरी बीबी, मेरा बच्चा...बापू, मैं अब बचूँगा नहीं।' घावों से ख़ून बुरी तरह बह रहा था। उधर आँगन में शोर मचा था कि घबराया हुआ एक जत्था और आ पहुँचा। उन लोगों ने आते ही इन लोगो से कहा कि 'भागो! जल्दी करो। फिरंगी गाँव के छोर पर हैं। हम लोग भागेंगे नहीं तो तोप के मुँह से उड़ा दिये जायँगे। चलो, चलो, निकलो सब!'

'उस समय वे वृद्ध ब्राह्मण उस नौजवान, देशभक्त, घायल, बेहोश मुसलमान के मुँह पर झुके कह रहे थे, 'मैं तुम्हारी बीबी की, तुम्हारे बच्चों की रक्षा करूँगा, भाई रहमान! मैं तुम्हें वचन देता हूँ।'

'तभी पाँच आदमी और आये भागते हुए और घबरा कर बोले सब से—'फिरंगियों ने आग लगा दी हमारी चौकी पर। चलो-चलो! भागो-भागो! महाराज जी, बाबा, दादा! चलो-चलो!'

'देवी के भक्त ब्राह्मण ने एक बार भगवती को मन ही मन प्रणाम किया। फिर बेहोश घायल की ओर देखा और आँगन में आकर बोले—'चलो!'

'चलो-चलो!' सब बोले—'जल्दी करो, जल्दी करो!'

उस समय शायद घायल को कुछ होश आ गया था। चिल्ला कर बोला—'अरे भाइयो, मुझे ख़तम किये जाओ! मुझे फिरंगी के हाथ मत छोड़ो!'

'लड़ाकू नौजवान दरवाज़े के बाहर हो चुके थे। वृद्ध ब्राह्मण सब के पीछे थे। वह आवाज सुनी। पीछे लौट पड़े। देवी के आगे पड़ा विह्वल, देशभक्त, मुसलमान आँखें मूँदे चिल्ला रहा था—'मुझे ख़तम कर दो भाइयो! फिरंगियों के हाथ नहीं मरूँगा! फिरंगियों के हाथ नहीं मरूँगा!'

'क्षण भर में ब्राह्मण ने खड्ग उठा लिया, देवी की ओर देखा और कहा—'जय भगवती की!' और बिजली की तरह चमक कर खड्ग से

साधू हाथ हिला कर बोला—'ना-ना, आज कुछ नहीं लेना है। सोमवार को यों ही रहता हूँ जल पीकर। अभी शङ्करगढ़ जा रहा हूँ। आप से कुछ कहना था, इसलिए इधर चला आया।'

'कहो महाराज!'—दाऊ हाथ जोड़कर बोले।

साधू ने आगे को सरक कर कहा धीरे से—'अभी दो घण्टा पहिले, जब मैं बगीची में बैठा था, तुम्हारा वह रामचन्द्र आया अपने एक साथी को लिये।'

दाऊ ने हँसकर कहा—'अच्छा।'

साधू ने सिर हिला कर कहा—'मुझे उसने नहीं देखा। बावा, वह बड़ी विचित्र बातें कह रहा था साथी से।'

दाऊ ने हँस कर पूछा—'क्या कह रहा था?'

'कह रहा था,' साधू ने आँखें बड़ी करके कहा—'कि इस बूढे से मैं ऐसा बदला लूँगा कि छठी का दूध याद आ जायगा। हीरालाल को नाको चने न चबवा दूँ, तो मैं अपने बाप से पैदा नहीं।'

दाऊ ने हँस कर कहा—'बकने दो महाराज! वह मूर्ख है।'

साधू ने गम्भीर होकर कहा—'नहीं बाबा, वह बड़ा दुष्ट आदमी है। तुम को जोखिम में डाल सकता है। सावधान रहना, मैं तुम से यही कहने आया हूँ।'

दाऊ ने साँस खींच कर कहा—'पागल है वह।'

साधू उठ कर खड़ा हो गया। बोला—'पर तुम सावधान रहना बाबा! मैं चला।'

दाऊ ने केवल हाथ जोड़ कर कहा—'प्रणाम महाराज!'

साधू ने जाते-जाते कहा—'कल्याण हो।' और चौपाल की सीढ़ियाँ उतर गया…।

रास्ते में जो मिलता गया, साधू को प्रणाम करता गया। साधू ने किसी को आशीर्वाद दिया, किसी को नहीं दिया। तेज क़दम रखता,

बढ़ता गया, बढ़ता गया। यहाँ तक कि गाँव की आबादी ख़तम हो गई और आख़िरी घर सामने आया उस कसाई का, जिसके पूर्वजों ने देश के लिए जान दी थी और जिसने कल गोशाला को पचास रुपये दान दिये थे।

साधू ठिठक कर खड़ा हो गया वहीं राह में। और नज़र उठा कर देखने लगा कसाइयों के उस दरिद्र घर को, जिसकी उत्तरी दीवार रामचन्द्र ब्राह्मण के घर से सटी थी, जिसके पूर्वजों ने अठारह सौ सत्तावन में ग़दर का मंत्र फूँका था, घायल सिपाही की गरदन काट दी थी अपने हाथ से कि फिरंगी के हाथों न मरे और फिर उस कसाई के अनाथ बच्चों की परवरिश की थी जीवन भर। और उनका वंशधर रामचन्द्र था कि जिसने पड़ोसी को बरबाद करने की प्रतिज्ञा की थी सीना तान कर।

और सहसा देखा कि वही रामचन्द्र ब्राह्मण सामने उस नीम के नीचे गाय के पास से जैसे आविर्भूत हो गया। हाथ में उसके लोटा था गाय के धारोष्ण दूध से भरा कि जिसके शुभ्र झाग ऊपर से दिखाई दे रहे थे।

साधू से उसकी दृष्टि मिली तो प्रणाम करके बोला सज्जन गृहस्थ के स्वर में—'बाबा जी, दूध पियो तो आओ।'

साधू ने वहीं खड़े-खड़े कहा हाथ उठा कर—'तुम्हारा कल्याण हो। मेरा आज व्रत है।' और मुँह इधर को किया तो देखा कि सख़ावत कसाई खड़ा है बग़ल में। एक हाथ से दो पठोरा बकरियों की रस्सी थामे है और दूसरे से सलाम कर रहा है झुक कर।

साधू ने एक क़दम आगे रख कर कहा—'कल्याण हो।' और उन बकरियों की ओर ताक कर पूछा हँस कर—'आज इनकी बारी है?'.

सख़ावत ने हँसकर सिर झुका लिया। साधू और पास आ गया, फिर कसाई की बाँह पकड़कर आगे को उसे बढ़ाता बोला—'सुनो भाई, मैं जा रहा हूँ। तुम्हें ही खोज रहा था तब से। यह तुम्हारा पड़ोसी पूरा राक्षस है इससे सावधान रहना।'

पड़ोसी सख़ावत ने कहा—'महाराज, रामचन्द्र भैया ने तो हमें आज तक कभी कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। यह तो जाने कैसे—'

साधू ने शीघ्रता से हाथ हिलाते हुए बात काट कर कहा—'ना-ना, उसका मुझे विश्वास नहीं है। आज सुबह ही मैंने उसके मुँह से सुना है कि वह तुम्हें तहस-नहस करेगा, तुम्हारा घर फूँक देगा। वह प्रण कर रहा था अपने साथी के आगे। वह राक्षस है। वह सब-कुछ कर सकता है। भाई, तुम उससे सावधान रहना। समझे, सावधान रहना। तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब चला।' कह कर साधू ने क़दम बढ़ाया और पश्चिम की ओर चल दिया तेज चाल से। सख़ावत हक्का-बक्का-सा खड़ा रह गया...।

× × ×

बदला!—रामचन्द्र ने साथी से कहा कि अगर दुश्मन से बदला न ले सका, तो मेरा नर-जन्म वृथा है। जैसे भी हो, दुश्मनों से बदला लूँगा। यह है दुश्मनों की लिस्ट—

'हीरालाल, जो मेरा ताऊ बनता है! बूढ़ा-खुर्राट! जिसने मेरी बेवकूफ़ औरत को जाकर बरगलाया, जिसने अपने सगे भतीजे के विरुद्ध, विधर्मी मुसलमान का पक्ष लिया पंचायत में, जिसने मुझे अपमानित करने के लिए दंड के तीस रुपये अपने पास से जमा कर दिये पचों के आगे। इससे बदला लेना है।

'रामदीन चौधरी, नीच जात, पंच बन कर अपने को लाट समझता है! हीरालाल की हाँ में हाँ मिलाने वाला, सफ़ेद को काला करने वाला, दोग़ला, जिसने मेरे ख़िलाफ़ भरी पंचायत में खड़े होकर फ़ैसला सुनाया। इससे भी बदला लेना है।

'चारों बाक़ी पंचों को भी समझ लूँगा।

'और ये कसाई! ये मेरा ख़ून जलाने वाले! इनको तो मटियामेट कर दूँगा। ये क्यों ज़िन्दा हैं? ये क्यों हैं दुनिया में, इस गाँव मे, मेरे पड़ोस में? इन्हें मैं अपने पड़ोस में, गाँव में, दुनिया में रहने ही न

दूँगा। ये मेरे जनम के बैरी हैं। मेरे दादे-परदादे आँखों के अन्धे थे, जो इन बदज़ातों को घर में पनाह दे कर आप भी मर गये और मेरे लिए काँटा छोड़ गये उम्र भर के लिए। जो कोई नाते-रिश्तेदार आता है, पड़ोस में सट कर रहने वाले कसाइयों को देख कर हँसता है, मुँह बिच-काता है। मेरा मरन हो जाता है उस समय। 'पास में कौन रहते हैं ये तुम्हारे?'—मुसलमान। 'क्या करते हैं!'—कसाई हैं! 'कसाई!'—'पड़ोस तो बहुत अच्छा है भाई!'—जी चाहता है कि अभी जाकर सालों की गरदन उमेंठ दूँ कि हमेशा के लिए झगड़ा दूर हो जाय। इस मकान को, इन छप्परों को मिटा दूँ, जमीन कर दूँ चौरस, अखाड़ा बनवा दूँ!'

दहलीज में चौतरे पर बैठा लक्ष्मणसिंह सिर हिला कर बोला—'दाऊ से बदला लेना आसान नहीं है। समझ लो कि शेर की माँद में हाथ डाल रहे हो। और चौधरिया भी कम नहीं है तुम्हारे लिये। उसके चार-चार लठैत बेटे हैं। तुम्हारे लिये तो एक ही काफ़ी होगा।' फिर लक्ष्मण-सिंह ने एक बार रामचन्द्र के ठिगने-से इकहरे शरीर पर एक नजर डाली और हँस कर कहा—'तुम तो सींकिया पहलवान हो!'

रामचन्द्र ने भवें सिकोड़ कर कहा—'क्या बकता है बे! अभी तुझे एक ठसकी दूँ तो मुँह फैला दे! तू मुझे क्या समझता है!'

लक्ष्मणसिंह ने सिर झुला कर कहा—'अरे वाह रे मेरे शेर!'

पर रामचन्द्र ने ध्यान न दिया। कोने में बैठा घर का मजूरा होरी बैलों के लिए चरी छाँट रहा था। उसकी ओर देखकर बोला—'चिलम भर ला हुरिया!'

गड़ासी चलाना बन्द करके हुरिया चिलम भरने लगा सामने अघि-याने पर। लक्ष्मणसिंह उसको लक्ष्य करके हौले से बोला—'यह पट्ठा तुमने ख़ूब पाला है!'

रामचन्द्र ने धीरे से कहा, हँसकर—'ढाई सेर अनाज एक जून में खा लेता है।'

'साँड़ है पूरा !'—लक्ष्मणसिंह ने और धीरे से कहा, उसे पास आते देख कर।

हुरिया ने सामने हुक्का ला धरा फिर उकडूँ बैठकर अँगुली से चिलम की आग लौट-पौट करने लगा। दो-एक फूँक मारी हौले से चिलम के ऊपर और हाथ झाड़ कर अपने मालिक की ओर देखकर लक्ष्मणसिंह से बोला—'दद्दा, मुझे हुकुम दें तो इस चौधरिया की अकड़ तो मैं निकाल दूँ।'

'तेरा क्या बिगाड़ा है चौधरिया ने !'

'साले ने मेरा ब्याह न होने दिया,' हँसकर बोला—'लौंडिया वालों को जाने क्या पट्टी पढ़ा दी इसने।'

दोनों आदमी हँस कर रह गये।

हुरिया पास सरक कर धीरे से बोला—'दद्दा, मैंने एक तरकीब सोची है।'

रामचन्द्र ने उपेक्षा के भाव से पूछा—'क्या तरकीब सोची है ? बतला॰।'

हुरिया और पास सरक कर बोला—'हमारे खेत से तो इनकी मेंड़ें मिली हैं। हम चाहें तो...'

तभी लक्ष्मणसिंह ज़ोर से बोल उठा, दरवाज़े की ओर देख कर—'पालागन चच्चा !'

रामचन्द्र और हुरिया ने चौंक कर सिर उठाये तो सामने चौखट पर चँदले शिवदयाल पण्डित को खड़ा पाया।

× × ×

...रामचन्द्र को हुरिया की तरकीब बहुत कारगर मालूम पड़ी। उसी की योजना के अनुसार कार्य हुआ फिर। आश्चर्य और प्रसन्नता से रामचन्द्र उछल-उछल पड़ा। शनिवार की रात को सख़ावत कसाई का दस बीघा बाजरा साफ़ हो गया। इतवार की रात को रामदीन चौधरी की गन्ने की पताई का ढेर जल कर ख़ाक हो गया हार में। सोमवार की

रात को हीरालाल दाढ़ी वाले की भैंस खुल गई खूँटे से। मंगल को दिन भर किशुनी और उनका नौकर भैंस ढूँढ़ते फिरे दस-दस, पाँच-पाँच कोस तक। पर भैंस न मिली। हार कर लौट आये सूरज डूबते तक।

हुरिया ने आकर सब ख़बर दी और कान के पास मुँह ले जाकर बोला धीरे से—'आज की रात और एक नया तमाशा देखना दद्दा! भैंस तो अब उनके पुरखे भी नहीं ढूँढ़ पायेंगे। अब आज रात को बैलों की जोड़ी भी लो!'

'क्या बैल खोल लायेगा उनके?'—प्रसन्नता से भर कर रामचन्द्र ने पूछा। सफलता का नशा चढ़ रहा था उसके ऊपर। हँसकर पूछा—'पर बैल तो आँगन में बँधते हैं। कैसे क्या करेगा?'

हुरिया ने हाथ हिलाकर कहा—'खोलूँगा नहीं।'

'फिर?'

'अब तुम सबेरे सब सुन लेना—' हुरिया चुटकी बजा कर बोला—'यह तमाशा भी देखो!'

तभी खट्-से किसी ने चौखट पर डंडे की आवाज़ की और मालिक-मजूरा ने एक साथ चौंक कर उस ओर देखा। यह दिलसुख था, हुरिया का ममेरा भाई। अभी पिछले महीने जेल से छूट कर आया था। चोरी उसका पेशा था और चार बार सज़ा काट चुका था। इसी के सहारे सब हो रहा था।

रामचन्द्र अँधेरे में उसका दुर्दान्त चेहरा देखकर सहम गया। दिल-सुख ने पालागन की, पर सिर न झुकाया। फिर लाठी का गूला बग़ल में दबाकर भयानक हँसी हँस कर बोला अपने भाई से—'तेरी चीज़ ले आया हूँ।'

'कहाँ है?'

'यह रही!'—वास्कट की जेब हिलाकर बोला। फिर कुछ याद करके रामचन्द्र की ओर मुख़ातिब होकर कहा उसने—'महाराज, भैंस अब मुझे

मिलनी चाहिये। आपका कहा सब काम हो गया। अब मेरी मज़दूरी रही। भैंस पर मेरा हक़ है।'

रामचन्द्र ने घबरा कर कहा—'हाँ-हाँ, भैंस तुम्हें ज़रूर मिलेगी।' फिर हुरिया से बोला—'जा रे, लछमणसिंह के पास दिलसुख को ले जा। रुक्का लिखवा कर दे इसे उनके बहनोई के नाम। समझा?' और दिलसुख से कहा—'जाओ नगरा तक जाना पड़ेगा। रुक्का दिखाना, और भैंस ले जाना अपनी।'

दिलसुख ने पालागन की, लाठी ठोंकी एक बार जमीन पर और हुरिया को साथ लेकर घर के बाहर हो गया।...

...तब रामचन्द्र खाट पर लेटा-लेटा सोचने लगा कि कहीं यह कम्बख़्त भैंस लेकर पकड़ा न जाय। पर तभी मन में आया कि यह तो पक्का चोर है। पहिले तो हाथ ही न आयेगा किसी के और दुर्भाग्य से अगर फँस भी गया तो मेरा नाम हरगिज़ न लेगा। और नाम अगर मेरा इसने लिया भी तो विश्वास कौन करेगा? दस बार सज़ा काटे हुए चोर की बात का भला कौन विश्वास करेगा?—सोचते-सोचते रामचन्द्र को झपकी आने लगी और वह सो गया।...

...दिलसुख ने छुरा दिखाया खोल कर। डेढ़ बालिश्त का वह तेज़ छुरा दिये के उजाले में ऐसे चमक रहा था मानो ज़हरीला साँप हो। देखकर रामचन्द्र जैसे डर गया। दिलसुख ने छुरे को उजाले में उलट-पलट कर कहा—'असली फ़ौलाद है। पसलियों को चीरता हुआ निकल जाय पीठ तक!' उजाले में छुरे को उलट-पलट कर बोला—'सिर्फ़ एक हाथ! मेरा एक हाथ ही काम तमाम कर देगा उसका।'

दिलसुख ने छुरा बन्द कर लिया। फिर उसे कमर में खोंस कर रामचन्द्र से पूछा—'बोलो सरकार, क्या इनाम मिलेगा मुझे? अपनी जान पर खेलूँगा। पकड़ा गया तो फाँसी के तख़्ते पर चढ़ाया जाऊँगा। पर

दिलसुख मौत से नहीं डरता। वह जुबान का पक्का है। आपको वचन दूँगा, तो उसे निभाकर पानी पिऊँगा। बोलो, क्या दोगे मुझे ?'

रामचन्द्र ने काँपती आवाज में कहा—'पाँच सौ।'

'पाँच सौ! सिर्फ़ पाँच सौ ? एक हज़ार लूँगा मैं।'

रामचन्द्र ने काँपती आवाज़ में कहा—'एक हज़ार दूँगा।'...

पलक मारते दिलसुख निकल गया। रामचन्द्र से ठहरा न गया। वह भी लपकता आया पीछे से। वह सामने दिलसुख जा रहा है तेज़ चाल से। यह लो, छिप कर खड़ा हो गया, इमली की जड़ से सट कर। अरे लो, वह किशुनी आ रहा है, दुश्मन की औलाद! वही है न ? अकेला है। हाँ, बिलकुल अकेला। और निहत्था भी है। रामचन्द्र झट खण्डहर में छिपकर देखने लगा। वह एक छाया-मूर्त्ति निकली इमली तले से। किशुनी बढ़ता आ रहा है। पीछे छाया-मूर्त्ति भी बढ़ती आ रही है। जल्दी बढ़ो, जल्दी करो, जल्दी! वह छाया-मूर्त्ति किशुनी के ठीक पीछे आ गई। अरे, किशुनी मुड़ा पीछे को। ओह, अँधेरे में बिजली चमकी। 'अरे पकड़ो! अरे मार डाला! मार डाला रे!'...

...'मार डाला रे!'

ज़ोर की चीख़ सुन कर रामचन्द्र जाग पड़ा। वह सपना देख रहा था। अब आँखें मलकर, चारों ओर देखने लगा जाग कर।

'मार डाला रे!'—दरवाज़े पर साफ़ सुनाई दे रहा है। कैसा शोर-गुल है यह ? अरे, क्या सचमुच दिलसुख ने किशुनी को जान से मार डाला ?

रामचन्द्र खाट-से उछल कर बाहर की ओर दौड़ा आया। भड़ाक् से किवाड़ खोल दिये तो देखा सामने—चार-पाँच आदमी खड़े हैं लालटेनें लिये और दुरिया है और किशुनी उसे मार रहा है लातों से। और दुरिया चिल्ला रहा है—'अरे मार डाला रे! बचाओ!'

रामचन्द्र आगे बढ़ आया और लात चलाते किशुनी की बाँह पकड़ कर पूछा—'क्या हुआ ? क्या बात है ? क्यों मार रहे हो इसे ?'

किशुनी ने मारना रोक दिया। हुरिया मालिक को देखकर फूट-फूट कर रोने लगा।

'क्या हुआ ?'—रामचन्द्र ने पूछा।

पर किशुनी न बोला।

'क्या हुआ ?'—रामचन्द्र ने झल्लाकर कहा—'बोलते क्यों नहीं ?'

पर किशुनी न बोला। तब पीछे खड़े लाला ने कहा आगे बढ़ कर—'यह बैलों की नांदों में ज़हर डाल रहा था, सानी में।'

'जहर ?' रामचन्द्र ने अचरज से पूछा।

'हाँ', लाला ने कहा शान्त स्वर में—'इसके हाथ में यह पुड़िया थी। नौकर यह जाग पड़ा। इसने पीछे से जाकर इसकी कौंरिया भर ली। इसके हाथों में काट खाया है इस हुरिया ने।'

रामचन्द्र ने शिथिल स्वर में पूछा सिर झुका कर—'बैलों की सानी में क्यों मिला रहा था ज़हर ?'

हुरिया ने जवाब न दिया। मार की चोट से 'हू-हू' करके रो रहा था।

तब किशुनी ने उसकी कोख में लाठी भोंक कर कहा—'अबे, बतलाता क्यों नहीं ? क्यों तू जहर डाल रहा था बैलों की सानी में ?'

पर हुरिया न बोला। हू-हू करके रोता रहा।

किशुनी ने इस बार उसे जूते से ठोकर लगा कर कहा—'अरे, बोल रे, वहाँ तूने क्या कहा था ? उस बात को अब मालिक के आगे क्यों नहीं कहता ? जल्दी बोल, नहीं तो फिर तेरी पूजा शुरू करता हूँ।'

तब हुरिया ने दोनों हाथों से अपना दुखता सिर पकड़ कर कहा रोते-रोते—'मालिक ने ही तो मुझे भेजा था...'

रामचन्द्र को काटो तो ख़ून नहीं।

दिलसुख मौत से नहीं डरता। वह ज़ुबान का पक्का है। आपको वचन दूँगा, तो उसे निभाकर पानी पिऊँगा। बोलो, क्या दोगे मुझे ?'

रामचन्द्र ने काँपती आवाज मे कहा—'पाँच सौ।'

'पाँच सौ! सिर्फ पाँच सौ? एक हज़ार लूँगा मैं।'

रामचन्द्र ने काँपती आवाज़ में कहा—'एक हज़ार दूँगा।'...

पलक मारते दिलसुख निकल गया। रामचन्द्र से ठहरा न गया। वह भी लपकता आया पीछे से। वह सामने दिलसुख जा रहा है तेज़ चाल से। यह लो, छिप कर खड़ा हो गया, इमली की जड़ से सट कर। अरे लो, वह किशुनी आ रहा है, दुश्मन की औलाद! वही है न? अकेला है। हाँ, बिलकुल अकेला। और निहत्था भी है। रामचन्द्र झट खण्डहर में छिपकर देखने लगा। वह एक छाया-मूर्त्ति निकली इमली तले से। किशुनी बढ़ता आ रहा है। पीछे छाया-मूर्त्ति भी बढ़ती आ रही है। जल्दी बढ़ो, जल्दी करो, जल्दी! वह छाया-मूर्त्ति किशुनी के ठीक पीछे आ गई। अरे, किशुनी मुड़ा पीछे को। ओह, अँधेरे में बिजली चमकी। 'अरे पकड़ो! अरे मार डाला! मार डाला रे!'...

...'मार डाला रे!'

ज़ोर की चीख़ सुन कर रामचन्द्र जाग पड़ा। वह सपना देख रहा था। अब आँखें मलकर, चारों ओर देखने लगा जाग कर।

'मार डाला रे!'—दरवाज़े पर साफ़ सुनाई दे रहा है। कैसा शोर-गुल है यह? अरे, क्या सचमुच दिलसुख ने किशुनी को जान से मार डाला?

रामचन्द्र खाट-से उछल कर बाहर की ओर दौड़ा आया। भड़ाक् से किवाड़ खोल दिये तो देखा सामने—चार-पाँच आदमी खड़े हैं लालटेनें लिये और डुरिया है और किशुनी उसे मार रहा है लातों से। और डुरिया चिल्ला रहा है—'अरे मार डाला रे! बचाओ!'

रामचन्द्र आगे बढ़ आया और लात चलाते किशुनी की बाँह पकड़ कर पूछा—'क्या हुआ ? क्या बात है ? क्यों मार रहे हो इसे ?'

किशुनी ने मारना रोक दिया। हुरिया मालिक को देखकर फूट-फूट कर रोने लगा।

'क्या हुआ ?'—रामचन्द्र ने पूछा।

पर किशुनी न बोला।

'क्या हुआ ?'—रामचन्द्र ने झल्लाकर कहा—'बोलते क्यों नहीं ?'

पर किशुनी न बोला। तब पीछे खड़े लाला ने कहा आगे बढ़ कर—'यह बैलों की नाँदों में जहर डाल रहा था, सानी में।'

'जहर ?' रामचन्द्र ने अचरज से पूछा।

'हाँ', लाला ने कहा शान्त स्वर में—'इसके हाथ में यह पुड़िया थी। नौकर यह जाग पड़ा। इसने पीछे से जाकर इसकी कौरिया भर ली। इसके हाथों में काट खाया है इस हुरिया ने।'

रामचन्द्र ने शिथिल स्वर में पूछा सिर झुका कर—'बैलों की सानी में क्यों मिला रहा था जहर ?'

हुरिया ने जवाब न दिया। मार की चोट से 'हू-हू' करके रो रहा था।

तब किशुनी ने उसकी कोख में लाठी भोंक कर कहा—'अबे, बतलाता क्यों नहीं ? क्यों तू जहर डाल रहा था बैलों की सानी में ?'

पर हुरिया न बोला। हू-हू करके रोता रहा।

किशुनी ने इस बार उसे जूते से ठोकर लगा कर कहा—'अरे, बोल रे, वहाँ तूने क्या कहा था ? उस बात को अब मालिक के आगे क्यों नहीं कहता ? जल्दी बोल, नहीं तो फिर तेरी पूजा शुरू करता हूँ।'

तब हुरिया ने दोनों हाथों से अपना दुखता सिर पकड़ कर कहा रोते-रोते—'मालिक ने ही तो मुझे भेजा था...'

रामचन्द्र को काटो तो ख़ून नहीं।

× × ×

कसाइयों ने अपना खेत जयराम मुराव को आध-बटाई पर दे रक्खा था। ख़रीफ़ कुछ अच्छी नहीं हुई थी। खेती पिछाई पड़ गई थी और बाजरा बढ़ न पाया था। तो भी बॉट में दो-तीन मन अनाज मिल जाने की आशा थी। सो एक रात में ही किसी ने सारा खेत कपट कर फेंक दिया। एक बाल तक न छोड़ी। मन मार कर बैठ रहे दोनों साझीदार। मुराव के बारी थी और ये 'हलाली' करते थे। खेत कट गया तो कुछ भूखों तो मर नहीं जायँगे। दुख तो लगा, पर संतोष करके बैठ रहे दोनों जने।...

रात के पिछले पहर जब हुरिया पिट रहा था यहाँ पड़ोस में तो ये भी आ खड़े हुये थे। सब सुन रहे थे चुप चुप खड़े। और जब हुरिया ने बतलाया कि मालिक ने ही भेजा था उसे दाऊ के बैलों को जहर देने को तो लाज से सिर झुका लिया। मानो ये भी अपराधी हों और इनका भी हाथ हो इस साज़िश में।

फिर रामचन्द्र वहाँ से चला गया था और लोग तरह-तरह की बातें कह रहे थे। जाने किसने उस अँधेरे में कहा धीरे से कि 'चौधरी की पताई किसने जलाई और किसने जलवाई, अब समझ में आया हमारे।' इस पर किसी ने दूसरी ओर से कहा कि 'और सख़ावत का खेत किसने काटा और किसने कटवाया, यह भी अब तुम्हारी समझ में आ गया होगा।'

बड़ा अचरज लगा दोनों को और मन ही मन सोचते रहे कि 'क्या यह बात सच हो सकती है?' और मन ही मन कहते रहे कि 'नहीं, यह बात सच नहीं हो सकती। रामचन्द्र ऐसी अधमता क्यों करेंगे भला? पड़ोसी तो भाई-बराबर होता है।'...

अचरज में डूबे रहे दो दिन। तीसरे दिन भोर की बेला दाऊ का नौकर सरजुआ आ पहुँचा दरवाज़े पर और इन्हें बुला ले गया।

चौपाल की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते देखा कि गेंदन भड़भूँजा और श्यामलाल कलवार बैठे हैं वहाँ। भड़भूँजा कुछ कह रहा है और दाऊ आँखें मूँदे सुन रहे हैं।

ये भी सलाम करके बैठ गये एक ओर।

भड़भूँजा पूछने लगा दाऊ से—'बाजरा यहीं ले आऊँ सरकार ?'

दाऊ ने आँखें मूंदे कहा—'जयराम मुराव को और बुला ला। जा, लपक कर जा।'

भड़भूँजा चला गया तो दाऊ ने आँखें खोलीं और सख़ावत से बोले हँस कर—'रमचन्द्रा का दिमाग़ बिलकुल फिर गया है। आज दुरुस्त कर दें ज़रा।'

कसाई मुँह देखते रहे दाऊ का।

तब दाऊ ने दुखी होकर सुनाया कि सख़ावत का बाजरा कटवा कर रामचन्द्र ने भड़भूँजे के घर डलवा दिया था आधा-साझा करके। फिर चौधरी की पताई जलवाई दूसरे दिन। पताई वह ख़रीद ली थी पैंतीस रुपये में भड़भूँजे ने। चौधरी का तो कुछ बिगड़ा नहीं, पर गेंदन मारा गया। इन श्यामलाल कलवार की दूकान पर पहिले दिन हुरिया आया था अपने किसी दोस्त को लेकर। वहाँ शराब पीकर मस्त हो गये दोनों तो हुरिया के दोस्त ने बेक़ाबू होकर कहा कि 'पताई क्या चीज़ है ? कहो तो घर फूँक दें साले का। हम को किस का डर ? सरकार हमारी है, मालिक हम हैं, अफ़सर हम हैं।' श्यामलाल उसी रात चले गये ठेकेदार के यहाँ। कल लौटे तो बतलाया अपने पड़ोसी भड़भूँजे को। भड़भूँजा दौड़ा गया रमचन्द्रा के पास। वहाँ कहा-सुनी हो गई। भड़भूँजा ने गाली दी। रमचन्द्रा ने जूता दिया खींच कर।'

दोनों कसाई मुँह देखते रहे दाऊ का।

दाऊ ने कहा दुखी होकर—'और एक अपने पड़ोसी का करतब सुनो। भैंस वह हमारी जाकर बिकी बमनपुरा में। बमनपुरा की पैंठ से

ही वह ख़रीदी गई थी। शामत का मारा हुरिया का दोस्त उसे वहीं लेकर पहुँचा। जाने कैसे लोगो को शक हो गया। सिपाही घूम रहा था, सो उसे बुला लिया। हुरिया का दोस्त पकड़ा गया। पुलिस ने मार लगाई तो सब क़बूल दिया। अभी थाने से आदमी आया है। शिनाख़्त के लिये हमें बुलाया है दारोगा ने। भैंस यहीं थाने में आ गई है। यह देखो तमाशा!'

दाऊ ने कहा क्रोध करके—'रमचन्द्रा अब आपे से बाहर हो रहा है। उसे होश में लाने का इलाज करो। गैंदन आ जाय तो फिर तुम तीनों चारो अभी थाने चले आओ। रपट करो, बयान दो, गवाही दो। मैंने बहुत तरह दी है। अब एक झटका दूँगा रमचन्द्रा को!'

कलवार पूछने लगा—'क्या मुझे भी थाने जाना होगा?'

दाऊ ने कहा—'जरूर। अभी मैं रहलू जुतवाये देता हूँ। किशुनी साथ जायगा तुम्हारे। छकवारों तक वहाँ पहुँच जाओगे।'

कलवार हाथ जोड़कर बोला—'दाऊ, आज मैं नहीं जा पाऊँगा। इन्स्पेक्टर आयेगा आज दूकान का मुआयना करने। माफ़ी चाहता हूँ।'

भड़भूँजे ने हाँफते हुये आकर ख़बर दी—'मुराव नहीं मिला। ससुराल गया है। शाम तक लौटेगा।' और बैठ गया उकड़ूँ।

दाऊ घड़ी भर चुप रहे। फिर कहा—'अच्छा तो कल रक्खो। कल ही जाना सब।' 'फिर नौकर सरजुआ को आवाज़ देकर बोले—'घोड़ी दाना खा चुकी हो तो ज़ीन कस दे उस पर। किशुनी को बुला। थाने जाने को देर हो रही है।'...

...रंजीदा मन लिये ये दोनों धीमे क़दमों से गाँव पार करके अपने घर के सामने आये तो देखा कि पड़ोसी के दरवाज़े पर सिपाही खड़ा है पुलिस का। सन्न रह गये। इधर को पीठ किये खड़ा था सिपाही। सख़ावत से न रहा गया। भगवान् क्या विपदा आ पड़ी रामचन्द्र पर? डरता-डरता

आगे को बढ़ा। आहट पाकर सिपाही ने मुँह फेरा। इन्हें देखा तो हँसकर बोला अचरज से—'अरे सख़ावत मियाँ! सलामालेकुम!'

'वालेकुमस्सलाम हवलदार जी!'

'यहीं रहते हो, इसी गाँव में?'

'जी,' शाइस्तगी से कहा—'यही झोपड़ा है ग़रीब का।'

'यह?'—अचरज से सिपाही ने कहा, कसाइयों के घर की ओर हाथ उठा कर।

'जी हाँ, सरकार!'

'अरे, सुनो!'—सिपाही ने पास आकर कहा—'इस तुम्हारे पड़ोसी के नाम इत्तिला है थाने की। चोरी के मामले में नाम है इसका। तहक़ीकात के लिये आये हैं। अभी पूछने पर भीतर से बतलाया गया कि वह कहीं बाहर गया हुआ है। अब किससे पूछ-ताछ करें? मुझे शक है कि भीतर घर में वह छिपा बैठा है। घर पर है कि नहीं, ज़रा पता तो लगाओ मियाँ!'

सख़ावत ने कहा—'हमें अच्छी तरह मालूम है सरकार, पड़ोसी हमारा घर पर नहीं है। कहीं रिश्तेदारी में गया है। दो दिन हो गये उसे गये।'

सिपाही सोच में पड़ गया।

सख़ावत ने कहा—'सरकार, इनायत फ़रमायें, ग़ुलाम के झोपड़े को पाक करें। हुक्का भरूँ सरकार के लिये।'

सिपाही ने धीरे से कहा—'चलो।'

...रामगंज में थाना है। रामगंज में हर मंगल और सनीचर को पैंठ लगती है। पैंठ में कसाई गोश्त बेचते हैं। सिपाही ने बीसियों बार उन से गोश्त ख़रीदा है। सो वही जान-पहिचान आज इस घड़ी काम आई। हवलदार जी को हुक्का पिलाया, ताज़ी चिलम भर कर। फिर दुग्ध-पान कराया, नया गुड़ खिलाकर। बातचीत होती रही। फिर दुबारा ताज़ा

हुक्का भरा। छोटा भाई दौड़ कर तमोली से पान के बीड़े लगवा लाया। हवलदार जो बहुत ख़ुश हुये। पान मुँह में देकर अपना रेशमी बटुआ निकालकर ख़ुशबूदार तम्बाकू निकालते-निकालते बोले—'बड़े मियाँ, तुम ने तो ख़ातिरतवाज़ों की हद्द कर दी। वल्लाह, यों लगता है, जैसे ननिहाल में आये हों।'

सख़ावत सलाम करके बोला—'ग़ुलाम भला किस क़ाबिल है? आज आपने क़दमबोसी का मौक़ा देकर रुतबा बढ़ा दिया जहान में।' और हाथ आगे को करके बोला दया-प्रार्थी-सा होकर—'सरकार...'

'यह क्या?'

'पान-सिगरेट के लिये सरकार!'

सिपाही ने लापरवाही से कहा—'अजी, रहने भी दो सख़ावत मियाँ! हम तुम्हारा काम यों ही कर देंगे। पड़ोसी तुम्हारा साफ़ बच जायगा। हम रिपोर्ट पर लिख देंगे कि तहक़ीक़ात से पता चला कि इलज़ाम बिलकुल झूठा है। अब तो ख़ुश हो?'

सख़ावत ने प्रसन्न भाव से कहा—'जी हाँ सरकार, यही चाहता हूँ। बस, यही चाहता हूँ। देखिये तो, पड़ोसी की इज़्ज़त क्या हमारी इज़्ज़त नहीं है? सरकार, पड़ोसी तो भाई के बराबर होता है।' और तनिक आगे आ दस रुपये हवलदार जी की जेब में ख़ुद रख दिये।

हवलदार जी ने जैसे इस बात को जाना ही नहीं। पान की पीक थूक कर बोले—'बेशक, पड़ोसी भाई के बराबर होता है। क़ुरान शरीफ़ की यही हिदायत है। तुम सच्चे मुसलमान हो। अपना फ़र्ज अदा कर रहे हो। ख़ुदाताला तुम पर रहम की नज़र रक्खे। सलाम मियाँ! जाते हैं हम।'...

सिपाही उधर को गया और सख़ावत ने इधर की राह पकड़ी। तेज़ चाल से सपाटा मारता आ पहुँचा भाड़ पर। गेंदन बाहर ही खड़ा मिला। इन्हें देखा तो हाथ पकड़ कर बोला—'आओ।' और खींचकर घर के

भीतर ले आया कोठे में, जहाँ ज़मीन पर एक ओर कोने में बाजरे का ढेर लगा था। हाथ से उस ढेर को दिखाकर पूछने लगा—'पहिचानो, तुम्हारा ही है न?'

सख़ावत ने हँस कर कहा—'क्या पागलपन की बात कह रहे हो! भला कहीं अनाज भी पहिचाना जा सकता है?'

गेंदन ने शान्त स्वर में कहा—'तुम्हारा ही है। भगवान बड़े न्यायकारी हैं! मैंने चोरी का माल लेना चाहा था, सो मुझे ऐसी सज़ा दी कि आँखें खुल गईं। यार, बाजरा तुम्हारा बहुत होगा तो बारह-तेरह का ही होगा, पर मेरी पताई तो पैंतीस की थी, जो राख हो गई। अब राख खाऊँ?'

सख़ावत ने दुख मनाकर कहा—'बुरा हुआ, गेंदन भैया! पैंतीस रुपये हम ग़रीबों के लिये बहुत होते हैं।'

'मेरी तो बधिया बैठ गई, सख़ावत भैया! अब और रक़म भी नहीं कि कहीं से भाड़ के लिये झोंकन ख़रीद लूँ।'

सख़ावत ने गेंदन का कन्धा पकड़कर कहा—'एक काम करो। यह बाजरा बेच दो इस सुसरे का होगा क्या? कुछ दाम तो मिल ही जायँगे। जयराम के हिस्से की रक़म मैं उसके लगान में काट दूँगा। तुम बाजरा बेच लो यह।'

गेंदन ज़रा देर सोचता रहा। फिर बाजरे की ओर देख कर बोला—'एक शर्त पर ले सकता हूँ। मेरे पास रुपये हो जायँगे, तो तुम्हें लौटा दूँगा। उधार करके लूँगा। बोलो, मंज़ूर है?'

सख़ावत ने हँसकर कहा—'यही सही।'

गेंदन जैसे याद करके बोला—'पर दाऊ क्या कहेंगे सख़ावत? कल हमें थाने चलना है, रपट लिखाने!'

'दाऊ के हाथ-पैर जोड़ लेंगे। मना लेंगे उन्हें। यह तो सोचो, ईंट का जवाब क्या ईंट है? बुराई से तो बुराई ही पैदा होगी। कल रपट दे आयें तो फिर परसों सम्मन जारी होगा, मुक़दमा चलेगा, गवाहियाँ

होंगी। हो सकता है कि रामचन्द्र को कुछ सज़ा भी हो जाय। पर इससे क्या रामचन्द्र सुधर जायगा? मैं तुमसे सच कहता हूँ, यक़ीन मानो, वह तुम्हारा-मेरा जानी दुश्मन बन बैठेगा। चैन न लेने देगा किसी को। और जो तुम भी फँस गये किसी उल्टे-सीधे बयान में तो समझो कि तुम्हारी भी आफ़त आई। तुमने तो चोरी का माल अपने घर में छिपाकर रक्खा और पुलिस को इत्तिला भी नहीं दी। बुरा मत मानना।'

गेंदन सिर हिलाकर बोला—'बिलकुल ठीक कहते हो। दाऊ का तो वह कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा, बड़े आदमी हैं, पर हमारे पीछे पड जायेगा। और अगर मुझे फाँस दिया उल्टा मुकदमे में और कहीं जेल हो गई मुझे तो मैं तो मरा! नहीं-नहीं, अब रपट-सपट हम नही करेंगे। लेकिन यार, उसने मेरे इतने ज़ोर से जूता मारा था कि खोपड़ी भन्ना गई थी। इसका बदला लेना चाहता था।'

हँसकर सख़ावत ने कहा—'एक ही जूता मारा था न? लो, तुम अपना जूता निकाल कर मेरे सिर पर एक बार मार लो ख़ूब ज़ोर से।'

तभी जाने किसने बाहर से आवाज़ दी—'गेंदन हैं क्या?'

दोनों जने साथ-साथ बाहर आये तो देखा कि रामदीन चौधरी का बड़ा लड़का खड़ा है लाठी लिये बड़ी-सी। मुट्ठी आगे करके गेंदन से बोला—'ये रुपये भेजे हैं बप्पा ने।'

गेंदन ने रुपये ले लिये हथेली पर और अचरज से पूछा—'काहे के रुपये हैं ये?'

चौधरी के लडके ने कहा हँसकर—'पताई के। बप्पा ने कहा है कि नगरा में कुर्मियों के यहाँ पताई है। आज ही चले जाओ, नहीं तो बिक-बिका जायगी।'

× × ×

सिपाही ने ठीक अन्दाज़ लगाया था। रामचन्द्र कहीं गया न था। उस दिन वह जो दस भले आदमियों के सामने हुरिया हरामख़ोर से उसके

मुँह पर कालिख लगवा दी, उस लज्जा के कारण गाँव में उसका निकलना बैठना दूभर हो गया था। दिन भर खेतों मे काटता। रात होती तो सब की आँख बचा कर घर में जा घुसता।

उस दिन भी वैसा ही हुआ। खिन्नमना पत्नी गाय की सानी करके लौटी और चौतरिया पर हाथ धोने जा बैठी। रामचन्द्र गुमसुम होकर खटिया पर पड़ा था। घर में अँधियारा झुक आया था और बाहर नीम पर कौये शोर मचा रहे थे। उदासमना पत्नी दीवार की ओर मुख किये-किये हौले से बोली—'आज थाने का सिपाही आया था।'

'क्यों?'—रामचन्द्र ने लेटे-लेटे पूछा।

'तहक़ीकात के लिये। दाऊ की भैंस आई है थाने में।'

रामचन्द्र चुप रहा।

पत्नी बोली हौले से—'पड़ोसी चच्चा भले को आ पहुँचे, नहीं तो जाने क्या होता।'

'क्या होता?'—रामचन्द्र ने धीरे से पूछा।

बोली—'सज़ा होती, जेल जाते, और क्या होता!'

'क्या बक रही है?'—पति ने खीझ कर कहा।

परन्तु पत्नी कहती ही गई—'जब बुरे दिन आने को होते हैं तो आदमी को दुर्बुद्धि उपजती है। एक सख़ावत चच्चा हैं कि सिपाही से मिन्नतें करके तुम्हें जेल जाने से बचाया और एक तुम हो...'

रामचन्द्र ने उठकर कहा—'चुप रह, सुअर की बच्ची! ज़ुबान बन्द कर!'

पत्नी ने शान्त स्वर में कहा—'एक हैं, जिन्होंने रिन करके दूसरे की जोखिम बचाई। एक हैं, जो दूसरों को मटियामेट करने पर तुले हैं!'

'कौन साला इस गाँव में ऐसा धर्मात्मा है, जो दूसरों के लिये रिन करेगा? सब एक नम्बर के पाजी हैं, नीच हैं!'

पत्नी हाथ धोकर उठ खड़ी हुई और मैली धोती से मुँह पोछती

बोली—'उसी नीच ने मुझ से दस रुपये उधार ले कर रिश्वत दी सिपाही को कि तुम्हें जेल न हो जाय! और कोई कहता तो न मानती। मैंने अपने कानों से सब सुना है, सब देखा है इसी छत से। घर में पैसा नहीं था। चाची छत पर से अपनी झूमड़ गिरवी रखने आईं। वह तो भगवान् ने भला किया, जो मैंने झूमड़ न ली, रुपये यों ही उधार दे दिये। झूमड़ रख लेती तो मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहती उन्हें। रुपये आये हमारे काम और कर्ज़ा किया उन्होंने!'

रामचन्द्र ने कुंठित होकर कहा—'इस में कुछ चाल होगी उनकी।'

पत्नी भीतर को जाती-जाती बोली—'जो ख़ुद पापी होता है, वह दूसरों को भी पापी समझता है।'

रामचन्द्र ने चिल्ला कर कहा—'हरामज़ादी, मैं अभी चिमटे से तेरी ज़ुबान पकड़कर खींच लूँगा! तबसे बराबर टर्र-टर्र लगाये है। दिन भर का थका-माँदा, भूखा-प्यासा घर लौटा हूँ और यह मेरी दादी बन कर उपदेश दे रही है! बड़ी आई धरम-करम वाली! मुझे तू जानती है! औरत की तरह रह, नहीं तो जूता मार कर घर के बाहर कर दूँगा! समझी?'

भीतर रसोई-घर से एक धीमी आवाज़ आई—'तुम क्या निकालोगे, मैं ख़ुद ही निकल जाऊँगी। भैया की चिट्ठी आई है आज। मुझे लिवाने आ रहे हैं परसों। बाप-भैया जब तक अन्न देंगे, उनके घर रहूँगी। न देंगे तो भीख माँग कर खा लूँगी। पर इस चौखट पर पैर न दूँगी अब।'

रामचन्द्र ने कुछ जवाब न दिया।...

आसमान में जगह-जगह तारे चमक उठे थे। एक बिल्ली छप्पर के किनारे-किनारे चली जा रही थी चुपके-चुपके। रामचन्द्र उसे लक्षित करता रहा। मुँडेर तक आई हौले-हौले फिर सड़ाक्-से कूद गई पड़ोस में। शायद गोश्त देख पाई है। गोश्त! बकरे का सिर पड़ा हो शायद। बकरा काटा होगा कसाइयों ने। कसाई! हत्यारे हैं पड़ोस में!

उसी क्षण रसोई-घर से दाल छौंकने की आवाज़ आई। फिर चूड़ियों की खनखनाहट के साथ एक स्निग्ध स्वर सुन पड़ा—'आओ।'

रामचन्द्र शिथिल भाव से उठा। कपड़े उतारे फिर बिना एक शब्द बोले चौके में आ बैठा। थाली सामने आ गई तो सिर झुका कर खाने लगा। बिना माँगे रोटी आती रही और चूल्हे के पास चूड़ियों की खनखनाहट होती रही।

सहसा बीच आँगन में ज़ोर से 'भौजी' कह कर लक्ष्मणसिंह ने वह सन्नाटा तोड़ दिया।

'अब खा रहे हो?'—लक्ष्मणसिंह ने पास आकर पूछा।

रसोई-घर से भौजी ने मृदु कंठ से कहा—'आओ, देवर, खा लो रूखी-सूखी।'

लक्ष्मणसिंह पीढ़े पर बैठता-बैठता बोला—'तुम्हारी किसम भौजी, घर से अभी डट कर आया हूँ। कढ़ी बनी थी आलुओं की, सो नाक तक ठूँस आया हूँ।'

भौजी बोलीं मृदु कठ से थाली की ओर देख कर—'दाल और दूँ?'

'नहीं,' रामचन्द्र ने रूखे स्वर से कहा फिर गट्-गट् करके लोटा भर पानी पी गया। एक डकार ली। फिर साथी की ओर देख कर हँसकर पूछा—'कहो, क्या हाल-चाल है?'

'हाल-चाल क्या सुनाऊँ?'—लक्ष्मणसिंह घुटनों को ऊपर मोड़कर बोला—'आज नगरा गया था।'

'फिर?'—रामचन्द्र ने लोटे का बाक़ी पानी पीकर पूछा।

'फिर क्या, बहुत शर्मिन्दा हुआ बहनोई के आगे।'

'क्यों हुये शर्मिन्दा?'—रामचन्द्र ने मूँछें उमेठ कर पूछा—'क्या कुकर्म किया था तुम ने?'

'कुकर्म तो किया ही,' लक्ष्मणसिंह ने सिर हिलाकर कहा—'उस भैंस

के पीछे वे लोग कितने ज़लील किये गये थाने में! पचास रुपये दारोगा को घूँस देकर छूटे, नहीं तो शायद जेल की हवा खाते बेचारे।'

रामचन्द्र ने कोई जवाब न दिया। उसी तरह चौके में बैठा मूँछें उमेठता रहा अपनी।

लक्ष्मणसिंह ने कहा—'बड़ा बुरा हुआ भाई! हमारे कारण ही उनकी रुसवाई हुई। नाते-रिश्तेदारी का मामला है। मान्य हैं मेरे। ख़ैर, जो कुछ हुआ सो हुआ, अब कम से कम रुपये तो ' र दूँ उनके। मैंने सोचा है कि पच्चीस मैं भुगतूँगा और पच्चीस तुम भुगतो। हम लोग इस सुसरी भैंस के पीछे अच्छे बेवकूफ़ बने!'

रामचन्द्र ने कुछ जवाब न दिया। चुपचाप उठ गया चौके से।

× × ×

भरपूर खली से मिला चारा नाँद में भरा था और भैंस साँय-साँय करती खा रही थी। दाऊ सामने खड़े देख रहे थे। कुर्ते की आस्तीनें ऊपर को समेट रक्खी थीं और सीधी बाँह कुहनी तक सानी में सनी थी। अभी अपने हाथ से चारे में खली मिलाई थी और अब खड़े-खड़े तृप्ति से भैंस का खाना देख रहे थे।

गेंदन बोला—'यह तो लटकर झाँखर हो गई दाऊ, नहीं तो इसका हाथी-जैसा शरीर था।'

दाऊ भैंस पर नज़र जमाये बोले—'बदमाशों ने भूखा मार डाला।'

सख़ावत ने पूछा—'अभी आई है थाने से?'

दाऊ बोले—'नहीं, कल रात ही आ गई थी।' फिर इन दोनों की ओर मुड़ कर पूछा—'तुम सब आज जाओगे थाने को?'

दोनों आदमी घबराकर चुप रहे।

तब दाऊ ने तनिक हँसकर कहा—'मारो गोली! कल तो मुझे गुस्सा चढ़ आया था। रात पड़े-पड़े सोचता रहा। फ़िज़ूल है बात बढ़ाना। रमचन्ना तो बेअक़ल है ही, अब हम भी क्या बेअक़ली का काम करें?'

सख़ावत ने प्रोत्साहन पाकर कहा—'बिलकुल बजा है दाऊ! क्या करेंगे थाने जाकर ?'

गेंदन बोला—'इस से तो यह भला है कि आप रामचन्द्र को बुलाकर दस आदमियों के बीच ज़लील करें और उसे समझायें-बुझायें। भले आदमी के लिए इतना ही काफी है।'

दाऊ ने हँस कर कहा—'मैं भी यही सोचता हूँ।' फिर सख़ावत की ओर देख कर बोले—'जाओ, तुम अभी उसे मेरे पास भेज दो। कहियो, कुछ ज़रूरी काम है। फ़ौरन बुलाया है।'

तब दोनों आदमी खुश-खुश लौट चले।

...चौराहे पर आकर गेंदन ने अपने घर की राह ली और ये चले अपने घर की ओर। रास्ते भर दाऊ की भलमनसाहत और बुज़ुर्गी की बात सोचते जब पड़ोसी की चौखट तक आये तो जाने क्या सोच कर ठिठक कर खड़े रह गये। आवाज़ न दी पड़ोसी को और न आगे बढ़े। सकते की हालत में खड़े थे कि जाने किसने पीछे से कन्धा पकड़ कर चौंका दिया।

घूमकर देखा तो प्रसन्न होकर बोले—'सलाम भैया, कब आये ?'

यह हरीराम था, रामचन्द्र का साला। सख़ावत का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—'अभी आया हूँ। घण्टा भर हुआ। कहाँ चले गये थे ? मैं चाची से दो बार जाकर पूछ आया। तुम से जब तक मिल न लूँ ? तब तक बेचैनी रहती है। चलो, हुक्का-वुक्का तो पिलाओ कि खड़े रहोगे यहीं ?'

'चलो-चलो !'—सख़ावत ने कहा—'हुक्का पियो।'

हरीराम ने हँसकर कहा—'खाना भी खाऊँगा। समझे ? सस्ते न छूटोगे। कलेजी से खाऊँगा चपातियाँ, चाची से कह आया हूँ। आज तुम्हारा ईमान भ्रष्ट कर दूँगा !'

सख़ावत ने गद्‌गद होकर कहा—'ज़रूर करो !'

तभी रामचन्द्र भीतर से निकल आया। कैसा उदास भाव है इस आदमी के चेहरे का! पास आया तो सखावत ने अचकचा कर कहा—'भैया, तुम्हें दाऊ ने बुलाया है।'

रामचन्द्र ने उसकी ओर देखा तक नहीं। आगे को बढ़ता-बढ़ता कह गया—'मुझे अभी फ़ुरसत नहीं है।'

तब सखावत ने हरीराम का हाथ पकड़ कर अपने घर की ओर खींचा। मुँह से कहा—'आओ भैया!'...

हरीराम भीतर आँगन में आकर चाची से बोला—'लो चाची, ढूँढ़ लाया। मालूम है, कहाँ मिले?'

चाची ने तनिक मुसकराकर पूछा—'कहाँ मिले?'

हरीराम ने मानो गम्भीर होकर कहा—'मुराव की बारी में। वह है नहीं एक आँखवाली काली मुरैया? उसके हाथ जोड़ रहे थे, आलुओं में छिपे बैठे!'

चाची को हँसी आ गई। बोलीं—'बहिन की बिदा को आये हो, मैं जानूँ।'

हरीराम ने कहा—'आया तो बिदा के लिए ही हूँ, पर मेरा क्या बस है चम्पा पर। तुम लोगों का अख़्तियार है चाची! तुम्हारा हुकुम होगा तब न बिदा होगी कि ज़बरदस्ती ले जाऊँगा?'

तब चाची ने अपना अख़्तियार मान कर कहा—'हाँ-हाँ, सो तो है ही बेटा!'

तभी पास की दीवार के ऊपर से एक कोमल आवाज़ सुन पड़ी—'चाची!'

चाची ने चौंक कर उधर देखा तो रामचन्द्र की बहू ने तनिक मुसकराकर कहा—'चार कंडे तो उठा दो मुझे। गीली लकड़ियाँ ला कर पटक दी हैं मेरे सिर पर। सूँ-सूँ कर रही हैं चूल्हे में। एक नहीं जलती!'

चाची ने जल्दी से कूंडे उठा कर दिये पड़ोसिन को। फिर स्नेह के स्वर में बोलीं—'जल्दी खाना बनाओ। भैया भूखा होगा।'

सुन कर हरीराम ने चिल्लाकर कहा—'क्या कह रही हो चाची ? खाना तो मै यहीं खाऊँगा। तुम से कह गया था न ?'

चाची हँसने लगीं।

सखावत ने शह दी बोले—'कलेजी के साथ चपातियाँ! क्यों भैया ?'

हँसकर हरीराम ने कहा—'हाँ, कलेजी के साथ!'

× × ×

उस दिन बुध था। चाची दीवार पर मुँह रख कर साफ़ हुकुम दे गईं—'लल्ला, आज बिदा न होगी। आज ठहरो, आराम करो। कल ले जाना बहिन को तड़के। आज तो बुध है बेटा! बुध को हम बिदा हरगिज़ न करेंगे।'

बहिन सुन कर खड़ी-खड़ी हँसती रही।

भैया ने सिर झुकाये-झुकाये कहा आज्ञा मानकर—'अच्छी बात है। कल ही जाऊँगा।'

रामचन्द्र भीतर कोठे में था। लेटा-लेटा सोच रहा था कि दाऊ ने बुलाया है। जाऊँ या न जाऊँ ? फटकारेंगे शायद, लानत-मलामत करेंगे, गाली देंगे। शायद मारें भी...नहीं जाऊँगा। मैं क्या उनका दिया खाता हूँ कि दबैल हूँ उनका ? हरगिज़ न जाऊँगा। देखूँ, क्या कर लेते हैं मेरा ? बड़े धन्नासेठ बनते हैं! सब हेकड़ी निकल जायगी किसी दिन।...

तभी पत्नी ने पास आकर मुँह के नजदीक रुपयों की गड्डी रख दी धीरे से और बाहर को जाती-जाती शान्त गम्भीर स्वर में कहती गई—'लक्ष्मणसिंह को दे आओ। पचास हैं।'

रामचन्द्र उठकर बैठ गया। एक-एक करके उसने सब रुपये गिने। गिनकर बंडी में डाल लिये सँभालकर। फिर पत्नी के गर्व से गर्वित

होकर शान से सीना उभारा और पैरों में जोड़ा डाल कर चल दिया चुप-चुप मुँह सिये।...

इधर से दाऊ की चौपाल पड़ती थी। उधर से चला, गाँव के पिछ्वाड़े-पिछवाड़े। बीच राह से पगडंडी जाती थी उत्तर को। दूर पर किसी का ईख का खेत लहलहा रहा था और चन्दन वाले तालाब में कहारों के आधे डूबे शरीर दीख रहे थे, सिंघाड़ों की बेलों के बीच।

तभी जाने किधर से पड़ोसी कसाई आ टपका। बकरियों की रस्सी खींचता चला आ रहा था हत्यारा। इन्हें देखा तो दाँत निपोर कर पूछने लगा—'दाऊ के पास हो आये भैया?'

रामचन्द्र ने क्रुद्ध कर कहा—'हो आऊँगा।'

सखावत ने जैसे चिन्तित होकर कहा—'जरूरी काम था। फ़ौरन बुलाया था।'

रामचन्द्र ने कोई जवाब न दिया। आगे बढ़ गया।...

धूप चढ़ आई थी। रामचन्द्र की छाया उसके क़दमों से लिपटी-लिपटी तेज़ चाल से दौड़ती गई। यहाँ तक कि लक्ष्मणसिंह की चौपाल आ गई सामने।...

लक्ष्मणसिंह ने रुपये गिने। गिन कर अचरज से बोला—'ये तो पचास हैं।'

'हाँ,' रामचन्द्र ने सन्तोष से कहा।

'पर मैंने तो पच्चीस के लिए कहा था तुम से!'

'तुम्हारी भौजाई ने दिये हैं,'—रामचन्द्र ने शान से कहा—'उसी से सवाल-जवाब करना। मैं कुछ नहीं जानता हूँ।'

लक्ष्मणसिंह रुपयों की ओर निहार कर साँस खींच कर बोला—'भौजी तो 'देवी' हैं, बड़ी माँ की बड़ी बेटी! वे अच्छी तरह जानती हैं कि लक्ष्मणसिंह की क्या औक़ात है। पच्चीस रुपये देगा तो कहीं से उधार ले

कर। वाह री औरत! क्या दिल पाया है!' फिर रामचन्द्र की ओर देख कर हाथ उठाकर बोला—'मूरख कौ ब्रजनारि, चतुर कौ संखिनी!'

रामचन्द्र ने बनावटी क्रोध से कहा—'ऐसा झापड़ दूँगा खींच कर...'

पर लक्ष्मणसिंह ने न सुना। हाथ को और ऊँचा करके स्वर में गाने लगा—

'अरे, परिस्तान की हूर परी कोई,

जा बन्दर के पाले...'

× × ×

हरीराम खाना खाकर बाहर पान खाने निकला तो दोनों कसाई अपनी घोड़ियाँ कस रहे थे। उसे देखा तो सख़ावत ने ज़ोर से कहा—'चलो भैया, पैंठ दिखा लायें नगरा की।'

हरीराम ने हँसकर कहा—'चलो। यहाँ पड़ा-पड़ा क्या करूँगा! पैंठ में घूमूँगा। वहाँ मेरा दोस्त भी है एक। मदरसे में मुंशी है। चलो, उस से मुलाक़ात हो जायगी इस बहाने।'

अहमदी ने प्रसन्नता से कहा—'भैया, तुम मेरी घोड़ी पर चढ़ कर चलो। ऐसी बढ़िया दुलकी चलती है कि जी ख़ुश हो जायगा तुम्हारा।'

सख़ावत ने कहा—'तो फिर आ जाओ तैयार होकर, चलें फिर झटपट।'

हरीराम ने कहा—'मैं तो तैयार हूँ। साफ़ा और लपेट आऊँ।' और शीघ्रता से भीतर आकर बहिन से बोला—'चम्पा, साफा तो दे मेरा। नगरा की पैंठ को जा रहा हूँ चच्चा के साथ। मेरा साथी है वहाँ। रात को चाहे रोक ले। फ़िकर मत करियो, न आऊँ लौट कर तो।'

चम्पा ने साफ़ा लाकर भाई से कहा—'सबेरे तो हमें चलना है...'

हरीराम ने शीघ्रता से साफ़ा लपेटते हुए कहा—'अरी, ऐसी क्या जल्दी पड़ी है? सुबह न सही, शाम को सही। कल शाम को चलेंगे, अच्छा।' और वह झट-पट बाहर हो गया।...

दो घोड़ियाँ थीं, तीन सवार। साथ में एक बकरा और एक बकरी।

कौन किस पर चढ़े ? बहस-सी होती गई। तीनों सवार पैदल चलते गये साथ-साथ और पैदल-ही-पैदल नगरा पहुँचे हँसी-मज़ाक़ करते।...

पैंठ के दक्खिणी कोने में, बरगद के नीचे कसाइयों की हलाल करने की जगह थी। सो वहीं जाकर घोड़ियाँ रोकीं। बकरा-बकरी बाँध दिये एक डाल से और दोनों क़साइयों ने घोड़ियों से सामान उतारना शुरू किया, छूरियाँ, बाँट, तराज़ू।

हरीराम घड़ी भर वहाँ खड़ा रहा फिर सोचकर बोला—'मैं मदरसे जा रहा हूँ चच्चा! ज़रा साथी का पता लगाऊँ।'

'हो आओ भैया,'—सख़ावत ने सामान ठीक करते-करते कहा—'साथ-साथ चलेंगे सूरज डूबे तक।'

हरीराम बोला—'अभी आया।' और पैंठ की भीड़ में ओझल हो गया।...

...इधर पछाहीं छोर पर तमोली की दूकान पर रामचन्द्र के साथ बैठा लक्ष्मणसिंह पान खा रहा था। उसने दूर से ही हरीराम को मदरसे की ओर लपक कर जाते देखा तो अचरज करके बोला—'अरे, सालारजंग आये हैं यहाँ! देखो, वह जा रहे हैं सामने!'

रामचन्द्र ने साले को दूर पर देख कर अनमने भाव से कहा—'अपने साथी के पास आया होगा।'...

धीरे-धीरे साँझ हो गई। पैंठ से आदमी छँटने लगे और सूरज का गोला नीचे को सरकने लगा बाग़ों की ओट में। घूम-घाम कर दोनों साथी फिर उसी तमोली की दूकान पर आ बैठे थे और लक्ष्मणसिंह के बहनोई, धनराजसिंह का इन्तज़ार कर रहे थे। उनका गुड़ बिक रहा था कहीं और अब वे इधर आने ही को थे। बैठे-बैठे रामचन्द्र ने थकित भाव से कहा—'गाँव चलोगे लौटकर या यहीं टिकोगे बहनोई के यहाँ?'

लक्ष्मणसिंह बोला—'उन्हें आने तो दो।' और तभी सामने से धनराजसिंह को आता देखा तो ख़ुशी से कहा—'लो, आ भी गये।'

धनराजसिंह का चेहरा धूमिल हो रहा था। भौंहों और मूँछों पर भी हल्की-हल्की धूल छाई थी। पास आकर हँसकर बोले—'चलो भाई, निबट गये। आज डेढ़ सौ का नफ़ा किया हमने। चलो, उठो।'

लक्ष्मणसिंह ने हँस कर साथी की ओर देखा।

रामचन्द्र ने भी हँस कर कहा—'जाओ, जाओ!'

धनराजसिंह ने शिष्टाचार से कहा—'आप भी चलिये।'

रामचन्द्र ने सभ्यतापूर्वक उत्तर दिया—'मुझे माफ़ी दीजिये। घर पर कोई नहीं है।'

वे लोग चले गये तो रामचन्द्र भी घर चलने को उद्यत हुआ।

तमोली बोला—'दद्दू, रुक जाओ। अब साथ ही चलेंगे। मजूरा को आ जाने दो।'

रामचन्द्र फिर जूता उतार कर बैठ गया।...

इधर लक्ष्मणसिंह पूरी पैंठ पार करके बहनोई को साथ लिए बरगद के पास आ पहुँचा और रुक कर बोला—'जीजी, गोश्त ले चलें?'

धनराजसिंह गोश्त नहीं खाते थे। वहीं रुक कर हँस कर बोले—'ले लो।'

तब लक्ष्मणसिंह ने दस क़दम आगे बढ़कर कसाई से कहा—'आधा सेर गोश्त दो, सख़ावत मियाँ!'

सख़ावत ने कहा—'अभी लो।' और भाई को पुकार कर कहा—'अहमदी, आधा सेर गोश्त दो ठाकुरों को।'

अहमदी तराजू में गोश्त रख कर तौलने लगा।

लक्ष्मणसिंह ने हाथ हिलाकर कहा—'यह नहीं, यह नहीं। कलेजी दो मियाँ!'

सख़ावत ने हँस कर कहा—'द भैया, कलेजी दे ठाकुरों को।'

अहमदी ने गोश्त तौल कर पत्ते पर रख कर ऊपर को किया और दूसरा हाथ फैलाया पैसों के लिए।

लक्ष्मणसिंह ने झिझक कर कहा—'पैसे अभी नहीं हैं। फिर मिल जायँगे।' और गोश्त लेने के लिए हाथ आगे बढ़ाया कि अहमदी ने अपना गोश्तवाला हाथ पीछे खींच लिया और एक किनारे उस गोश्त को पटककर बोला—'पैसे नहीं थे तो तुलवाया काहे को?'

लक्ष्मणसिंह ने अपमान पीकर कहा—'पैसे तुम्हारे मिल जायँगे, मारे नहीं जायँगे। लाओ, गोश्त उठाओ।'

अहमदी ने सिर झुकाये-झुकाये कहा—'तुम दो बार पहिले भी तो गोश्त ले चुके हो और आज तक पैसे नहीं मिले। अब और उधार नहीं दूँगा।'

लक्ष्मणसिंह का चेहरा सुर्ख पड़ गया। तैश में आकर कहा—'मुँह सँभाल कर बोलो, वरना सब हेकड़ी निकाल दूँगा।'

अहमदी को भी गुस्सा आ गया। आँखों से आँखें मिलाकर बोला—'यह अकड़ किसी और को दिखाना! हम क्या तुम्हारे कर्ज़दार हैं?'

लक्ष्मणसिंह ने क्रोध से काँप कर कहा—'ऐसा जूता दूँगा कि मुँह घूम जायगा! तू अपने को समझता क्या है टुकड़ख़ोर, दोग़ले!'

अहमदी उठकर खड़ा हो गया। चेहरा उसका भी सुर्ख़ था। आँखें तरेर कर बोला—'ख़बरदार, ज़ुबान सँभाल, नहीं तो तेरी सब ठकुरौती धूल में मिला दूँगा!'

क्रुद्ध लक्ष्मणसिंह ने आव देखा न ताव, कस कर एक हाथ मारा अहमदी के मुँह पर। पलक मारते अहमदी ने लात दी लक्ष्मणसिंह की कोख पर। और लक्ष्मणसिंह लुढ़क कर पीछे धूल में जा गिरा।

धनराजसिंह की समझ में नहीं आ रहा था कि माजरा क्या है। अब जो अहमदी को लात मारते और लक्ष्मणसिंह को दूर गुड़ी-मुड़ी होकर धूल में लुढ़कते देखा तो दौड़े आये। हाथ में डंडा था मोटा-सा। धड़ाम् से अहमदी की पीठ पर मारा। तो चपल गति से अहमदी ने छुरी उठा ली और दौड़ा धनराज के ऊपर। धनराज एक क़दम पीछे हटे आँखें फाड़े।

तभी पीछे से झट सख़ावत ने अहमदी का छुरा वाला हाथ पकड़ लिया और चिल्लाकर बोला—'बहनोई की जान लेगा हत्यारे? बहिन को राँड़ करेगा?'

अहमदी ने मुँह से थूक पोंछ कर कहा—'ये रिश्तेदार हैं। डंडा मार कर रिश्ता निभाने आये हैं!'

धनराज हक्के-बक्के खड़े थे। सख़ावत ने उनके पास आ कर खिन्न होकर कहा—'यह तुमने अच्छा नहीं किया बहनोई! झगड़ा उन लोगों का था, तुमने क्यों हाथ छोड़ा? तुम्हारे लिए तो दोनों बराबर हैं।'

धनराज का मुँह न खुला। डंडा हाथ से छूट कर धूल में जा गिरा था। उसे उठाने लगे कि खटाखट होने लगी। धनराज ने चौंक कर सिर उठाया तो देखा कि तीन-चार आदमी अहमदी पर चारों ओर से लाठी छोड़ रहे हैं।

'खटाखट! खटाखट!' और सख़ावत चिल्ला रहा है—'अरे, मत मारो, मत मारो! अरे, अहमदी मेरा मर गया! मर गया रे!'

और धनराज ने मारने वालों को ध्यान से देखा तो लक्ष्मणसिंह को बायीं ओर लाठी चलाते पाया।···

पलक मारते अहमदी नीचे गिर गया और पलक मारते मारने वाले नौ-दो-ग्यारह हो गये। धनराज ने एक बार लहू-लुहान कसाई को अपने टाट पर औंधा पड़ा देखा और स्वयं भी भाग खड़े हुये।

···यहाँ भीड़ इकट्ठी हो गई। ख़ून से नहाये घायल भाई के मुँह पर मुँह रख कर सख़ावत रो कर पुकारने लगा—'अहमदी भैया! अरे, मेरे लाड़ले!'

ठीक इसी समय एक आदमी और झुक आया उसी मुँह पर। यह हरीराम था। काँप कर बोला—'चचा, घबराओ मत। छोटे चचा बेहोश हो गए हैं। जल्दी करो, चलो, मदरसे में उठा ले चलो इन्हें। उठो चचा!'

और दोनों आदमी भीड़ चीरते ले गये घायल को उठा कर।

सामान सब जहाँ का तहाँ पड़ा था, रुपये-पैसे, सब। भीड़ अभी खड़ी थी, जिसमें नगरा वाले ठाकुरों के लड़के थे, मुराव थे, तरकारी वाले थे और दो चार दूकानदार बनिये थे। पीछे छिपे खड़े थे वे, जिन्होंने अभी लाठियों से कसाई को अधमरा करके ज़मीन पर गिरा दिया था।

उसी पीछे वाले हिस्से से एक आवाज़ आई—'लूट लो सालों का सब सामान! लूटो!'

और चारों ओर से उत्साही लोग झपटे और क़साइयों की दूकान की लूट होने लगी। आदमी पर आदमी गिरने लगा, उतनी जगह में। यहाँ तक कि देखते-देखते वह टाट भी उठ गया कसाइयों का, जिसमें बीसियों छेद थे। और दूकान की जगह धूल रह गई सिर्फ़, जिस पर सैकड़ों पैरों के उल्टे-सीधे, आधे-चौथाई निशान बने थे।

× × ×

अँधेरे में रामचंद्र घर लौटा। पत्नी आँगन में बैठी मिली। उसने पूछा—'चचा से फ़ौजदारी हो गई पैंठ में?'

रामचन्द्र ने रुक्षता से कहा—'मुझे नहीं मालूम।'

'क्यों, तुम भी तो गये थे लक्ष्मणसिंह के साथ?'

'मैं क्या फ़ौजदारी करने गया था?'

'लड़ाई तो तुम्हारे साथी से ही हुई है?'

'उसी से जाकर क्यों नहीं पूछती? तुझे इतना दर्द है, तो चली जा उसकी चौपाल पर। जा, पूछ आ सब।'

पत्नी ने कुछ जवाब न दिया, तो रामचन्द्र आप ही आप कहने लगा—'दो कौड़ी के आदमी, अकड़ने चले ठाकुर से! पिट-कुट गये। अब कभी सिर न उठायेंगे किसी से। गुमान करने चले थे नाचीज़!'

पत्नी ने फिर भी कुछ न कहा, गुमसुम बैठी थी।

घड़ी भर रामचन्द्र ने इन्तज़ार किया, फिर झल्ला कर बोला—'सो रही है क्या? रोटी नहीं बनानी है आज?'...

दो घण्टे बाद चौका उठा कर पड़ोसिन ने नाँद पर खड़ी होकर इधर झाँका। घर में सन्नाटा छाया था। भीतर जैसे कोई रो रहा हो धीरे-धीरे। पड़ोसिन घड़ी भर सुनती रही कान लगा कर, फिर साहस करके पुकारा—'चाची!'

धीरे-धीरे एक छाया-मूर्त्ति दीवार के नीचे आ खड़ी हुई, जहाँ सूखे हुए बाजरे के सरकंडों का ढेर लगा हुआ था ऊपर तक।

पड़ोसिन ने स्नेह सिक्त स्वर में पूछा—'कुछ खोज-ख़बर मिली?'

चाची ने रुदन-भरे कण्ठ से कहा—'कौन ख़बर देगा?'

भीतर से छोटी बहू के रोने की धीमी आवाज़ तब भी आ रही थी। पड़ोसिन ने सोच कर कहा—'भैया भी नहीं लौटे।'

चाची ने काँपती ज़ुबान से कहा—'जाने जिन्दा हैं कि हत्यारों ने...' और रोने लगीं।

पड़ोसिन ने द्रवित होकर कहा—'ऐसी अशुभ बात न सोचो चाची! राम चाहेंगे तो सही-सलामत लौटेंगे दोनों। मुझे लगता है कि चाहे थाने चले गये हों रपट लिखाने। भैया को भी ले गये हों चाहे। भैया तो साथ ही गये हैं चचा के। धीरज धरो चाची! भगवान् सब के बचैया हैं!'

तभी भीतर से बालक पुकार उठा—'अम्माँ!'

पड़ोसिन बोली—'मुन्ना बुला रहा है। जाओ चाची। रोओ मत! जी में धीरज बाँधो!'

चाची आँसू पोंछती, चली गईं।...

× × ×

गाँव में सन्नाटा छाया था। पहर भर रात खिसक गई थी। जगह-जगह गलियारों में कुत्ते भूँक रहे थे और अँधियारी घिरी थी सब ओर।

सहसा जाने कैसी चीख़-पुकार सुनकर रामचन्द्र की पत्नी की नींद टूट

गई। आँखें खोल कर देखा—बाहर आँगन में तीव्र प्रकाश हो रहा है और कई कोमल कंठ एक-साथ ज़ोरों से चीख़-पुकार कर रहे हैं। पलक मारते पड़ोसिन की चेतना जागी। लिहाफ एक ओर फेंक कर चिल्लाती बाहर दौड़ी—'अरे, चाची के घर में आग लगा दी हत्यारों ने!'

पड़ोस का घर लपटों से घिरा था और धुएँ के बादल उड़ते चले जा रहे थे आसमान की ओर। पड़ोसिन ने काँपते पैरों से नाँद पर चढ़ने की चेष्टा की। दीवार के उस पार से करुण आवाज़ें आ रही थीं—'बचाओ, बचाओ! हाय रे! हाय अम्माँ!'

नाँद पर न चढ़ सकी किसी भी तरह। घबरा कर, भीतर भागी आई, और पति का कंधा झकझोरकर कहा—'अरे, उठो, जल्दी चलो! चाचा के घर में आग लग गई!'

'ऐं!'—कहकर रामचन्द्र पत्नी के साथ बाहर भागा आया आँगन में।

आसमान में शोले उड़ते चले जा रहे थे, और दीवार के उस पार से आवाज़ें आ रही थीं—'अरे, बचाओ! अरे, बचाओ!'

पत्नी व्याकुल हो कर 'हाय हाय' करने लगी। रामचन्द्र वहीं थुनिया के सहारे बैठ गया और साँस खींच कर धीरे से बोला—'अच्छा है, जलने दो अभागों को! सारा कुनबा आज ख़तम!'

शोले आसमान में उठ रहे थे और दीवार के उस पार से आवाज़ें आ रही थीं—'बचाओ, बचाओ रे!'

फिर एक आवाज़ सुन पड़ी—'दद्दा! ओ रामचन्द्र दद्दा! ओ दद्दा!'

रामचन्द्र का कलेजा दहल गया।

पत्नी छाती पीट कर बोली—'हाय नारायण!'

शोले बढ़ते जा रहे थे। आवाज़ें सुन पड़ रही थीं—'बहू! अरे, पड़ोसिन! अरे बचाओ कोई!'

'रामचन्द्र भैया! अरे ओ...

पत्नी ने पति के पैरों पर गिरकर काँपती ज़ुबान से रोकर कहा—'इतने निर्दयी न बनो ! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ ! अरे, पत्थर का कलेजा न करो ! बचाओ किसी तरह!'

रामचन्द्र टस-से-मस न हुआ। पत्नी आँगन की ओर भागी। कोई उपाय न सूझा, कोई उपाय न सूझा। फिर पति के पास भागे आकर बिनती करके कहा रोते-रोते—'अरे, उठो, इन बेबसों की जान बचाओ ! सब आग में जले जा रहे हैं ! अरे, सब जल जायँगे ! अरे, तुम्हारा नाश हो जायगा ! पाप मत बटोरो, पाप मत बटोरो ! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ !'

'अरे भैया ! अरे रामचन्द्र भैया !'

'दद्दा ! अम्माँ !'

करुण आवाज़ें आ रही थीं। शोले भभक रहे थे।

पत्नी ने चिल्ला कर कहा—'अरे सुन ले राक्षस ! सुन ले हत्यारे ! तेरा नाम लेकर पुकार रहे हैं बेचारे !'

क्षण भर रामचन्द्र रुका रहा, फिर पागलों की तरह बाहर को भागा।

...बाहर जमघट लगा था। अँधेरे में कुछ लोग खड़े थे, कुछ भाग दौड़ कर रहे थे।

तभी दो आदमी कहीं से सीढ़ी लिये भागते आये।

'अरे, जल्दी करो !'

'अरे औरतों को बचाओ !'

'पानी लाओ ! पानी लाओ !'

'अरे बाल्टी लाओ ! घड़े लाओ !

'इधर सीढ़ी लगाओ, इस दीवार पर !'

रामचन्द्र ने किसी ओर ध्यान न दिया। छलाँग मार कर, पड़ोसी के दरवाजे पर जा पहुँचा और सारी ताक़त लगा कर, सारी शक्ति से किवाड़ों पर धक्का दिया ज़ोर से। पर किवाड़ न हिले।

दक्षिण की ओर ऊँची दीवार थी। उधर छप्पर न थे और उधर से ही आवाज़ें आ रही थीं—'दूसरी सीढ़ी लाओ'।

'यह नहीं पहुँचती ऊपर तक।'

'जल्दी करो!'

'जल्दी बचाओ!'

धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती जा रही थी।

रामचन्द्र ने वहीं खड़े-खड़े, दरवाज़े के ऊपर की ओर ताका।

यह क्या!—बाहर से साँकल लगी थी!

रामचन्द्र ने उचककर, साँकल खोली और दोनो किवाड़ भीतर को ढकेल दिये।

धुँये का रेला भरभरा कर निकला बाहर को। रामचन्द्र का दम घुट गया क्षण भर के लिए। क्षण भर को वह पीछे हटा। धुँआ दरवाज़े से भकभकाता निकल रहा था। क्षण भर को रामचन्द्र रुका, फिर सिर आगे को झुका कर, घुस गया उसी धुएँ में।...

आँगन के बीचों-बीच तीनों कोमल प्राणी निश्चल होकर पड़े थे और चारों ओर घर जल रहा था भक्-भक्।

धुँआ, आग, लपट! चट्-चट्!—जलते छप्परों से आवाज़ें निकल रही थीं।

रामचन्द्र का दम घुटा जा रहा था। पर उसने हिम्मत न छोड़ी। नीचे को झुका और एक निश्चल औरत को अपने हाथों में उठा लिया, और पूरी शक्ति लगा कर बाहर को दौड़ा। और एक साँस में दरवाज़े के इस पार आ पहुँचा। चारों ओर से लोग दौड़े। रामचन्द्र ने नीम के नीचे लिटा दिया उस स्त्री को। यह चाची थीं?

'अरे मर गई शायद।'

'नहीं, बेहोश है।'

'पानी डालो मुँह में।'

पर रामचन्द्र ने किसी आवाज़ पर ध्यान न दिया। क्षण भर रुका, और फिर लपका जलते घर की ओर, कि दरवाज़े पर खट्-से एक आदमी ने उसकी बाँह पकड़ ली। वह किशुनी था, दाऊ का इकलौता लड़का। श्रद्धा से गद्गद होकर बोला—'दद्दू, तुम रुको। अब मैं जाता हूँ भीतर।' और सड़ाक्-से उस जलती चौखट के पार हो गया भीतर को।

रामचन्द्र अवसन्न-सा हो गया था। उसकी चेतना जाती-सी रही थी। हाथ झुलस गये थे, और माथे के बाल जल गये थे उसके। पर उसे कुछ बोध न था। डग भरता धीरे-धीरे यहाँ चाची के पास फिर लौट कर आया, तो देखा कि छोटी चाची भी निकाल ली गई हैं और बड़ी चाची होश में आ गई हैं और छोटी चाची के मुँह पर उसकी पत्नी जल्दी-जल्दी पंखा झल रही है। स्वप्न-सा लग रहा था सब।

रामचन्द्र सबसे अलग खड़ा था कोने में। तभी चाची की पुकार सुनी—'हाय मेरा मुन्ना!'

ऐं! बच्चा भीतर ही रह गया क्या?

'अरे, बच्चा रह गया क्या?'—तीन-चार औरतों की आवाज़ें चारों ओर से आईं।

और तब पलक मारते रामचन्द्र भागा उधर।...

...'अरे, बच्चा, रह गया भीतर!'

इस ओर से आवाज़ें गईं, तो दूर कुँयें के पास खड़ा किशुनी चिल्ला कर बोला—'बच्चा यहाँ है मेरे पास।' वह बच्चे को अपनी छाती से लगाये था। छाती से सिसकते बच्चे को लगाये-लगाये, वह यहाँ औरतों के पास दौड़ा आया।

...पर रामचन्द्र कुछ नहीं सुन पाया। चौखट और किवाड़, सब जल रहे थे। रामचन्द्र ने परवाह न की। उसी आग में जैसे पैर धरता, फिर भीतर घुस गया। और उसी क्षण दोनों जलते किवाड़ भी ढह पड़े भीतर को।...